सपने जो सोने न दें

डॉ. अब्दुल कलाम की जीवनी,
जीवन प्रबंधन और प्रेरक विचार

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

डायमंड बुक्स

www.diamondbook.in

© लेखकाधीन
प्रकाशकः डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली-110020
फोनः 011-41611861
फैक्सः 011-41611866
ई-मेलः sales@dpb.in
वेबसाइटः www.diamondbook.in
संस्करणः 2016
मुद्रकः आदर्श प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली -110032

Sapne Jo Sone Na Den
By : **Dr. Ramesh Pokhriyal 'Nishank'**

सपने
जो सोने न दें

डॉ. अब्दुल कलाम की जीवनी,
जीवन प्रबन्धन और प्रेरक विचार

अपने हर सपने को हकीकत बनाएं

'सबसे उत्तम कार्य क्या होता है? किसी इंसान के दिल को खुश करना, किसी भूखे को खाना देना, जरूरतमंद की मदद करना, किसी दुःखियारे का दुःख हल्का करना और किसी घायल की सेवा करना।'
-डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

कलाम साहब के साथ कुछ क्षण

अपने जीवन के तमाम उतार चढ़ावों के बीच फुटपाथ पर अखबार बेचने से लेकर रक्षा वैज्ञानिक और फिर भारत के प्रथम नागरिक के पायदान पर पहुँचने वाले डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम एक चमत्कारिक व्यक्तित्व के स्वामी थे। अपनी मेहनत और परिश्रम के बल पर वे न केवल भारत के सबसे लोकप्रिय राष्ट्रपति बने अपितु जन-जन के प्रेरणास्रोत बन गए। वे एक चिन्तक, भविष्यद्रष्टा, सफल वैज्ञानिक, आदर्श शिक्षक और युवाओं के पथप्रदर्शक के साथ-साथ एक सफल राजनीतिज्ञ के रूप में अपना नाम सदा-सदा के लिये इतिहास में अमर कर गए।

अत्यन्त साधारण पृष्ठभूमि में पले-बढ़े डॉ. कलाम ने अपने आदर्शों और कर्मों से सिद्ध कर दिया कि दुनिया में कुछ भी हासिल करना कठिन नहीं है। पहले रक्षा वैज्ञानिक के तौर पर 'मिसाईल मैन' के रूप में उन्होंने राष्ट्र की अमूल्य सेवा की। फिर राष्ट्रपति के रूप में समस्त राष्ट्रवासियों के लिये हर क्षेत्र में प्रेरणास्रोत बनकर एक मिसाल कायम की। देश के शीर्ष पद पर बैठा व्यक्ति जितना सरल और सहज हो सकता है, वह उतना ही प्रखर भी हो सकता

राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम डॉ. निशंक की कृति 'ए वतन तेरे लिए' का राष्ट्रपति भवन में लोकार्पण करते हुए।

है, यह तो दुलर्भ ही है और यह वाकई प्रेरणास्पद है। सही अर्थों में वे एक ऐसे युगपुरूष थे जो जाति, ध र्म और सम्प्रदाय से ऊपर देश के सच्चे सपूत और मानवता के प्रतीक थे। वे सच्चे अर्थों में आदर्श और कर्मठता के पर्याय बन गए। भारतीयता और भारतीय मूल्यों में रचे-बसे वे एक ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे, जिन्होंने देश की राजनीति की दिशा बदलने और राष्ट्र को महाशक्ति के रूप में स्थापित करने का मूलमंत्र भी दिया।

मेरी उनसे पहली मुलाकात 2007 जून माह में तब हुई, जब मैं उन्हें अपनी देशभक्ति के गीतों की पुस्तक 'ए वतन तेरे लिये' के विमोचन करने का आग्रह लेकर उनसे मिला था। पहली ही मुलाकात में उनके चमत्कारिक व्यक्तित्व ने मुझे प्रभावित किया, उनकी स्नेहपूर्ण और अपनत्वभरी मुलाकात से मुझे बिल्कुल भी यह अहसास नहीं हुआ कि मैं देश के सर्वोच्च नागरिक से मिल रहा हूँ। सच कहूँ तो मुझे ऐसा लगा ही नहीं कि मैं उनसे पहली बार मिल रहा हूँ, वह भी एक शीर्ष पुरूष से। ऐसी आत्मीय मुलाकात से मैं अभिभूत हो गया था। मेरे साहित्य सृजन पर बहुत प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्होंने सहजता और स्नेहपूर्वक 'ए वतन तेरे लिए', पुस्तक का विमोचन करने का मेरा आग्रह स्वीकार करके मुझे अपना कायल बना लिया।

उनसे दूसरी मुलाकात पुस्तक विमोचन के मौके पर राष्ट्रपति भवन में 24 अगस्त, 2007 को हुई। इस मुलाकात में मुझे उनके हिन्दी प्रेम और राष्ट्रभक्त हृदय के साथ-साथ उनके विराट व्यक्तित्व के भी दर्शन हुये। विमोचन के पश्चात उन्होंने मेरी पुस्तक को उलटते हुये एक मुड़ा हुआ पृष्ठ खोला और अत्यन्त नजदीक से मुझे मेरी एक कविता की अंतिम दो लाइनें अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में गुनगुनाई।

'अभी भी है जंग जारी वेदना सोई नहीं है,
मनुजता होगी धरा पर संवेदना खोई नहीं है।
किया है बलिदान जीवन निर्बलता ढोई नहीं है,
कह रहा हूँ ऐ वतन तुझसे बड़ा कोई नहीं है।'

कविता की अन्तिम दो लाइनें-

'कह रहा हूँ ए वतन/ तुझसे बड़ा कोई नहीं है' को जब वे गुनगुना रहे थे तो मैंने महसूस किया कि वे अत्यन्त भावुक हो उठे थे। तब मुझे पहली बार उनके हृदय में देशभक्ति का महासागर हिलोरे लेता हुआ प्रतीत हुआ।

डॉ. कलाम से मेरी तीसरी मुलाकात कुमाऊँ विश्वद्यालय के 11वें दीक्षान्त समारोह में 10 अगस्त, 2011 को हुई। दीक्षान्त समारोह में आमंत्रण हेतु जब मैने उनसे टेलीफोन पर आग्रह किया तो उन्होंने नैनीताल आने हेतु हामी भर दी। उन्होंने कहा कि हालांकि कार्यक्रम अत्यन्त व्यस्त है, किन्तु छात्रों के बीच आना और उनसे मुलाकात करना मेरी पहली प्राथमिकता है।

नैनीताल में दीक्षान्त समारोह के दौरान दिये गये उनके सम्बोधन से न केवल छात्र-छात्रायें अपितु समस्त शिक्षक वर्ग भी अत्यन्त प्रेरित हुआ, जीवन का ऐसा दर्शन शायद किसी बिरले व्यक्ति के पास होगा। अहिन्दीभाषी होते हुये भी वे बीच-बीच में हिन्दी में बात करने की कोशिश करते।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनके विचार, उनका दर्शन और उनकी जीवन शैली सदा ही हमारे लिये प्रेरणास्रोत बनकर रहेगी और हमें प्रेरित करती रहेगी। उनके व्यक्तित्व और आदर्शों से प्रेरित होकर मैंने उनके आदर्शों को आमजन और नई पीढ़ी तक पहुँचाने के लिये इस पुस्तक को लिखने का मन बनाया। उनके विराट व्यक्तित्व को इस छोटी सी पुस्तक में समाहित करने का मेरा यह छोटा सा प्रयास पाठकों को कुछ भी लाभान्वित कर पायेगा तो मैं इस प्रयास को सार्थक समझूंगा।

-डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

अनुक्रमणिका

भाग-1
डॉ. कलाम: जीवनी और जीवन प्रबन्धन

3. प्रारंभिक जीवन....13
4. बचपन के दिन....16
5. वैज्ञानिक जीवन....21
6. विज्ञान से राजनीति तक का सफर....28
7. मुगल गार्डन और डॉ. कलाम....34
8. राष्ट्रपति दायित्व से मुक्ति के बाद....41
9. विजन 2020....45
10. डॉ. कलाम का व्यक्तित्व....51
11. कलाम की पुस्तकें और उनका हिंदी प्रेम 55
12. अलविदा कलाम....59
13. अन्तिम विदाई 63
14. पुरस्कार/सम्मान 65
15. उपलब्धियां....66

भाग-2
सपने जो सोने न दें

16. डॉ. कलाम के प्रेरणा शब्द....70
17. सपने वो देखें जो नींद ही नहीं आने दें....71
18. कोशिश करना मत छोड़ो....77
19. कठिनाइयां हमारी मदद करती हैं 82
20. लक्ष्य के प्रति निष्ठावान रहें....88

21. समस्याओं से लड़ना और उनसे जीतना आना चाहिए.....97
22. जीवन में उजाला 105
23. परिश्रम सफलता का एकमात्र रास्ता 109
24. आपका नज़रिया सबसे अलग होना चाहिए.....115
25. आने वाली पीढ़ी का भविष्य उज्जवल हो 121
26. ज़िंदगी और समय, सबसे बड़े अध्यापक.....126
27. ईमानदार, मेहनती पाता है ईश्वर से विशेष सम्मान..... 133
28. विज्ञान के मूल काम होंगे हमारी भाषा में 139
29. सफल होने के लिए असफलता की कहानियां पढ़ें..... 144
30. ब्लैक बोर्ड बनाए उजली जिंदगी.....149
31. मदद की जरूरत सबको है.....155
32. ताकत ही ताकत का सम्मान करती है.....160
33. उच्चतम एवं श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त करो.....166
34. देश के विकास के लिए स्वयं सशक्त बनें.....170
35. आत्मसम्मान आत्मनिर्भरता के साथ आता है..... 173
36. युवा पीढ़ी को एक समृद्ध और सुरक्षित भारत दें..... 177
37. दो गरीब बच्चों को सहारा दें..... 182
38. बैक बेंचर में भी प्रतिभा होती है.....187
39. सफलता की निशानी आपका ऑटोग्राफ.....191
40. आंतरिक शक्ति को याद रखें.....199
41. स्वदेशी अपनाएं.....206
42. जीवन जन्मसिद्ध अधिकार है.....210
43. प्रकृति ही सब कुछ है.....217
44. महान सपने हमेशा पूरे होते हैं 221

भाग -1

डॉ. कलाम : जीवनी और जीवन प्रबंधन

प्रारंभिक जीवन

देखा जाये तो एक साधारण बच्चे से लेकर कलाम बनने का सफर आसान नहीं था, लेकिन भारत के 11वें राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जिनका पूरा नाम डॉक्टर अबुल पाकिर जैनुलाब्दीन अब्दुल कलाम है, उनकी जिंदगी का तो फलसफा ही था कि 'कभी छोटे सपने मत देखो। जो भी जिम्मेदारी लो, उसे नई परिभाषा दे दो।' उन्होंने ऐसा ही किया, इसलिए वह आम लोगों के राष्ट्रपति होकर भी सबके लिए हमेशा खास रहेंगे।

वह पहले ऐसे गैर-राजनीतिज्ञ राष्ट्रपति रहे, जिनका राजनीति में आगमन विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में दिए गए उत्कृष्ट योगदान के कारण हुआ। डॉ. कलाम बच्चों तथा युवाओं में बहुत लोकप्रिय हुए। भारतवासी आदरवश उन्हें 'मिसाइल मैन' कह कर बुलाते हैं। अपने सहयोगियों के प्रति घनिष्ठता एवं प्रेमभाव के लिए कुछ लोग उन्हें 'वेल्डर ऑफ पीपुल' भी कहते हैं। परिवारजन तथा बचपन के मित्रजन 'आजाद' कह कर पुकारते थे।

15 अक्टूबर, 1931 को धनुषकोडी गांव (रामेश्वरम, तमिलनाडु) में एक मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवार में इनका जन्म हुआ। इनके पिता जैनुलाब्दीन न ज्यादा पढ़े-लिखे थे, घर की आर्थिक स्थित अच्छी नहीं थी। इनके पिता मछुआरों को नाव किराये पर दिया करते थे। अब्दुल कलाम संयुक्त परिवार में रहते थे। परिवार की सदस्य संख्या का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यह स्वयं पांच भाई एवं पांच बहन थे और घर में तीन परिवार रहा करते थे। अब्दुल कलाम के जीवन में इनके पिता का बहुत प्रभाव रहा। वे भले ही पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन उनकी लगन और उनके दिए संस्कार अब्दुल कलाम के बहुत काम आए।

वह अपने पुश्तैनी मकान में रहते थे, जो कभी 19वीं सदी में बना था। रामेश्वरम का मशहूर शिव मंदिर उनके घर से सिर्फ 10 मिनट की दूरी पर था। इलाके में ज्यादा आबादी मुसलमानों की थी। वे हर शाम नमाज पढ़ने मस्जिद में जाया करते, तो रामेश्वरम मंदिर में जाकर मत्था टेकना भी नहीं भूलते थे। मंदिर के पुजारी लक्ष्मण शास्त्री उनके अब्बा के अच्छे मित्रों में एक थे। जब वह 6 साल के थे तो अब्बाजान के साथ मिलकर लकड़ी की एक कश्ती बनाई, जो लोगों को रामेश्वरम से धनुषकोडी का नदी का रास्ता पार कराती थी। हर सुबह रामेश्वरम रेलवे स्टेशन से ध नुषकोडी के बीच अखबार बेचने का भी काम किया, जो उनकी आमदनी का जरिया बना।

5 वर्ष की अवस्था में रामेश्वरम के पंचायत प्राथमिक विद्यालय में उनका दीक्षा-संस्कार हुआ था। उनके शिक्षक इयादुराई सोलोमन ने उनसे कहा था- 'जीवन में सफलता तथा अनुकूल परिणाम प्राप्त करने के लिए तीव्र इच्छा, आस्था, अपेक्षा इन तीन शक्तियों को भलीभांति समझ लेना

और उन पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहिए।' उनकी उस सीख को नन्हें कलाम ने मन-ही-मन याद कर लिया।

अब्दुल कलाम एक तपस्वी होने के साथ-साथ एक कर्मयोगी भी थे। अपनी लगन, मेहनत और कार्यप्रणाली के बल पर असफलताओं को झेलते हुए आगे बढ़ते गये। अपनी उपलब्धियों के दम पर आज उनका नाम अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों में लिया जाता है।

प्रारम्भिक जीवन में अभाव के बावजूद वे किस तरह राष्ट्रपति के पद तक पहुंचे, यह बात हम सभी के लिए प्रेरणास्पद है। उनकी शालीनता, सादगी और सौम्यता किसी महापुरुष से कम नहीं है। उनके जीवन से हम भारतीय ही नहीं विदेशी भी बहुत प्रभावित हुए। अब्दुल कलाम, सादा जीवन, उच्च विचार तथा मेहनत के उद्देश्य को मानने वाले ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होंने सभी उद्देश्यों को अपने जीवन में निरन्तर जिया भी है। इसलिए वे हर छोटे बड़े, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान के आदर्श बने। उनके प्रेरणास्पद वाक्यों से लाखों युवाओं को प्रेरणा मिली।

बचपन के दिन

कलाम का बचपन बड़ा संघर्षपूर्ण रहा। वे प्रतिदिन सुबह 4:00 बजे उठ कर गणित का ट्यूशन पढ़ने जाया करते थे। वहां से 5:00 बजे लौटने के बाद वे अपने पिता के साथ नमाज पढ़ते, फिर घर से 3 किलोमीटर दूर स्थित धनुषकोडी रेलवे स्टेशन से अखबार लाते और पैदल घूम-घूम कर बेचते। 8:00 बजे तक वे अखबार बेच कर घर लौट आते। उसके बाद तैयार होकर स्कूल चले जाते। उनके बचपन को निखारने में उनकी माँ का विशेष योगदान रहा। कलाम की माता का नाम आशियम्मा था। वे एक धर्मपरायण और दयालु महिला थीं। 7 भाई-बहनों वाले परिवार में कलाम सबसे छोटे थे, इसलिए उन्हें अपने माता-पिता का विशेष दुलार मिला।

5 वर्ष की अवस्था में रामेश्वरम के प्राथमिक स्कूल में कलाम की

डॉ. कलाम का पुस्तैनी घर

शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। उनकी प्रतिभा को देखकर उनके शिक्षक बहुत प्रभावित हुए और उनपर विशेष स्नेह रखने लगे। एक बार बुखार आ जाने के कारण कलाम स्कूल नहीं जा सके। यह देखकर उनके शिक्षक मुत्थुश जी काफी चिंतित हो गये और स्कूल समाप्त होने के बाद वे उनके घर जा पहुंचे। उन्होंने कलाम के स्कूल न जाने का कारण पूछा और कहा कि यदि उन्हें किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, तो वे नि:संकोच कह सकते हैं।

नन्हें अब्दुल को उनकी माँ ने अच्छे-बुरे को समझने की शिक्षा दी। छात्र जीवन के दौरान जब अब्दुल घर-घर अखबार बांट कर वापस आते थे तो माँ के हाथ का नाश्ता तैयार मिलता। पढ़ाई के प्रति उनके रुझान को देखते हुए उनकी माँ ने उनके लिए छोटा सा लैम्प खरीदा था, जिससे वे रात को 11:00 बजे तक पढ़ सकते थे। एक जगह कलाम ने अपनी सफलता का श्रेय अपनी माँ को देते हुए कहा था कि- 'माँ ने अगर साथ न दिया होता तो मैं यहां तक न पहुंचता।'

कलाम की लगन और मेहनत के कारण उनकी माँ खाने-पीने के मामले में उनका विशेष ध्यान रखती थीं। दक्षिण में चावल की पैदावार अधिक होने के कारण वहां रोटियां कम खाई जाती हैं, लेकिन इसके बावजूद कलाम को रोटियों से विशेष लगाव था। इसलिए उनकी माँ उन्हें प्रतिदिन खाने में दो रोटियां अवश्य दिया करती थीं। एक बार उनके घर में खाने में गिनी-चुनी रोटियां ही थीं। यह देखकर माँ ने अपने हिस्से की रोटी कलाम को दे दी। उनके बड़े भाई ने कलाम को धीरे से यह बात बता दी। इससे कलाम अभिभूत हो उठे और दौड़ कर माँ से लिपट गये। उनके बाल हृदय में अपनी माँ के प्रति विशेष स्नेह जाग उठा। बाद में डॉ. कलाम ने जीवन भर शाकाहार अपना लिया था और वे नियमित खाने में अपने पारंपरिक दक्षिण भारतीय खाने को ही शामिल करते थे। उन्हें पारंपरिक आयंगर खाना ही पसंद था, जैसे- वैंधया कोजम्बू और पुलियोडरे। उन्होंने शाकाहार को कैसे अपनाया?, इसका राज उन्होंने एक साक्षात्कार के दौरान बताया था कि जब 1950 में उन्होंने सेंट जोसफ कॉलेज, तिरुचिरापल्ली में प्रवेश किया था, तब से ही वह शाकाहारी बन गए थे, क्योंकि उन्हें जो स्कॉलरशिप मिलती थी, उसमें मांसाहारी भोजन का खर्च जुटाना अपने आप में कठिन काम था। समय के अनुसार चलने के लिए उन्होंने मांसाहार को छोड़ने का निर्णय लिया,

जो बाद में उनकी आदत में शामिल हो गया। उनकी इस आदत को याद करते हुए बैंगलूर, इसरो सेटेलाइट सेंटर के पूर्व निदेशक, आर. अरवामुदान ने बताया कि- 'हम इंदिरा भवन लॉज, तिरुवनंतपुरम में रहते थे, तो लोग उन्हें कलाम अय्यर बुलाते थे, क्योंकि वह ब्राह्मणों के चारों ओर ही घूमते दिखाई देते थे और उनकी खाने की आदतें भी उन्हीं के जैसे हो गई थी। सिर्फ एक ही नॉन वेजिटेरियन खाना वह कभी-कभी खाते थे और वह था केरल आलू के साथ अंडा मसाला।'

कलाम से आर. अरवामुदान 1963 में नेशनल एरोनोटिक्स स्पेस एजेंसी में पहली बार मिले थे। यहां स्टेशन से जुड़ा एक होस्टल भी था, जहां सेल्फ सर्विस कॉफी हाउस था। आर. अरवामुदान ने उन दिनों की याद करते हुए भावुक होकर बताया- 'हम अकसर मैश आलू, उबली हुई बीन्स और मटर, ब्रेड तथा बहुत सारा दूध पीते थे और हफ्ते का आखिरी दिन सुपर मार्किट शॉपिंग, सिनेमा देखने और भारतीय घरों में कभी-कभी डिनर करने के चक्कर में ही निकल जाता था।'

भारत के पूर्व राष्ट्रपति के बारे में और जानने के लिए चेन्नई के अन्नालक्ष्मी रेस्तरां में जाया जा सकता है। जहां भारत का 11वां राष्ट्रपति बनने से पहले कलाम इस छोटी-सी जगह पर नियमित रूप से जाते थे। मैनेजमेंट के अनुसार, यहां उनका पसंदीदा भोजन था- वथा कोजम्बू और पापड़। डॉ. कलाम ने अपने जीवन के करीब तीन दशक केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम में बिताए। यहां के एक स्थानीय रेस्तरां में डॉ. कलाम की फोटो हर जगह लगी हुई है, और वह यह दावा करते हैं कि रोज दिन के आखिर में कलाम वहां जरूर जाते थे।

प्राइमरी स्कूल के बाद कलाम ने श्वार्ट्ज हाईस्कूल, रामनाथपुरम में प्रवेश लिया। बचपन में कलाम पढ़ाई में रुचि रखने वाले अंतर्मुखी किस्म के छात्र थे। उनको पढ़ाई की ओर मोड़ने में इनके जीजा जलालुद्दीन और चचेरे भाई शमसुद्दीन का बड़ा हाथ रहा। रुचि जगने के बाद कलाम का समय उनके पड़ोसी श्री माणिक्कम के पुस्तकालय में बीतता। बचपन में उन्हें लंबे पंखों वाली समुद्री चिड़िया की उड़ान बहुत आकर्षित करती थी। कलाम को प्रेरित करने वाले लोगों में उनके विज्ञान शिक्षक शिवसुब्रमनियम अय्यर पहले व्यक्ति थे। श्वार्ट्ज हाईस्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने 1950 में सेंट जोसफ कॉलेज, त्रिची में प्रवेश लिया। वहां से उन्होंने

भौतिकी और गणित विषयों के साथ बी.एससी. की डिग्री प्राप्त की। इसी कॉलेज में उन्होंने साहित्यकार स्कॉट, टॉलस्टाय तथा हार्डी को पढ़ा। यहीं उनका झुकाव 'दर्शनशास्त्र' की ओर भी हुआ। लेकिन इन्हीं दिनों में कलाम ने भौतिकी की ओर भी अपने झुकाव को महसूस किया। उन्होंने श्री चिन्नादुरई और प्रो. कृष्णमूर्ति से भौतिकी सीखी। लेकिन बी.एससी. पूरी करने के बाद उन्हें अपनी स्वाभाविक रुचि इंजीनियरिंग में लगी।

अपने अध्यापकों की सलाह पर वे स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए मद्रास इंस्टीटयूट ऑफ तकनीक (एम.आई.टी.), चेन्नई जाना चाहते थे, लेकिन पारिवारिक आर्थिक परिस्थितियां उनके आड़े आ रही थी। अपनी खराब आर्थिक स्थिति के चलते एम.आई.टी. में प्रवेश के लिए हुई परीक्षा में सर्वोच्च सूची में आने के बावजूद कलाम वहां प्रवेश नहीं ले पा रहे थे। जब उनकी बहन जोहरा को इस बात का पता चला तो उसने अपनी सोने की चूड़ियां गिरवी रख कर उनकी मदद की। वहां पर उन्होंने अपने सपनों को आकार देने के लिए एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग का चयन किया।

जब वे मद्रास इंस्टीटयूट ऑफ तकनीक (एम.आई.टी.) में अध्ययन कर रहे थे, तब उन्हें एक निम्न-स्तरीय युद्ध के लिए इस्तेमाल में होने वाले हवाई जहाज की रूपरेखा तैयार करनी थी। उनके शिक्षक प्रो. श्रीनिवासन उनके कार्य की प्रगति से संतुष्ट नहीं थे। कलाम ने एक माह का समय मांगा तो श्रीनिवासन ने कहा- 'देखो कलाम ! मैं तुम्हें 30 दिन नहीं, सिर्फ 3 दिन और दे सकता हूं।' कलाम उस रात सो नहीं सके, सिर्फ काम करते रहे और बिना कुछ खाये ही विभिन्न प्रकार की ड्राइंग बनाने में लगे रहे। समय पर काम पूरा करने की चिंता के कारण कलाम ने अगले दिन सिर्फ एक घंटे का समय अपने लिए निकाला और शेष ड्राइंग बनाने में लगा दिया। अब तीसरा दिन आ गया। प्रो. श्रीनिवासन छुप कर काम को पूरा करने की धुन में लगे कलाम को देख रहे थे। कुछ समय बाद वे सामने आये और कलाम को गले लगा लिया, फिर उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा- 'मैं जानता था कि तुम कर दिखाओगे।' तो ऐसे थे विश्वास पर खरे उतरने वाले दृढ़-संकल्पी कलाम। जिद, जोश और जुनून से भरे कलाम हमेशा काम के प्रति पूरी तरह समर्पित रहे। काम के क्षणों में वे कभी इस बात की परवाह नहीं करते थे कि समय अनुकूल है अथवा प्रतिकूल।

उन्हीं दिनों एक बार कलाम अपनी प्रयोगशाला में सोडियम और थर्माइट के घोल के साथ अपने साथी सुधाकर के साथ कुछ प्रयोग कर रहे थे। गर्मी के कारण उन्हें पसीना आ रहा था। तभी घोल में पसीने की एक बूंद गिर गई। अचानक एक जोरदार धमाका हुआ और चारों तरफ आग फैलने लगी। यह घोल में उपस्थित सोडियम और पसीने के जल के बीच हुई रासायनिक क्रिया की वजह से हुआ था। उनके मित्र सुधाकर ने प्रत्युत्पन्न मति का परिचय देते हुए खिड़की के कांच को तोड़ा और जख्म की परवाह किए बगैर कलाम को बाहर फेंक कर बचा लिया। यह क्षण देश के लिए बहुत सौभाग्यशाली रहा।

कलाम ने 1958 में मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ तकनीक से अंतरिक्ष विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। स्नातक होने के बाद उन्होंने हावरक्राफ्ट परियोजना पर काम करने के लिए भारतीय रक्षा अनुसंधान एवं विकास संस्थान में प्रवेश किया।

वैज्ञानिक जीवन

कलाम की हार्दिक इच्छा थी कि वे वायु सेना में भर्ती हों तथा देश की सेवा करें, लेकिन ऐसा नहीं हो सका।

क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि उस युवक के मन पर क्या बीती होगी, जो वायुसेना में विमान चालक बनने की न जाने कितनी सुखद आशाएं लेकर देहरादून गया था, पर परिणामों की सूची में उसका नाम 9वें क्रमांक पर था, जबकि चयन केवल 8 का ही होना था। मछुआरे परिवार के उस युवक ने नौका चलाकर और समाचारपत्र बांटकर जैसे-तैसे अपनी पढ़ाई पूरी की थी।

देहरादून आते समय वह केवल अपनी ही नहीं, अपने माता-पिता और बड़े भाई की आकांक्षाओं का मानसिक बोझ भी अपनी पीठ पर लेकर आया था, जिन्होंने अपनी न जाने कौन-कौन सी आवश्यकताओं को ताक पर रखकर उसे यह सोचकर पढ़ाया था कि वह पढ़-लिखकर कोई अच्छी नौकरी करेगा और परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में सहायक होगा।

परन्तु पायलट परीक्षा के परिणामों ने सब सपनों को क्षणमात्र में धूलधूसरित कर दिया। निराशा के इन क्षणों में वह जा पहुंचा ऋषिकेश, जहां जगतकल्याणी माँ गंगा की पवित्रता, पूज्य स्वामी शिवानन्द के सान्निध्य और 'श्रीमद्भगवद्गीता' के सन्देश ने उसे नये सिरे से कर्मपथ पर अग्रसर किया। उस समय किसे मालूम था कि नियति ने उसके साथ मजाक नहीं किया, अपितु उसके भाग्योदय के द्वार स्वयं अपने स्वर्णिम हाथों से खोल दिये हैं।

अपनी इस इच्छा के पूरी न हो पाने पर उन्होंने बेमन से रक्षा मंत्रालय के तकनीकी विकास एवं उत्पाद का चुनाव किया। वहां पर उन्होंने 1958 में तकनीकी केन्द्र (सिविल विमानन) में वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक का कार्यभार संभाला। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर वहां पहले ही साल में

एक पराध्वनिक लक्ष्यभेदी विमान की डिजाइन तैयार करके अपने स्वर्णिम सफर की शुरुआत की। यहां पर उन्होंने विभिन्न पदों पर कार्य किया। उन्होंने अपने निर्देशन में उन्नत संयोजित पदार्थों का विकास आरम्भ किया। उन्होंने त्रिवेंद्रम में स्पेस साइंस एण्ड तकनीक सेंटर (एस.एस.टी.सी.) में 'फाइबर रिइनफोर्स्ड प्लास्टिक' विभाग की स्थापना की। इसके साथ ही उन्होंने यहां पर आम आदमी से लेकर सेना की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं की शुरुआत की।

उन्हीं दिनों इसरो में स्वदेशी क्षमता विकसित करने के उद्देश्य से 'उपग्रह प्रक्षेपण यान कार्यक्रम' की शुरुआत हुई। कलाम की योग्यताओं को दृष्टिगत रखते हुए उन्हें इस योजना का परियोजना निदेशक नियुक्त किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य था उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करने के लिए एक भरोसेमंद प्रणाली का विकास एवं संचालन। 1962 में वे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन में आये, जहां उन्होंने सफलतापूर्वक कई उपग्रह प्रक्षेपण परियोजनाओं में अपनी भूमिका निभाई। परियोजना निदेशक के रूप में भारत के पहले स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण यान एसएलवी-3 के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कालांतर में वह भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान के कुलपति भी बने, लेकिन वहां तक पहुंचने का सफर कुछ कम कठिन नहीं था। उनकी आगे की उपलब्धियों को जानने से पहले हम एक बार फिर उनके अतीत में झांकते हुए चलते हैं, क्योंकि उनके अतीत का वर्तमान से गहरा जुड़ाव है।

दरअसल डॉ. कलाम जब छोटे थे, तब वे अपने मित्र के साथ एक मंदिर में रामलीला देखने गये। वहीं उन्होंने पहली बार एक रॉकेट को देखा, जो उनके मन को भा गया। देखते-ही-देखते उनका यह लगाव रॉकेट बनाने के जुनून में बदल गया। इसके बाद जब भी अवकाश मिलता, कलाम तरह-तरह के रॉकेट बना-बना कर उड़ाते दिखने लगे। रॉकेट के बारे में बहुत कुछ जानने की जिज्ञासा उन्हें किताबों की दुनिया में ले गई। किताबों के जरिये उन्होंने जाना कि मैसूर के टीपू सुल्तान ने पहला रॉकेट बनाया था और युद्ध में उसका प्रयोग भी किया था। अब कलाम और भी अधिक जिज्ञासु हो गये। अपनी बढ़ती जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए वे धर्म-ग्रंथों को टटोलते रहे, लेकिन आधुनिक पुस्तकों को भी पढ़ते रहे। उनका सपना तब साकार हुआ, जब उन्हें 'इसरो' में देश के

सुप्रतिष्ठित वैज्ञानिक विक्रम साराभाई के मार्गदर्शन में काम करने का मौका मिला। सन 1962 में ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन से जुड़ गए थे। इसके बाद से ही उन्होंने अपनी सफलता की कहानी गढ़नी शुरू कर दी। यह उनका पहला चरण था, जिसमें उन्होंने तीन महान शिक्षकों-डॉ. विक्रम साराभाई, प्रोफेसर सतीश धवन और डॉ. ब्रह्म प्रकाश के नेतृत्व में सीखा और उनके लिए यह सीखने और ज्ञान के अधिग्रहण का समय था।

साराभाई ने कलाम की बौद्धिक क्षमता को पहचाना, समझा और उन्हें लगातार उत्साहित किया। जब बैंगलोर में एरोनॉटिक्स विभाग की स्थापना हुई तो उन्होंने वहां कलाम को नियुक्त किया। साराभाई उन्हें तराशते रहे और चुनौतियां परोसते रहे। साराभाई ने एक बार कलाम को मात्र 18 माह में 'रोटो' नामक यंत्र को बनाने की चुनौती दी। यह यंत्र अधिक भार ले जाने एवं विपरीत परिस्थितियों में वायुसेना के विमानों को उड़ान भरने में सहायता प्रदान करने के लिए बनना था। जब साराभाई ने प्रक्षेपण संबंधी तकनीक और स्वयं प्रक्षेपण वाहन विकसित करने की योजना बनाई तो उन्होंने कलाम को बहुत आशाओं और विश्वास के साथ इस दल का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी सौंपी। कलाम के पिता, दोस्त, शिक्षक और इंडियन स्पेस साइंस के जनक डॉ. विक्रम साराभाई ने कलाम को देश का 'मिसाइल मैन' बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जब भी अब्दुल कलाम किसी उलझन या परेशानी में पड़े तो उनके जानकारों ने हर मौके पर कलाम का साथ दिया। आगे चलकर जब रक्षा मंत्रालय ने 'मिसाइल समिति' का गठन किया, तब भी कलाम को इसके नेतृत्व के लिए चुना गया। इसमें उनके साथ ग्रुप कैप्टन बी.एस. नारायणन थे। उनकी प्रतिभा को देखते हुए उपग्रह प्रक्षेपण यान के विकास के लिए गठित दल में भी उन्हें वी.आर. गावरीकर, एम.आर. कुरूप, ए.ई. मुथुनायगम जैसे ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिकों के साथ शामिल किया गया।

डॉ. अब्दुल कलाम को परियोजना निदेशक के रूप में भारत का पहला स्वदेशी उपग्रह (एस.एल.वी.-3) प्रक्षेपास्त्र बनाने का श्रेय हासिल हुआ। 1980 में उन्होंने रोहिणी उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा के निकट स्थापित किया था। रोहिणी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा शुरू की गई उपग्रहों की एक श्रृंखला है। रोहिणी श्रृंखला में 4 उपग्रह थे, जो सभी

भारतीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन द्वारा प्रक्षेपित किए गये थे और जिसमे से 3 सफलतापूर्वक कक्षा में स्थापित हो गये। श्रृंखला ज्यादातर प्रयोगात्मक उपग्रहों को प्रायोगिक प्रक्षेपण वाहन एसएलवी द्वारा लांच करने पर आधारित थी। रोहिणी श्रृंखला का पहला उपग्रह 35 किलो का प्रयोगात्मक स्पिन स्थिर उपग्रह था, जो कि 3 वॉट बिजली का इस्तेमाल करता है और सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र से 10 अगस्त, 1979 को प्रक्षेपित किया गया था। यह अपनी उद्देश्य कक्षा प्राप्त नहीं कर पाया, क्योंकि इसका वाहक रॉकेट एसएलवी केवल आंशिक रूप से ही सफल हो पाया। फिर वर्ष 1980, 1981 और 1982 में भेजे गए उपग्रह सफलता पूर्वक अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किए गए। उनकी इस उपलब्धि के साथ ही भारत भी अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष क्लब का सदस्य बन गया। इसके बाद इसरो लॉन्च व्हीकल प्रोग्राम को परवान चढ़ाने का श्रेय भी इन्हें प्रदान किया जाता है। डॉ. कलाम ने स्वदेशी लक्ष्य भेदी नियंत्रित प्रक्षेपास्त्र 'गाइडेड मिसाइल्स' को डिजाइन किया। इन्होंने अग्नि एवं पृथ्वी जैसे प्रक्षेपास्त्रों को स्वदेशी तकनीक से बनाया था।

डॉ. कलाम ने भारत को रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से रक्षामंत्री के तत्कालीन वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. वी.एस. अरुणाचलम के मार्गदर्शन में 'इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम' की शुरुआत की। इस योजना के अंतर्गत 'त्रिशूल' (नीची उड़ान भरने वाले हेलाकॉप्टरों, विमानों तथा विमानभेदी मिसाइलों को निशाना बनाने में सक्षम), 'पृथ्वी' (जमीन से जमीन पर मार करने वाली, 150 किमी. तक अचूक निशाना लगाने वाली हल्की मिसाइल), 'आकाश' (15 सेकेंड में 25 किमी तक जमीन से हवा में मार करने वाली यह सुपरसोनिक मिसाइल एक साथ चार लक्ष्यों पर वार करने में सक्षम), 'नाग' (हवा से जमीन पर अचूक मार करने वाली टैंक भेदी मिसाइल), 'अग्नि' (बेहद उच्च तापमान पर भी 'कूल' रहने वाली 5000 किमी. तक मार करने वाली मिसाइल) एवं 'ब्रह्मोस' (रूस के साथ संयुक्त रूप से विकसित मिसाइल, ध्वनि से भी तेज चलने तथा धरती, आसमान और समुद्र में मार करने में सक्षम) मिसाइलें विकसित हुई।

इन मिसाइलों के सफल प्रक्षेपण ने भारत को उन देशों की कतार में ला खड़ा किया, जो उन्नत प्रौद्योगिकी व शस्त्र प्रणाली से सम्पन्न हैं। रक्षा क्षेत्र में विकास की यह गति इसी प्रकार बनी रहे, इसके लिए डॉ.

कलाम ने 'डिपार्टमेन्ट ऑफ डिफेंस रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट ऑर्गेनाइजेशन' (डी.आर.डी.ओ.) का विस्तार करते हुए आर.सी.आई. नामक एक उन्नत अनुसंधान केन्द्र की स्थापना भी की।

डॉ. कलाम जुलाई 1992 से दिसम्बर 1999 तक रक्षा मंत्री के विज्ञान सलाहकार तथा सुरक्षा शोध और विकास विभाग के सचिव थे। उन्होंने रणनीतिक प्रक्षेपास्त्र प्रणाली का उपयोग आग्नेयास्त्रों के रूप में किया। इसी प्रकार पोखरण में दूसरी बार परमाणु परीक्षण भी परमाणु ऊर्जा के साथ मिलाकर किया। इस तरह भारत ने परमाणु हथियार के निर्माण की क्षमता प्राप्त करने में सफलता अर्जित की। कलाम ने तत्कालीन अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के नेतृत्व में 1998 में पोखरण में एक के बाद एक पांच परमाणु परीक्षण किए थे और उसके बाद दुनिया भर में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई थी। भारतीय खुफिया एजेंसी रॉ द्वारा आयोजित 7वें आर.एन. काव मेमोरियल लेक्चर में कलाम ने कहा था कि 1998 की गर्मियों में पोखरण परमाणु विस्फोट से दो दिन पहले दुनिया भर का ध्यान बंटाने के लिए भारत ने सुनियोजित तरीके से मिसाइलों, रॉकेटों और बमों का इस्तेमाल किया।

कलाम ने बताया कि परीक्षण के एक दिन पहले कई एजेंसियां सक्रिय गति में थीं और अपने-अपने काम को अंजाम दे रही थीं। अगले दो दिन चांद बिलकुल छुपा रहने वाला था और रातें अंधेरी होने वाली थीं। चांदीपुर लाइट टेस्ट रेंज से उस समय एक के बाद एक 12 त्रिशूल मिसाइलें लांच की गईं। हर दो घंटे में एक मिसाइल लांच की गई। अग्नि मिसाइल की लांचिंग की तैयारियां भी तेज कर दी गईं। पोखरण में विस्फोट से दूर पिनाका जैसे रॉकेट छोड़े गए। इसके अलावा वायुसेना के विमानों ने रनवे विध्वंस करने का अभ्यास भी उसी दौरान शुरू कर दिया। इसके अगले दिन पता चला कि भारत ने 3 परमाणु परीक्षण किए हैं। अगले दिन 2 और परीक्षण किए गए।

हालांकि पूर्व प्रधानमंत्री नरसिंहा राव ने उन्हें बुलाकर परमाणु परीक्षण की तैयारी करने को कहा था। इसके दो दिन बाद ही 1996 के आम चुनाव के नतीजे घोषित होने वाले थे। नतीजे राव के खिलाफ गए तो उन्होंने फिर कलाम को बुलाया और परीक्षण के बारे में भावी प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को विस्तारपूर्वक बताने को कहा ताकि इतना महत्त्वपूर्ण फैसला

सत्ता परिवर्तन के बाद न अटके। कलाम ने कहा- 'यह घटना एक देशभक्त राजनेता की परिपक्वता और पेशवर रवैये को दर्शाती है, जो समझता है कि देश राजनीति से कहीं ऊपर है।'

डॉ. कलाम ने भारत के विकास स्तर को वर्ष 2020 तक विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधुनिक करने के लिए एक विशिष्ट सोच प्रदान की। वे भारत सरकार के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार भी रहे। 1982 में वे भारतीय रक्षा अनुसंधान एवं विकास संस्थान में वापस निदेशक के तौर पर आये और उन्होंने अपना सारा ध्यान 'गाइडेड मिसाइल' के विकास पर केन्द्रित किया। अग्नि मिसाइल और पृथ्वी मिसाइल के सफल परीक्षण का श्रेय काफी कुछ उन्हीं को है। जुलाई 1992 में वे भारतीय रक्षा मंत्रालय में वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त हुए। उन्होंने भारत को 'सुपर पावर' बनाने के लिए 11 मई और 13 मई, 1998 को सफल परमाणु परीक्षण किया। इस प्रकार भारत ने परमाणु हथियार के निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण सफलता अर्जित की।

डॉ. कलाम नवम्बर 1999 में भारत सरकार के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार रहे। उन्होंने भारत के विकास स्तर को विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधुनिक करने के लिए एक विशिष्ट सोच प्रदान की तथा अनेक वैज्ञानिक प्रणालियों तथा रणनीतियों को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नवम्बर 2001 में प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार का पद छोड़ने के बाद उन्होंने अन्ना विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कीं। उन्होंने अपनी सोच को अमल में लाने के लिए इस देश के बच्चों और युवाओं को जागरूक करने का बीड़ा लिया। इस हेतु उन्होंने निश्चय किया कि वे एक लाख विद्यार्थियों से मिलेंगे और उन्हें देश सेवा के लिए प्रेरित करने का कार्य करेंगे। जीवन में डॉ. कलाम का हर चीज के पीछे एक उद्देश्य रहता था। उस उद्देश्य को लेकर ही वे अपने हर दिन की योजना को तय करते थे।

अपनी पुस्तक 'इंडिया-2020' में कलाम ने लिखा है- 'वह भारत को अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया का सिरमौर राष्ट्र बनते देखना चाहते हैं। परमाणु हथियारों के क्षेत्र में भारत को सुपर पावर बनाना है।' जिसके लिए वे चाहते थे नवयुवक सामने आए। उनके साथ पढ़ने वाले दोस्तों में से एक, रक्षा अनुसंधान और विकास प्रयोगशालाओं के पूर्व सहयोगी

निदेशक ने उन्हें कॉलेज के दिनों से लेकर राष्ट्रपति के समय तक देखा है और उनकी जीवन शैली में मुश्किल से ही कोई बदलाव आए थे। काम में डूबे रहने वाले कलाम दिन के 18 घंटे काम को देते थे। डॉ. कलाम के लिए ज्ञान का संचार उनकी प्रकृति का हिस्सा था। वह शिक्षक थे। उनमें सीखने-सिखाने की ललक थी। कलाम को काम करते देख कर प्रो. एम.जी.के. मेनन उन्हें असाधारण बुद्धि का व्यक्ति मानते हुए कहते थे कि उनमें विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को जानने की असीम ललक है। उनमें यह सीखने और जानने की ललक हमेशा उसी तरह से विद्यमान रही। वे कभी भी और कहीं से भी नया सीखने को आतुर रहते थे।

विज्ञान से राजनीति तक का सफर

डॉ. कलाम को भारतीय जनता पार्टी समर्थित एन.डी.ए. घटक दलों ने राष्ट्रपति के चुनाव के समय अपना उम्मीदवार बनाया था, जिसका वामदलों के अलावा समस्त दलों ने भी समर्थन किया। 18 जुलाई, 2002 को डॉ. कलाम को 90 प्रतिशत बहुमत द्वारा भारत का राष्ट्रपति चुना गया था। उनसे पहले पूरे 10 राष्ट्रपति हुए थे। कलाम राजनीतिक नहीं थे, जब उन्होंने राष्ट्रपति भवन में चरण रखे थे, तो रायसीना हिल का सीना चौड़ा हो गया। मिसाइलों को बनाने वाला वैज्ञानिक अब मुगल गार्डन में बैठ विज्ञान और संगीत से लेकर ब्रह्मांड और ब्रह्म पर चिंतन करता था। लेकिन उसी वैज्ञानिक को जब राजनीति के घट को मथना पड़ा तो न्याय की मथनी नहीं छोड़ी।

2002 में कलाम का नाम प्रस्तावित किया जाना एक संयोग नहीं था, तब गुजरात के भीषण दंगों की लपटें ठीक से बुझी भी नहीं थीं। ऐसे में कलाम को उम्मीदवार बनाने को कुछ लोगों ने मुसलमानों के लिए मरहम और कुछ ने भाजपा के सियासी दांव की तरह देखा।

संघ के लोग इसलिए खुश थे कि कलाम गीता पढ़ते हैं। कांग्रेस और समाजवादी पार्टी एक मुसलमान का विरोध नहीं कर सकती थी। एक ऐसा आदर्श मुसलमान, जिसने देश को ताकतवर बनाया और जिसकी देशभक्ति पर शंका की गुंजाइश नहीं थी।

वो तो राजनीति का शुभ संयोग व सौभाग्य ही था कि कलाम का नाम इस पद के लिए उभरा। कई उम्मीदवारों के नाम पर चर्चा हुई, लेकिन सहमति नहीं बनीं। कभी भाजपा, कभी वाजपेयी तो कभी विपक्ष के धड़ों में ना-नुकुर उभरी। जब कलाम का नाम बतौर प्रस्तावित प्रत्याशी आया तो

भी वामपंथी नहीं माने, उन्होंने कैप्टन लक्ष्मी सहगल जैसे धुरंधर नाम को आगे कर दिया। सारा विपक्ष लक्ष्मी सहगल के साथ नहीं गया और कलाम एक बड़े अंतर से जीत गए। जब शपथ लेने का समय नजदीक आया तो प्रमोद महाजन ने डॉ. कलाम से पूछा- 'आप कौन से शुभ मुहूर्त में शपथ लेना चाहेंगे? डॉ. कलाम ने कहा- 'जब तक सौरमण्डल में पृथ्वी अपने कक्ष में विद्यमान है और सूरज के इर्द-गिर्द अपने पथ पर गतिमान है, हर घड़ी शुभ है।' उनके लिए तो हर वक्त व्यस्त था।

'मिसाइल मैन' कलाम के देश के राष्ट्रपति बनने की कहानी बेहद दिलचस्प है। अपनी किताब 'द टर्निंग प्वॉइंट' में कलाम ने जिक्र किया है कि कैसे वे देश के राष्ट्रपति बने। प्रस्तुत है उस किताब के कुछ अंश-:

कलाम ने लिखा है- '10 जून, 2002 की सुबह अनुसंधान परियोजनाओं पर प्रोफेसरों और छात्रों के साथ मैं काम कर रहा था, वहां मैं दिसंबर, 2001 के बाद से काम कर रहा था। यह दिन अन्ना विश्वविद्यालय के खूबसूरत वातावरण में किसी भी अन्य दिन की तरह था। मेरी कक्षा की क्षमता 60 छात्रों की थी, लेकिन हर लेक्चर के दौरान 350 से अधिक छात्र पहुंच जाते थे। मेरा उद्देश्य अपने कई राष्ट्रीय मिशनों से अपने अनुभवों को साझा करने का था। दिनभर के लेक्चर के बाद शाम को मैं जब लौटा तो अन्ना यूनिवर्सिटी के उप कुलपति प्रोफेसर कलानिधि ने बताया कि मेरे दफ्तर में दिन में कई बार फोन आए और कोई बड़ी व्यग्रतापूर्वक मुझसे संपर्क

करना चाहता है। जैसे ही मैं अपने कमरे में पहुंचा, तो देखा कि फोन की घंटी बज रही थी। मैंने जैसे ही फोन उठाया, दूसरी तरफ से आवाज आई कि प्रधानमंत्री आपसे बात करना चाहते हैं।

मैं प्रधानमंत्री से फोन कनेक्ट होने का इंतजार ही कर रहा था कि आंध्र प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू का मेरे सेलफोन पर फोन आया। नायडू ने कहा- 'प्रधानमंत्री अटल बिहारी आप से कुछ महत्त्वपूर्ण बात करने वाले हैं, आप उन्हें मना मत कीजिएगा।' मैं नायडू से बात कर ही रहा था कि अटल बिहारी वाजपेयी से कॉल कनेक्ट हो गई।

वाजपेयी जी ने फोन पर कहा- 'कलाम आप की शैक्षणिक जिंदगी कैसी है?'

मैंने कहा- 'बहुत अच्छी।'

वाजपेयी जी ने आगे कहा- 'मेरे पास आपके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण खबर है, मैं अभी गठबंधन के सभी नेताओं के साथ एक अहम् बैठक करके आ रहा हूं और हम सबने फैसला किया है कि देश को एक राष्ट्रपति के रूप में आपकी जरूरत है। मैंने आज रात को इसकी घोषणा नहीं की है, आपकी सहमति चाहिए। मैं सिर्फ 'हां' चाहता हूं 'ना' नहीं।'

मैंने कहा- 'एन.डी.ए. करीब दो दर्जन पार्टियों का गठबंधन है और यह जरूरी नहीं कि हमेशा एकता बनी रहे।'

अपने कमरे में पहुंचने के बाद मेरे पास इतना भी वक्त नहीं था कि मैं बैठ सकूं। भविष्य को लेकर मेरी आंखों के सामने कई चीजें नजर आने लगीं, पहली हमेशा छात्रों और प्रोफेसर के बीच घिरे रहना और दूसरी तरफ संसद में देश को संबोधित करना। यह सब मेरे दिमाग में घूमने लगा। मैंने वाजपेयी जी को कहा- 'क्या आप मुझे ये फैसला लेने के लिए 2 घंटे का समय दे सकते हैं?' यह भी जरूरी था कि राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में मेरे नामांकन पर सभी दलों की सहमति हो।

वाजपेयी जी ने कहा- 'आपकी हां के बाद हम सर्वसम्मति पर काम करेंगे।' अगले 2 घंटे में मैंने मेरे करीबी दोस्तों को करीब 30 कॉल किए, जिसमें कई सिविल सर्विसेज में थे तो कुछ राजनीति से जुड़े लोग थे। उन सबसे बात करके दो राय सामने आई। एक राय थी कि मैं शैक्षणिक जीवन का आनंद ले रहा हूं, यह मेरा जुनून और प्यार है, इसे मुझे परेशान नहीं करना चाहिए। वहीं दूसरी राय थी कि मेरे पास मौका है भारत 2020

मिशन को देश और संसद के सामने प्रस्तुत करने का। ठीक 2 घंटे बाद मैंने वाजपेयी जी को फोन किया और कहा- 'मैं इस महत्त्वपूर्ण मिशन के लिए तैयार हूं।' वाजपेयी जी ने कहा- 'धन्यवाद।'

15 मिनट के अंदर यह खबर पूरे देश में फैल गई। थोड़ी ही देर के बाद मेरे पास फोन कॉल्स की बाढ़ आ गई। मेरी सुरक्षा बढ़ा दी गई और मेरे कमरे में सैकड़ों लोग इकट्ठा हो गए। उसी दिन वाजपेयी जी ने विपक्ष की नेता सोनिया गांधीजी से बात की। जब सोनिया जी ने उनसे पूछा कि क्या एन.डी.ए. की पसंद फाइनल है। प्रधानमंत्री ने सकारात्मक जवाब दिया। सोनिया गांधीजी ने अपनी पार्टी के सदस्यों और सहयोगी दलों से बात कर मेरी उम्मीदवारी के लिए समर्थन किया। मुझे अच्छा लगता, अगर मुझे वामपंथी का भी समर्थन मिलता, लेकिन उन्होंने अपना उम्मीदवार मनोनीत किया। राष्ट्रपति की उम्मीदवारी के लिए मेरी मंजूरी के बाद मीडिया द्वारा मुझसे कई सवाल पूछे जाने लगे। कई लोग पूछते कि कोई गैर राजनीतिक व्यक्ति और खासकर वैज्ञानिक कैसे राष्ट्रपति बन सकता है?

राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के रूप में अपना आवेदन करने के बाद 18 जून, 2002 को जब कलाम पहली बार मीडिया से मुखातिब हुए, तो उनसे कई तरह के सवाल पूछे गए। इसमें गुजरात दंगे और अयोध्या में राम मंदिर बनाने के सवाल भी शामिल थे। राष्ट्रपति के तौर पर उनका देश के लिए क्या विजन होगा, इस पर भी सवाल पूछे गए।

उन सभी मुद्दों के लिए उन्होंने शिक्षा और विकास के रास्ते ही समाधान की बात कही। चेन्नई से जब वे 10 जुलाई को दिल्ली आये तो यहां तैयारियां पूरे जोर-शोर से चल रही थीं। भाजपा के प्रमोद महाजन उनके चुनाव एजेंट थे।

कलाम को जो घर आवंटित हुआ था, उन्होंने उसके हॉल में ही अपना काम शुरू कर दिया और कुछ समय बाद वहां एक इलेक्ट्रॉनिक कैंप कार्यालय बन गया।

18 जून, 2002 को

नामांकन भरने के बाद उन्होंने अपनी पहली प्रेस कांफ्रेंस की थी, जिसमें बड़ी बेबाकी से गुजरात, अयोध्या, परमाणु विस्फोट इत्यादि विषयों पर जवाब दिए। उन्होंने कहा कि भारत को एक ऐसा शिक्षित राजनीतिक वर्ग चाहिए, जो सही और सार्थक निर्णय लेने में सक्षम हो। अयोध्या के संदर्भ में उन्होंने कहा कि जरूरत है शिक्षा, आर्थिक विकास और मनुष्यों के एक-दूसरे के प्रति सम्मान की।

उन्होंने लोकसभा और राज्यसभा के करीब 800 सांसदों को, बतौर राष्ट्रपति देश के प्रति मेरा क्या नजरिए रहेगा, उससे अवगत कराया और उनको वोट करने की अपील की। इसका नतीजा यह हुआ कि उनको बड़े अंतर से 18 जुलाई को राष्ट्रपति चुन लिया गया। कुल 2 प्रत्याशियों में कलाम को 9,22,884 वोट मिले। वहीं वामपंथी समर्थित उम्मीदवार कैप्टन लक्ष्मी सहगल को 1,07,366 मत मिले। वह ऐसे पहले राष्ट्रपति रहे हैं, जिनका राजनीति से कभी दूर का भी संबंध नहीं रहा। इन्हें भारत का उपराष्ट्रपति नहीं बनाया गया, सीधे ही राष्ट्रपति बनाए गए। शपथ ग्रहण समारोह के पहले ही उनके सामने एक समस्या खड़ी हो गई। 25 जुलाई को उनका शपथ ग्रहण समारोह होने वाला था, जिसके लिए अतिथियों की सूची बनाने में उनको काफी दिक्कत हुई।

संसद के केंद्रीय हॉल में केवल 1000 लोगों की व्यवस्था थी। इनमें से सभी सांसदों, राजनयिकों और पूर्व राष्ट्रपति के.आर. नारायणन के अतिथियों की संख्या मिलाने के बाद केवल 100 अतिरिक्त लोगों की जगह वहां बची थी। सबने इसको बढ़ाकर इसकी संख्या 150 तक कर दी। अब कलाम के आगे समस्या थी कि इन 150 लोगों में किसको शामिल किया जाए। उनके परिवार के लोगों की संख्या ही 37 थी। इसके बाद उनके भौतिक के शिक्षक चिन्नादुरई, प्रोफेसर के.वी. पंडलई और इनके अलावा उनके दोस्त कई अन्य प्रोफेसर, पत्रकार मित्र, उद्योगपति और न जाने कितने ही लोग मेहमानों की सूची में शामिल थे।

इसके अलावा इनमें देश के सभी राज्यों से 100 बच्चों को भी शामिल किया गया, जिनके लिए अलग से एक पंक्ति बनाई गई। वह दिन बहुत गरम था, लेकिन सभी लोग औपचारिक परिधानों में ऐतिहासिक केंद्रीय हाल में पहुंचे और उनकी शपथ ग्रहण समारोह का हिस्सा बने।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को 25 जुलाई, 2002 को संसद भवन के

अशोक कक्ष में राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई गई। इस संक्षिप्त समारोह में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, उनके मंत्रिमंडल के सदस्य तथा अधिकारीगण उपस्थित थे।

कलाम को दुनिया ने तब जाना, जब वे मिसाइल बनाने लगे, उपग्रह उड़ाने लगे और भारत को उन देशों की कतार में ला खड़ा किया, जो अपने दम पर अपनी प्रयोगशालाओं में इस विज्ञान को आकार दे सकते थे। फिर कलाम राष्ट्रपति बन गए और दुनिया ने मान लिया कि यह कलाम की क्षमताओं पर पूर्णविराम है। लेकिन शपथ के साथ ही कलाम ने यह साबित करना शुरू कर दिया कि महामहिम होना आराम नहीं है।

उनसे पहले 329 एकड़ में फैला राष्ट्रपति भवन आम आदमी के लिए एक तिलिस्म जैसा ही रहा था, पर कलाम ने अपनी तरफ से इसका दरवाजा खोले रखने की कोशिश की और उसके माहौल को औपचारिकताओं से बोझिल नहीं रहने दिया। दरअसल डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के बाद कलाम दूसरे ऐसे राष्ट्रपति थे, जिनके कार्यकाल में राष्ट्रपति भवन के बड़े-बड़े लोहे के गेट आम जनता और महामहिम के बीच बाधा नहीं बने। राष्ट्रपति भवन बच्चों, युवाओं और वैज्ञानिकों के लिए हमेशा खुला रहता था। अपने कार्यकाल के दौरान कलाम ने राष्ट्रपति भवन को देश के विकास का ब्लू प्रिंट तैयार करने का केंद्र बना दिया था। एक राष्ट्रपति के रूप में कलाम का उद्देश्य जनता के दिमाग को उस स्तर पर ले जाना था ताकि एक महान भारत का निर्माण हो सके। राष्ट्रपति बनने के कुछ समय बाद ही कलाम को एक कार्यक्रम में हिस्सा लेने के लिए केरल राजभवन में जाना था। जहां वे अपनी ओर से राष्ट्रपति के मेहमानों के रूप में किन्हीं भी दो मेहमानों को बुला सकते थे। जरा सोचिए कि वे मेहमान कौन थे? उन्होंने भवन के बाहर बैठे एक मोची और एक छोटे से होटल के मालिक को आमंत्रित किया। ऐसी मिसाल शायद ही कोई और राष्ट्रपति कायम कर सके।

अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने राष्ट्रपति भवन में स्थित मुगल गार्डन को नये आयामों से सुशोभित किया।

मुगल गार्डन और डॉ. कलाम

डॉ. कलाम का मुगल गार्डन से लगाव राष्ट्रपति बनने के पहले से था। वर्ष 1997 में जब उन्हें भारत रत्न से सम्मानित किया गया था, तब उन्हें तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन की पुत्री चित्रा नारायणन के साथ मुगल गार्डन घूमने का अवसर प्राप्त हुआ। उद्यान की अप्रतिम सुन्दरता को देखकर कलाम साहब को बहुत खुशी हुई और उन्होंने उद्यान को चांदनी रात में देखने की इच्छा जाहिर की। उनकी यह इच्छा राष्ट्रपति के.आर. नारायणन एवं उनकी पत्नी को पता चली, उसके बाद जब भी कलाम साहब विभागीय काम से दिल्ली आते, तो राष्ट्रपति के आग्रह पर राष्ट्रपति भवन में ही ठहरते थे।

कलाम साहब ने अपनी पुस्तक 'टर्निंग प्वांइट' में लिखा है- 'तब मुझे पता न था कि राष्ट्रपति भवन में मुझे पूर्णमासी की 60 रातें देखने का

अवसर मिलेगा। जिन दिनों मैं वहां था, मुगल गार्डन मेरे लिए एक बड़ा प्रयोग स्थल बन गया था। वह एक बड़ा संवाद मंच था, जिससे मैंने प्रकृति के और अपने देशवासियों के साथ मन की बातें की, जहां मैंने विविध क्षेत्रों से आये लोगों से विचार-विमर्श किया। बाग के अनेक पशु-पक्षी मेरे अंतरंग हो गये थे। बगीचे का सुव्यवस्थित परिवेश और पेड़-पौधे मुझे शान्ति प्रदान करते थे।'

डॉ. कलाम के कार्य-काल में 2007 में सार्क देशों के राष्ट्राध्यक्षों के साथ घूमते हुए पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री शौकत अजीज ने कहा था कि अगर मुगल गार्डन में द्विपक्षीय सम्मेलन हो जाये तो, दोनों देशों के भेदभाव छू-मंतर हो जायेंगे।

डॉ. कलाम ने बगीचे में दो झोपड़ियां बनवाई थीं। दोनों प्राकृतिक पदार्थों से बनी है। एक का नाम 'थिंकिग हट' तथा दूसरी का नाम 'इम्मोरटल हट' है। 'थिंकिग हट' का डिजाइन त्रिपुरा के कारीगर द्वारा किया गया है। उनकी पुस्तक 'इनडोमिटेबल स्पिरिट' का बहुत बड़ा हिस्सा इसी हट में लिखा गया है। दूसरी हट 'इम्मोरटल हट' यानी अमर स्थली में डॉ. कलाम की पुस्तक 'गाइडिंग सोल', जो जीवन के लक्ष्य की खोज पर आधारित है, का उद्भव हुआ था। राष्ट्रहित से जुड़े कई विचार-विमर्श डॉ. कलाम अपने मित्रों के साथ इन्हीं झोपड़ियों में किया करते थे। अनेक कविताओं का उद्भव भी यहां हुआ था।

डॉ. कलाम की सामाजिक चेतना एवं प्राकृतिक प्रेम की वजह से मुगल गार्डन में कई नये सुधार भी किए गये थे। स्पर्शनीय पौधों के बगीचे की नींव सामाजिक जागरूकता का स्पष्ट उदाहरण है। भारत में एवं विश्व में इस तरह के बगीचे बहुत कम हैं। लखनऊ में सी.एस.आई.आर. नेशनल बॉटैनिकल रिसर्च इंस्टीटयूट में स्पर्शनीय उद्यान है। राष्ट्रपति कलाम के प्रयासों का ही परिणाम है कि 2004 में राष्ट्रपति भवन में स्पर्शनीय बगीचा लगाया गया। फल, फूल, औषधि तथा मसालों के पौधों की क्यारियों पर सूचना पट्टिका के जरिये संबधित पौधों के बारे में हिंदी, अंग्रेजी भाषा और ब्रेल लिपि में लिखा है। प्रतिवर्ष जब भी ये बगीचा दृष्टिबाधितों के लिए खोला जाता, कलाम उनके साथ जाते थे। दृष्टिबाधितों की खुशी देखकर कलाम बहुत खुश होते थे। 2006 में मुगल गार्डन में संगीतमय फव्वारा लगाया गया।

जब अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश अपनी पत्नी और शिष्ट मंडल के साथ भारत आये थे, तब उनके सम्मान में मुगल गार्डन में प्रीतिभोज आयोजित किया गया था। इस प्रीतिभोज में बहुत से कलाकार, बुद्धिजीवी और अतिविशिष्ट व्यक्ति भी आमंत्रित थे। जॉर्ज दंपति इस अद्‌भुत आयोजन से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। डॉ. कलाम के अनुसार पूर्णिमा की एक रात को जब पंडित शिवकुमार शर्मा ने 500 लोगों के सम्मुख संतूर-वादन किया तो यह संगीतमय बगीचे का स्वर्णिम क्षण था।

उनका पशु-पक्षियों से प्रेम जग जाहिर था। कलाम हमेशा कहते थे कि पक्षियों की उड़ान हमेशा से ही उन्हें अपनी ओर खिंचती थी। एक बार कलाम डी.आर.डी.ओ. के साथ एक भवन निर्माण परियोजना पर काम कर रहे थे। उसी दौरान कलाम ने अपनी टीम से पूछा कि इस भवन की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए क्या करेंगे। तभी टीम के एक सदस्य ने अपनी राय देते हुए कहा- 'हम भवन की दीवारों पर टूटा हुआ कांच लगा सकते हैं।' इस पर कलाम ने तुरंत जवाब दिया- 'यदि हम दीवार पर टूटा हुआ कांच लगा देंगे तो दीवार पर पक्षी नहीं बैठ पाएंगे। कुछ और तरकीब निकालो।'

यही वजह थी कि राष्ट्रपति भवन में बायो डायवर्सिटी पार्क का आगाज भी डॉ. कलाम के कार्यकाल में ही हुआ था। जिसमें बहुत से पक्षियों और पशुओं की प्रजातियां लाई गई थी। मछलियों के लिए तालाब, खरगोश के खोह, बत्तखों के घर और पक्षियों के ठिकाने से यह पार्क प्रकृति प्रेम का अद्‌भुत स्थल बन गया था। एक बार डॉ. कलाम अपने मित्र डॉ. सुधीर के साथ टहलने निकले, तभी एक नन्ही हिरनी रास्ते में दिखी, जिसे उसकी माँ ने त्याग दिया था। वह ठीक से चल भी नहीं पा रही थी, क्योंकि उसकी दो टांगे जन्म से ही चोटिल थी। डॉ. सुधीर के इलाज से वह कुछ दिनों बाद ठीक हो गई और कुछ हफ्तों बाद हिरनों के झुण्ड ने उसे अपना लिया। डॉ. कलाम के अनुसार- 'मैं इस घटना से बहुत अभिभूत हुआ था। राष्ट्रपति भवन में मुगल गार्डन और परिसर के अन्य बगीचों ने जो आनंद की अनुभूति मुझे दी, उसके प्रति बहुत भावुक हूं। मैं इस बात के लिए सर्वशक्तिमान का शुक्रिया अदा करता हूं, जिसने मुझे कुदरत का यह सुख लेने का मौका दिया।'

उनके कार्यकाल में राष्ट्रपति भवन साधारण लोगों के आगमन और बच्चों की खिलखिलाहट से गूंजता रहा। बचपन से ही अब्दुल कलाम

का सपना था कि वो एक दिन फाइटर प्लेन उड़ाये। लंबे समय विज्ञान के क्षेत्र में देश की सेवा करने के बाद सन 2006 में उन्हें यह मौका मिला और उन्होंने लगभग 30 मिनट तक हवा में अपने इस सपने को जिया था। जून, 2006 को जब तत्कालीन राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने 30 मिनट के लिए लड़ाकू वायुयान सुखोई-30 एमकेआई को उड़ाया था, तो उन्हें देखने वालों की निगाहें बरबस आसमान में ठिठक गई थीं। शायद दुनिया ने पहली बार भारत के राष्ट्रपति और मिसाइल मैन के हाथों में विमान की स्टीयरिंग देखी थी। उस समय उनके साथ सहयोगी पायलट विंग कमांडर अजय राठौर थे।

उनकी यही सबसे बड़ी बात थी कि उन्होंने राष्ट्रपति जैसे 'लार्जर दैन लाइफ' पद को अपने व्यक्तित्व पर कभी हावी नहीं होने दिया। बहरहाल, राष्ट्रपति के रूप में उनके पास मोटे तौर पर दो विकल्प थे। एक तो यह कि कार्यपालिका प्रमुख के रूप में वे सरकार के कामकाज को लेकर सचेत रहें और जहां भी उसे रास्ते से इधर-उधर होते देखें, वहां अपनी मर्यादा में रहते हुए उसकी गलतियों का अहसास कराएं।

दूसरा रास्ता राष्ट्रपति भवन को अकादमिक और वैचारिक विमर्श का केंद्र बनाने तथा एक दूरदर्शी अभिभावक के रूप में राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास का भविष्योन्मुख खाका खींचने का था। इसे उनकी शक्ति कहें या सीमा, लेकिन लाभ का पद संबंधी विधेयक को लौटाने के निर्णय को छोड़ दें, तो आम तौर पर उन्होंने पहले वाले रास्ते से कतरा कर निकलना ही बेहतर समझा। राष्ट्रपति के रूप में अपने सामने आई 21 दया याचिकाओं में से 20 के संबंध में कोई फैसला न करने को लेकर उन्हें आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। इस बात का जवाब देते हुए उन्होंने एक बार कहा था- 'खुदा ने तुम्हें भेजा है, तो खुदा ही तुम्हें ऊपर बुलाएगा। जब उसने जिंदगी दी है, तो वहीं तुम्हारी जिंदगी लेने का हकदार भी है।' ऐसी सोच रखने वाले डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम किसी को भी मृत्युदंड देने से पीछे हटते थे।

जी हां, बतौर राष्ट्रपति उन्हें कई बार ऐसे फैसले लेने पड़े, जो उनके दिल को चीर कर रख देते थे, लेकिन उन्हें ऐसे फैसले लेने पड़ते थे। उन्हीं फैसलों में से एक फैसला मृत्युदंड का होता था। वर्ष 2002-2007 के बीच अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने 28 दया याचिकाओं में से 2 पर

ही फैसला लिया था।

वर्ष 2004 में उन्होंने धनंजय चटर्जी की पत्नी और माँ की दया याचिका को खारिज कर दिया था। धनंजय ने अपने ही अपार्टमेंट में एक लड़की का बलात्कार किया था। साल 2006 में कलाम ने खेरज राम की दया याचिका को मंजूरी दे दी थी, लेकिन उन्होंने पांच साल के दौरान दर्जनों दया याचिकाओं को लंबित छोड़ दिया था। जिसमें सदन आतंकी हमले के आरोपी अफजल गुरु की याचिका भी शामिल थी।

कलाम ने अपनी एक किताब में मृत्युदंड के बारे में लिखा भी था- 'मुझे लगता है जीवन में सबसे बड़ा और कठिन कोई काम था तो वह यही था। किसी की जिंदगी अपने हाथों से छीन लेना। जब खुदा ने जिंदगी दी है, तो जिंदगी छीनने का हक भी उसको ही है।' उन्होंने लिखा- 'पांच सालों के कार्यकाल के दौरान बतौर राष्ट्रपति यह काम मेरे लिए सबसे बड़ा था। मुझे लगता है एक राष्ट्रपति के लिए यह बहुत ही मुश्किल भरा काम है। मैं जब उन याचिकाओं को देखता था, मुझे ऐसा लगता था जैसे मैं खुदा के बंदे को सजा दे रहा हूं। जिसने शायद जान कर कोई गुनाह नहीं किया है। लेकिन गुनाह तो हो गया है। अब उसके साथ-साथ उसके परिवार को भी सजा मिलने जा रही है।'

23 मई, 2005 को अपनी रूस यात्रा के दौरान उन्होंने मंत्रिमंडल की सलाह पर बिहार विधानसभा को भंग कर दिया था। बाद में सुप्रीम कोर्ट ने इस पर प्रतिकूल टिप्पणी की थी। कलाम ने काफी दिनों बाद खुलासा किया कि इस टिप्पणी के बाद वे अपना पद छोड़ देना चाहते थे।

यूं तो डॉ. अब्दुल कलाम राजनीतिक क्षेत्र के व्यक्ति नहीं थे, लेकिन राष्ट्रवादी सोच और राष्ट्रपति बनने के बाद भारत की कल्याण संबंधी नीतियों के कारण इन्हें कुछ हद तक राजनीतिक दृष्टि से सम्पन्न माना

जा सकता है। उन्होंने जब पाकिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ से मुलाकात की, तो मुशर्रफ को लेक्चर तो दिया ही, साथ ही कई बातें भी सिखाई। यह घटना उनकी सोच को और स्पष्ट करती है। हुआ यूं कि वर्ष 2005 में जनरल परवेज मुशर्रफ भारत आए तो वो तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के साथ-साथ राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम से भी मिले।

मुलाकात से एक दिन पहले कलाम के सचिव पी.के. नायर उनके पास ब्रीफिंग के लिए गए। पी.के. नायर ने बताया कि सर कल मुशर्रफ आपसे मिलने आ रहे हैं।

इस पर उन्होंने जवाब दिया- 'हां मुझे पता है।'

नायर ने कहा- 'वो जरूर कश्मीर का मुद्दा उठाएंगे। आपको इसके लिए तैयार रहना चाहिए।'

कलाम एक क्षण के लिए ठिठके, उनकी तरफ देखा और कहा- 'उसकी चिंता मत करो। मैं सब संभाल लूंगा।' अगले दिन ठीक 7:30 बजे परवेज मुशर्रफ अपने काफिले के साथ राष्ट्रपति भवन पहुंचे। उन्हें पहली मंजिल पर नॉर्थ ड्राइंग रूम में ले जाया गया। कलाम ने उनका स्वागत किया।

उनकी कुर्सी तक गए और उनके बगल में बैठे। मुलाकात का वक्त 30 मिनट तय था। कलाम ने बोलना शुरू किया- 'राष्ट्रपति महोदय, भारत की तरह आपके यहां भी बहुत से ग्रामीण इलाके होंगे। आपको नहीं लगता कि हमें उनके विकास के लिए जो कुछ संभव हो करना चाहिए।'

ऐसे में जनरल मुशर्रफ 'हां' के अलावा और क्या कह सकते थे। कलाम ने कहना शुरू किया- 'मैं आपको संक्षेप में 'पूरा' के बारे में बताऊंगा। पूरा का मतलब है प्रोवाइडिंग अर्बन एमीमिटीज टू रूरल एरियाज।'

पीछे लगी प्लाजमा स्क्रीन पर हरकत हुई और कलाम ने अगले 26 मिनट तक मुशर्रफ को लेक्चर दिया कि 'पूरा' का क्या मतलब है और अगले 20 सालों में दोनों देश इसे किस तरह हासिल कर सकते हैं। 30 मिनट बाद मुशर्रफ ने कहा कि धन्यवाद राष्ट्रपति महोदय। भारत भाग्यशाली है कि उसके पास आप जैसा एक वैज्ञानिक राष्ट्रपति है।

दोनों ने हाथ मिलाए। नायर ने अपनी डायरी में लिखा कि कलाम ने दिखाया कि वैज्ञानिक भी कूटनीतिक हो सकते हैं।

बाद में 'पूरा' क्या है, उस पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'इंडिया 2020'

में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। वे भारत को अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया का सिरमौर राष्ट्र बनते देखना चाहते थे।

कलाम का जीवन आज की राजनीति के दौर में खोखली होती हमारी चेतना पर भी एक टिप्पणी है। एक मुसलमान, जो सरस्वती वीणा बजाते हुए, गीता के श्लोक बांचते हुए और शाकाहार अपनाते हुए भी अपने कौम की जड़ों से जुड़ा रहा। हम कलाम साहब के संघर्ष को और विस्तार देते हैं। भारत का वो महामहिम एक-एक बूंद मिट्टी के तेल के लिए तरसा था। लेकिन उसी ने परमाणु हथियारों के क्षेत्र में भारत को सुपर पावर बनाने की बात सोची। वह विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी तकनीकी विकास चाहते थे। डॉ. कलाम का कहना था- 'सॉफ्टवेयर' का क्षेत्र सभी वर्जनाओं से मुक्त होना चाहिए ताकि अधिकाधिक लोग इसकी उपयोगिता से लाभांवित हो सकें। ऐसे में सूचना तकनीक का तीव्र गति से विकास हो सकेगा।'

उनका कार्यकाल 25 जुलाई, 2007 को समाप्त हुआ।

राष्ट्रपति दायित्व से मुक्ति के बाद

राष्ट्रपति भवन से निकलने के बाद भी कलाम का व्यक्तित्व मुरझाया नहीं। एक अनुभवी बुजुर्ग की भूमिका में वापस आकर वे एक शिक्षक, जीवन-दर्शन के व्याख्याता और अराजनीतिक जननेता के रूप में लोकप्रिय हुए।

वैज्ञानिक और शिक्षक डॉ. कलाम के जीवन का मिशन देश के बच्चों, युवाओं और कर्णधारों को जाग्रत करने का था। राष्ट्रपति जैसे महत्त्वपूर्ण और जिम्मेदारी वाले पद पर रहते हुए भी वे यहां-वहां 'कक्षाएं' लेते रहे थे। उसके बाद भी जब-तब उनकी कक्षाओं की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती थी। उनकी कक्षा में बच्चे, युवक, राजनेता, जन-प्रतिनिधि, शिक्षक और पत्रकार, सभी बैठे मिलते। उनका कहना था, 'हर विद्यार्थी और शिक्षक अपने जीवन में एक लक्ष्य को तय कर उसे पाने के लिए पुरुषार्थ करने और मुश्किल-से-मुश्किल परिस्थितियों में भी हार न मानने की बात को मन में बैठा ले। यही हमारे देश को विश्व में एक महाशक्ति के रूप में स्थापित करने का महामंत्र है।'

कार्यालय छोड़ने के बाद, कलाम भारतीय प्रबंधन संस्थान शिलोंग, भारतीय प्रबंधन संस्थान अहमदाबाद, भारतीय प्रबंधन संस्थान इंदौर व भारतीय विज्ञान संस्थान बैंगलोर के मानद फैलो तथा एक विजिटिंग प्रोफेसर बन गए। भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, तिरुवनंतपुरम के कुलाधिपति, अन्ना विश्वविद्यालय में एयरोस्पेस इंजीनियरिंग के प्रोफेसर तथा भारत भर में कई अन्य शैक्षणिक और अनुसंधान संस्थानों में सहायक बन गए। उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और अन्ना विश्वविद्यालय में सूचना प्रौद्योगिकी और अंतर्राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान हैदराबाद में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पढ़ाया।

मई 2012 में, डॉ. कलाम ने भारत के युवाओं के लिए एक कार्यक्रम, भ्रष्टाचार को हराने के एक केंद्रीय विषय के साथ, 'मैं आंदोलन को क्या दे सकता हूं' का शुभारंभ किया। उन्होंने यहां तमिल कविता लिखने और वेन्नई नामक दक्षिण भारतीय स्ट्रिंग वाद्य यंत्र को बजाने का भी आनंद लिया।

उन्हें 2003 व 2006 में 'एमटीवी यूथ आइकन ऑफ द इयर' के लिए नामांकित किया गया था।

वे जीवनपर्यंत भावनात्मक विषयों से भी जुड़े रहे हैं। 'येनूदया प्रायना' तमिल भाषा में लिखा उनका कविता-संग्रह है, जिसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी हुआ है। यह पुस्तक भी उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। वे संगीत के प्रेमी थे और स्वयं वीणा बजाने का शौक भी रखते थे। उनके घर में विज्ञान पुस्तकों के साथ ही कविता संग्रहों और संगीत का बड़ा खज़ाना था। एक ओर जहां विक्रम साराभाई उनके प्रेरक और पसंदीदा वैज्ञानिक थे तो दूसरी ओर मिल्टन वाल्ट व्हाइटमैन और रवीन्द्रनाथ उनके पसंदीदा कवि थे। लोग उन्हें क्या कहें- वैज्ञानिक, तमिल, अच्छा मनुष्य या भारतीय? स्वयं कलाम के शब्दों में- 'एक अच्छे मनुष्य में बाकी तीनों मिल सकते हैं।' यानी, कलाम चाहते थे कि लोग उन्हें सिर्फ 'अच्छा मनुष्य' कहें। दरअसल, वे धर्म से परे थे। वे केवल देश के ही राष्ट्रपति नहीं थे, बल्कि जनता के राष्ट्रपति थे। वे देश के पहले ऐसे राष्ट्रपति थे, जो जात-पात से बहुत परे थे। इनके लिए मानवता का ध र्म ही सबसे बड़ा था।

वे भारत को हर हाल में सन् 2020 तक विश्व-शक्ति के रूप में देखने का सपना संजोये हुए थे। वे विकास की राजनीति के पक्षधर थे। जब भी

उन्हें अवसर मिलता, वे नये विचार देने से पीछे नहीं हटते थे। जब मध्य प्रदेश में 'अटल ज्योति अभियान' की शुरुआत हुई थी। जिसके अंतर्गत प्रदेश में चौबीसों घंटे बिजली उपलब्ध कराने की योजना थी। अप्रैल 2013 तक प्रदेश के 6 जिलों में यह योजना लागू हो चुकी थी। तब एक जिले में उद्घाटन के लिए कलाम को आमंत्रित किया गया था। इस अवसर पर प्रदेश में बिजली की उपलब्धि पर खुशी जाहिर करते हुए उन्होंने लोगों से ऊर्जा दक्षता को अपनाने पर भी जोर दिया। एक नया विचार देते हुए उन्होंने कहा कि इससे जो रिजर्व तैयार होगा, वह पांचवें प्रकार के ईंधन की भूमिका निबाहेगा।

डॉ. कलाम प्राचीन भारतीय चिकित्सा आयुर्वेद उपकरण को लेकर काफी उत्साहित थे और विश्वभर में इसका आधुनिकीकरण करना चाहते थे, यह बात अन्तर्राष्ट्रीय एनजीओ के प्रमुख द्वारा बताई गई है। भारत, ब्रिटेन और स्विटजरलैंड में अन्तर्राष्ट्रीय आयुर्वेद फाउंडेशन (आईएएफ) के प्रमुख, प्रफुल्ल पटेल, जब नवंबर 2005 में डॉ. कलाम से मिले थे, तो उन्होंने आयुर्वेद के लिए उनके प्यार के बारे में जाना था।

पटेल ने बताया- 'हमने कई चुनौतियों पर डॉ. कलाम से चर्चा की कि भारत और विदेशों में आयुर्वेद को लेकर किन चीजों का सामना करना पड़ रहा था और इस पर उनकी सलाह मांगी। उन्होंने हर्बल और नॉन हर्बल आयुर्वेद रिसर्च और विकास केंद्र की स्थापना करने पर जोर दिया। साथ ही, उन्होंने सलाह दी कि 'केंद्र को आयुर्वेद और पारंपरिक औषधीय उत्पाद की गुणवत्ता, सुरक्षा, स्थिरता और प्रभाव आदि की आसान जांच और प्रमाणपत्र देना चाहिए।'

पटेल ने आगे बताते हुए कहा कि आईएएफ ने आयुर्वेद रिसर्च और विकास केंद्र के लिए परियोजना तैयार की है, जो कि पश्चिमी दवाओं की तर्ज पर होगा। डॉ. कलाम भी औषधीय पौधों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्सुक थे, जिसमें विश्व ने 68 बिलियन डॉलर का उत्पादन किया और इसमें भारतीय हिस्सेदारी मुश्किल से आधे बिलियन डॉलर थी तथा इसमें चीन भारत से काफी आगे खड़ा है।

डॉ. कलाम ने जोर देकर कहा था कि भारत के पास दक्षिण-पूर्वी राज्यों और हिमालय में विशाल जमीन है, जो कि बड़े पैमाने पर औषधि उत्पादन के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। अगर कोई भी बड़ी कंपनी

इसके लिए भारत में कहीं भी निवेश करती है, तो वह स्थानीय किसानों को इनमें शामिल करने के लिए प्रेरित करेंगे- औषधीय पौधे सीधे किसानों से खरीदें- गुजरात में अमूल डेयरी की तर्ज की तरह।

आईएएफ ने आर.एंड.डी.सेंटर (रिसर्च एंड डेवलपमेंट सेंटर) परियोजना की रिपोर्ट पहले से ही तैयार कर ली थी और वह एक संघ बनने का इंतजार कर रहा था, जो डॉ. कलाम के दोनों परियोजनाओं को ले सके। लेकिन इससे पहले काल के क्रूर पंजों ने उन्हें हमसे छीन लिया।

विजन 2020

कलाम साहब ने राष्ट्रपति रहते हुए सांसदों और विधायकों के अलावा देश के नीति नियंताओं के साथ मुलाकात कर विकास की दिशा में आगे बढ़ने की योजनाएं बनाई थी। राष्ट्रपति रहते हुए उन्होंने अपना एक विजन- पी.यू.आर.ए (प्रोवाइडिंग अरबन एमिनिटीज इन रूरल एरियाज) देश के सामने पेश किया, जिसके मुताबिक 2020 तक भारत को एक पूर्ण विकसित राष्ट्र हो जाना है। इन वजहों से उस दौर में लोग राष्ट्रपति भवन को समाज में बदलाव की प्रयोगशाला तक कहने लगे थे।

सन् 2020 तक भारत एक विश्व शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया, इसके लिए उन्होंने एक रोडमैप तैयार किया था। वे समूचे भारत में घूम-घूम कर युवाओं और विद्यार्थियों को प्रेरित करने में लगे थे। उनके विजन 2020 को अगर देखें, तो वे भविष्यदृष्टा और अनुपम देशभक्त भी थे।

अपने विजन 2020 में उन्होंने भारत को सर्वशक्तिमान बनाने का भाव रखा था, जिसकी तैयारी उन्होंने बहुत पहले शुरू कर दी थी।

उन्होंने 1990 के दशक के अपने उन अनुभवों को एक जगह साझा करते हुए लिखा था- 'मुझे तकनीक इन्फॉर्मेशन, फॉरकास्टिंग एंड ऐसेसमेन्ट कौंसिल (टीआईएफएसी) के नेतृत्व की जिम्मेदारी दी गई थी। यह एक स्वायत्त संस्था है, जो भारत के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के तहत 1988 में गठित हुई। राष्ट्रीय महत्त्व के विशिष्ट क्षेत्रों में इनोवेशन की सहायता और तकनीक में विस्तार के लिए इसका गठन हुआ था। इसकी पहली ही बैठक में कौंसिल के सदस्यों ने फैसला किया कि साल 2020 तक भारत को आर्थिक रूप से विकसित राष्ट्र में बदलने की योजना यह परिषद तैयार करेगी। इस तरह के विजन की रूपरेखा तैयार करने की प्रक्रिया दो दशक पहले ही तय हुई थी। कई टीमों ने दिन-रात परिश्रम करके इसे

तैयार किया था। भारत में आज भी अधिकतर लोग गांवों में निवास करते हैं। इसलिए इसमें मैंने पूरा (Providing Urban Aminities in Rural Areas) नामक एक अवधारणा सामने रखी थी। मेरा दृढ़विश्वास था कि गांवों में आर्थिक कनेक्टिविटी की नितांत आवश्यकता है, जो भौतिक, इलेक्ट्रॉनिक और ज्ञान के संयोजक के माध्यम से लाई जा सकती है। भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने के लिए हमें एक ऐसे राष्ट्र का विजन लेकर आगे बढ़ते रहना है, जिसके बाशिंदे गरीबी की रेखा के काफी ऊपर उठ चुके हों। उनकी शिक्षा और सेहत स्तरीय हो, उस राष्ट्र की सुरक्षा अचूक हो और तमाम बड़े क्षेत्रों में उस मुल्क की उत्पादन क्षमता ऐसी गुणवत्ता पूर्ण हो, जिससे देश में खुशहाली आये और कायम रहे।'

यह वह समय था, जब तत्कालीन प्रधानमन्त्री पी.वी. नरसिंह राव द्वारा शुरू आर्थिक उदारीकरण का प्रभाव दिखने लगा था और कौंसिल के सदस्य इसे लेकर आशंकित थे कि बदलते आर्थिक व सामाजिक हालात में कलाम की टीम कैसे एक दीर्घकालिक योजना तैयार कर सकती हैं, जबकि 20 साल बाद के हालात बिलकुल भिन्न होंगे। उस समय देश की अर्थव्यवस्था करीब 5-6 फीसदी की सालाना दर से बढ़ रही थी और उनकी टीम को अगले 10 वर्षों के लिए कम-से-कम 10 फीसदी की विकास दर के बारे में सोचना था, ताकि लोकतान्त्रिक, बहुभाषी, बहुधार्मिक व बहुसांस्कृतिक आबादी का विकास हो पाए।

टीआईएफएसी की टीम ने दूसरे विभागों के साथ मिलकर दो वर्ष से भी अधिक समय तक इस पर काम किया और करीब 25 रिपोर्टें तैयार की गईं। इनमें विविध क्षेत्रों, जैसे कृषि-खाद्य प्रसंस्करण, नागरिक उड्डयन, विद्युत, जल-मार्ग, सड़क-परिवहन, दूरसंचार, दूरदर्शन, खाद्यान्न और खेती, इंजीनियरिंग उद्योग, स्वास्थ्य-सेवा, जीव विज्ञान और जैव-प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित विजन शामिल थे।

उनके अनुसार साल 2020 का भारत आपको कैसा दिखना चाहिए था, यह इन दस बिंदुओं में समाहित है-

- पहला, वह एक ऐसा देश हो, जहां शहरों और देहातों के बीच का अन्तर नाम मात्र का रह जाये।
- दूसरा, जहां बिजली और स्वच्छ पेयजल तक सबकी पहुंच हो और सबको ये दोनों समान रूप से मिलें।

- तीसरा, जहां देश के विकास में कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र समान रूप से सहायक हों।
- चौथा, जहां सामाजिक या आर्थिक भेदभाव के कारण कोई मेधावी छात्र स्तरीय शिक्षा से वंचित न रहने पाए।
- पांचवां, भारत दुनिया भर के विद्वानों, वैज्ञानिकों व आविष्कारकों के लिए उपयुक्त गंतव्य हो।
- छठा, जहां सबको बेहतरीन स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हों।
- सातवां, जहां गरीबी का पूर्ण उन्मूलन हो चुका हो, निरक्षरता मिट चुकी हो, बच्चों व औरतों के खिलाफ अपराध थम चुके हों।
- आठवां, समाज में कोई खुद को उपेक्षित न पाये।
- नौवां, भारत एक समृद्ध, स्वस्थ, सुरक्षित, आतंकवाद मुक्त, शान्त और खुशहाल राष्ट्र बने और विकास के मार्ग पर सतत रहे।
- दसवां, भारत रहने के लिहाज से दुनिया की बेहतरीन जगहों में से एक हो और उसे अपने नेतृत्व पर गर्व हो।

इस सबके लिए कलाम मानते थे कि हमें उन पांच क्षेत्रों में बदलाव करना होगा, जिनमें यह देश सामर्थ्य रखता है और यह क्षेत्र हैं- कृषि एवं खाद्य-प्रसंस्करण, शिक्षा व सेहत, सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी, ढांचागत विकास और अहम प्रौद्योगिकियों में आत्मनिर्भरता।

इंडिया विजन-2020 दस्तावेज पी.वी. नरसिंह राव के शासनकाल में तैयार हुई। इसके बाद तत्कालीन प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी को दिया गया, जिन्होंने संसद में इसको रखा और स्वतन्त्रता दिवस के अपने

एक भाषण में इसका जिक्र भी किया कि साल 2020 से पहले भारत आर्थिक तौर पर विकसित राष्ट्र बन जायेगा। कलाम के राष्ट्रपति काल के दौरान राज्यपालों के एक सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने भी यह घोषणा की थी कि उनकी सरकार देश को आर्थिक समृद्धि के रास्ते पर आगे बढ़ाने का काम करेगी।

किसी भी राष्ट्रीय विजन को साकार करने में कम-से-कम 15 साल लग ही जाते हैं। लोकतान्त्रिक तरीके से निर्वाचित कम-से-कम तीन सरकारों को इस पर काम करना होता है। राष्ट्रीय दृष्टि को किसी एक पार्टी का एजेन्डा नहीं माना जा सकता, पार्टियों के घोषणा-पत्रों का हिस्सा हो सकती है। सत्ता में मौजूद एक पार्टी के कामकाज का तरीका पिछली पार्टी से अलग हो सकता है, लेकिन राष्ट्रीय विजन सबसे ऊपर होती है।

विजन 2020 किसी एक पार्टी या सरकार से ताल्लुक नहीं रखती। यह देश का सपना है। कलाम मानते थे कि हमारे पास इस विजन को हासिल करने के लिए अब बहुत कम समय बचा है। इसलिए देश को प्राथमिकता के साथ इसे लेना चाहिए और लक्ष्य को पाने के लिए इससे जुड़े सभी हितधारकों का मनोबल बढ़ाना चाहिए।

वे मानते थे कि देश ने कृषि उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने में काफी प्रगति की है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा मोबाइल फोन उपभोक्ता बन चुका है। आटॉमोबाइल इण्डस्ट्री के क्षेत्र में हम दुनिया में तीसरा स्थान रखते हैं। इसके अलावा, ग्रामीण व शहरी विकास योजनाओं ने आधाारभूत ढांचों को विस्तार दिया है, जैसे- स्वर्णिम चतुर्भुज सड़क मार्ग, मेट्रो शहरों में विश्वस्तरीय हवाई अड्डे वगैरह। साल 2012 में भारत की साक्षरता दर 74.04 फीसदी हो गई थी। इन तमाम तरक्कियों के बीच वे यह कहते थे- 'हमें यह भी देखना है कि 1990 के दशक में हमने क्या सोचा था और उसे पाने में अभी अन्तर क्यों है?'

राजनीति और विकास को एक ही परिप्रेक्ष्य में रखते हुए वे यह मानते थे कि यह हमारी राजनैतिक व्यवस्था ही है, जो किसानों, वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों, डॉक्टरों, शिक्षकों, वकीलों और अन्य पेशेवर लोगों को हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति, स्पेस मिशन, साइन्स एण्ड तकनीक मिशन और इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेन्ट मिशन में देश को कामयाबी दिलाने के लिए

जरूरी मदद मुहैया करती है। वे कहते थे- 'आज हम जो कुछ हैं अपनी इस राजनैतिक व्यवस्था की वजह से हैं। इसलिए नौजवानों को राजनीति से दूर नहीं रखना चाहिए, बल्कि देश को सभी क्षेत्रों में महान बनाने के लिए इसका नेतृत्व, मार्गदर्शन व प्रेरणा के वास्ते उन्हें आना चाहिए। युवाओं का मन इस भावना से ओत-प्रोत होता है कि, 'मैं यह कर सकता हूं' और उसे यकीन है कि 'भारत एक विकसित राष्ट्र बनेगा।' अगर आप यह महसूस करते हैं कि आप यह कर सकते हैं, तो निश्चित रूप से भारत पंचायत से लेकर संसद तक रचनात्मक नेतृत्व को पा जायेगा।'

भविष्य के भारत के प्रति अपने दृष्टिकोण की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने 'विजन 2020' में लिखा था कि इसमें स्वतंत्रता, विकासशीलता और संसार के सामने सुदृढ़ता से खड़ा होने जैसे तत्व शामिल हैं। उन्होंने अपने विजन में कृषि और खाद्य पदार्थ उत्पादन, देश के हर हिस्से में बिजली, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं, सूचना तकनीकी तथा युद्ध संबंधी पांच क्षेत्रों के सुदृढ़ीकरण की चर्चा कीं। लेकिन यह सब तभी हो सकता है जब हम मूल्यों से भरे हों। इसलिए कलाम की हर बात में मानवीय मूल्यों पर जोर रहता था। वे चाहते थे कि घर-परिवार और स्कूल-कॉलेजों में मूल्यों से भरी शिक्षा हो; मूल्यों से भरे कर्त्तव्य हों, मूल्यों से भरी राजनीति हो और मूल्यों से भरा ही हमारा सोच व जीवन हो। हर व्यक्ति यह महसूस करे कि किसी भी लक्ष्य को पाने के लिए मेहनत और समर्पण जरूरी है। कोई हमारी मदद नहीं कर सकता। केवल हम स्वयं ही अपनी मदद कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए हमें करोड़ों लोगों के राष्ट्र की तरह काम करना चाहिए न कि अलग-अलग करोड़ों लोगों की तरह।

कलाम देश के पहले वैज्ञानिक और अविवाहित राष्ट्रपति भी थे। उनका कार्यकाल इतना सफल और प्रेरणादायी था कि उन्हें सहज ही दूसरा कार्यकाल दिया जाना चाहिए था, लेकिन राजनैतिक वर्ग सामान्य जन में उनकी बढ़ती लोकप्रियता से आशंकित था। उन्हें 'जनता का राष्ट्रपति' कहा जाने लगा था। इस साधारण-से दिखने वाले शर्मीले शख्स ने राष्ट्रपति की भूमिका को लेकर देश की धारणा बदल दी थी। उनके मुताबिक, देश को अच्छे नेताओं की दरकार है। वे युवाओं से अच्छे नेता बनने की कामना करते थे। वे ऐसे नेता पैदा करना चाहते थे, जो देश को नई बुलंदियों की ओर ले जाएं। उनकी बातें युवाओं के दिलों को छूती थीं। वे भी युवाओं

को नए दौर के क्रांतिकारी के रूप में देखा करते थे। वे विरले राष्ट्रपति थे, जो देश की सर्वोच्च संस्था को आम लोगों के करीब ले आए थे।

उन्होंने कभी अपनी आस्थाएं छुपाई नहीं। वह हमेशा अपने आचरण और चरित्र से अपनी आस्था को जाहिर किया करते थे। धर्म के बारे में उनके विचार अपनी मातृभूमि के प्रति आस्था रखने को ही प्रेरित करते थे। उनके लिए देश ही सबसे बढ़कर था। वे बेशक सबसे विनम्र राष्ट्रपति थे। डॉ. कलाम देश के दूर-दराज के कोनों तक पहुंचे और लाखों स्कूलों-कॉलेजों के छात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित किया।

उन्होंने धार्मिक कट्टरता और राजनैतिक बंदिशों की दीवारें तोड़कर राष्ट्रीय गौरव की पुनर्स्थापना की। कलाम का व्यक्तित्व प्रेरणादायी था। वह ऐसे नायक थे, जिन्होंने दिखाया कि देशभक्ति का जज्बा साधारण लोगों में आज भी उतना ही जोरदार है। उनका सरल और दिल को छूने वाला व्यवहार उन्हें राजनैतिक नेताओं से बीस साबित करता था। उनका वैज्ञानिक दिमाग हमेशा मिसाइलों के पार जाता था। वे वैज्ञानिकों से खुद मिले और उन्हें स्टेम सेल से लेकर प्रोटियोमिक्स और नैनो तकनीक में नई ऊंचाइयों को छूने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने उन्हें जन स्वास्थ्य सुधारने के लिए नए शोध करने के लिए प्रेरित किया। उनकी बातों को वैज्ञानिक बिरादरी तवज्जो देती थी, क्योंकि उन्होंने मिसाइल तकनीक के अपने ज्ञान से ऐसा कृत्रिम पैर बनाने में मदद की थी, जो अब तक इस्तेमाल में लाए जाने वाले पैरों से हल्का था। उन्होंने एक सस्ते स्टेंट का भी विकास किया था।

राष्ट्रपति कलाम को विज्ञान की ऊंची उपलब्धियां भी हासिल थीं तो उन्हें सामान्य आदमी की तरह रेलवे के तीसरे दर्जे की यात्रा और पानी के लिए लंबी-लंबी कतारों में लगने का भी अनुभव था। उन्होंने मिसाइल कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की थी और सुखोई विमान भी उड़ाया था। उनका संदेश देश के छात्रों और युवाओं के लिए होता था, जो देश के भावी कर्णधार होते हैं।

डॉ. कलाम का व्यक्तित्व

यह अद्‌भुत नहीं तो और क्या है? अखबार बेचने से लेकर अपने जीवन के सफर में तमाम उतार-चढ़ाव, सुख-दु:ख का मजा भोग चुके डॉ. कलाम देश के न सिर्फ राष्ट्रपति बने, बल्कि आधुनिक भारत के सबसे लोकप्रिय राष्ट्रपति, महान भविष्यद्रष्टा, जन-जन के प्रेरणास्रोत भी बन गए। ऐसे अनमोल रत्न सरीखे भारत रत्न डॉ. कलाम का निधन देश के साथ ही मानवता के लिए एक बड़ी क्षति है। कोई उन्हें कैसे भूल सकता है, जो देश को एक सक्षम परमाणु संपन्न राष्ट्र बनाने के साथ ही बच्चों-छात्रों और शिक्षकों के जीवन के प्रेरणास्रोत बन गए। साधारण पृष्ठभूमि में पले-बढ़े कलाम तमाम अभावों से दो-चार होने के बावजूद एक सफल वैज्ञानिक बने, फिर एक चिंतक, पथप्रदर्शक एवं साम्प्रदायिकता के इस दौर में राष्ट्र के सच्चे सपूत बन गए।

डॉ. कलाम की प्रतिभा के स्तर को इसी बात से समझा जा सकता है कि वह सीधे विज्ञान के क्षेत्र से राजनीति के सर्वोच्च पद पर आसीन हुए थे। द्वीप जैसे छोटे से शहर रामेश्वरम में पैदा हुए अब्दुल कलाम का प्रकृति से बहुत जुड़ाव रहा है। इसके पीछे शायद यह कारण भी हो सकता है कि उनका गृह-स्थान स्वयं एक प्राकृतिक और मनोहारी स्थान था। बचपन से ही उन्होंने अपनी पढ़ाई को बहुत अधिक अहमियत दी। वह जानते थे कि उन्हें जीवन में सफल होना है, तो पढ़ाई को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अब्दुल कलाम का व्यक्तित्व इतना उन्नत है कि वह सभी धर्म, जाति एवं सम्प्रदायों के व्यक्ति नजर आते हैं।

वे हर कार्य को निपुणता के साथ करते थे, इस बात की पुष्टि उनकी इस बात से होती है कि वे स्वतंत्रता दिवस पर दिए जाने वाले अपने भाषण को लेकर भी खासे चौकस रहते थे। 2005 के स्वतंत्रता दिवस के मौके पर

दिए गए उनके भाषण को 15 बार लिखा गया। इसके अलावा 25 अप्रैल, 2007 को कलाम को यूरोपियन पार्लियामेंट में भाषण देना था। उस भाषण के 31 ड्राफ्ट हुए, जिसके बाद वह सुनिश्चित हो पाया।

कलाम को चुनौतियों को स्वीकार करना सदैव भाता था। एक बार अब्दुल कलाम की प्रयोगशाला में निजाम इंस्टीटयूट ऑफ मेडिकल साइंसेस के एक हड्डी रोग विशेषज्ञ आये। वे प्रयोगशाला में रखे एक कार्बन के बने पदार्थ के हल्केपन, लेकिन मजबूती को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने कलाम को अपने अस्पताल में आने का निमंत्रण दिया। जब वे अस्पताल पहुंचे, तब वहां उस डॉक्टर सर्जन ने उनका तीन बच्चों से परिचय कराया, जिनके लिए उसने 3-3 किलोग्राम वजन के भारी कैलीपर्स बनाये थे। कैलीपर्स इतने भारी थे कि बच्चों को उन्हें घसीटते हुए चलना पड़ता था। डॉक्टर ने बड़ी आशा के साथ कहा- 'कलाम साहब! इनका दर्द दूर कीजिये।' कलाम भी उन बच्चों की हालत को देखकर अत्यंत दु:खी हुए। उसी समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे अपंग बच्चों के लिए अवश्य ही अत्यंत कम वजन वाले कैलीपर्स का निर्माण करेंगे। तीन सप्ताह की अल्पावधि में वे 300 ग्राम वजन के कैलीपर्स बनाने में सफल हो गये। उन्हें लेकर वे स्वयं अस्पताल पहुंचे। उन अपंगों एवं उनके परिवार के सदस्यों के चेहरों पर खुशी छा गई। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। अब उन बच्चों को अपने कैलीपर्स घसीटते हुए नहीं चलना पड़ेगा। यह एक भारतीय वैज्ञानिक के करुणा, दया, संकल्प और परोपकार का जीता-जागता उदाहरण है।

उनके ऐसे ही उदार व्यक्तित्व के दर्शन 2013 में सैन डिएगो में हो रहे अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष विकास सम्मेलन के दौरान हुए। कुछ छात्र कलाम से मिलने पहुंचे। उस समय कलाम रात्रिभोज कर रहे थे। छात्रों को देख कलाम ने फौरन उन छात्रों को अपनी प्लेट से खाना खाने का निमंत्रण दिया। कलाम का ऐसा सहज व्यवहार देख वहां मौजूद छात्र हैरान थे। कलाम के बार-बार कहने पर एक छात्र ने कलाम की प्लेट में से सलाद का एक टुकड़ा उठा लिया। ऐसे ही थे कलाम। उन्होंने कभी स्वयं को वीआईपी नहीं समझा, वह सभी के साथ मेलजोल रखते थे।

वे दूसरों का सम्मान करना जानते थे। एक बार डॉ. कलाम को आईआईटी वाराणसी की कॉन्वोकेशन सेरेमनी में बतौर मुख्य अतिथि बुलाया

गया। वहां कुल पांच कुर्सियां लगाई गई थी, जिनमें से एक कुर्सी कलाम के लिए थी व अन्य विश्वविद्यालयों के अधिकारियों के लिए थी। कुछ देर बाद कलाम ने नोटिस किया कि पांचों कुर्सियों में से एक कुर्सी, जो कि कलाम के लिए रखी गई थी, वह बाकी कुर्सियों से ऊंची थी। कलाम ने बड़े ही प्रेम पूर्वक वहां के कुलपति से कहा- 'आप मेरी बजाय इस कुर्सी पर बैठ जाएं।' कुलपति के मना करने पर कलाम के लिए तुरंत एक सामान्य कुर्सी का बंदोबस्त किया गया।

डॉ. कलाम में इससे भी कहीं ज्यादा खूबियां थी। उनकी जिंदगी नि:स्वार्थ थी। विनम्र हृदय वाले डॉ. कलाम में बच्चों के लिए कभी न खत्म होने वाला प्यार था। उनकी कुछ नया जानने के लिए कभी न खत्म होने वाली खोज उन्हें दूसरों से अलग करती थी। डॉ. कलाम ने एक बार कहा था- 'उन्होंने अपना कार्यकाल राष्ट्रपति भवन से शुरू किया, तब वह अपने साथ दो सूटकेस लेकर आए थे और अपना कार्यकाल पूरा होने के बाद वापस भी उन्हीं दो सूटकेस के साथ गए।' फिर किसी ने उन दो सूटकेस के बारे में पूछते हुए सवाल कर ही लिया कि आखिर उन दो सूटकेसों में क्या था? इस सवाल का जवाब देते हुए कलाम ने कहा था- 'अगर मैं कहीं एक-दो दिन के लिए जा रहा हूं, तो इससे मेरी दो दिन की जरूरतें पूरी हो जाएंगी। इसमें एक नई प्रकाशित बुक, कभी-कभी मेरा कंप्यूटर, मेरा टेप-रिकार्डर और दो दिन के कपड़े होते हैं।'

डॉ. कलाम अपने व्यक्तिगत जीवन में पूरी तरह अनुशासन का पालन करने वालों में से थे। ऐसा कहा जाता है कि वे कुरान और भगवद्गीता दोनों का अध्ययन करते थे। कलाम ने कई स्थानों पर उल्लेख किया है कि वे तिरुक्कुरल का भी अनुसरण करते हैं, उनके भाषणों में कम-से-कम एक कुरल का उल्लेख अवश्य रहता था। विज्ञान और अध्यात्म जैसे विपरीत छोरों के बीच सम्पर्क के सूत्र तलाशने में भी उनकी गहरी रुचि रही थी। वे विभिन्न धर्माचार्यों से इस संबंध में मिलते रहते थे। वे जैनाचार्य महाप्रज्ञजी से खासे प्रभावित रहे। कलाम ने हमेशा अपने प्रत्येक कार्य में प्रगतिशीलता, रचनात्मकता और नवाचार का परिचय दिया।

राजनीतिक स्तर पर कलाम की चाहत थी कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की भूमिका विस्तार हो और भारत ज्यादा-से-ज्यादा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाये। भारत को महाशक्ति बनने की दिशा में कदम बढ़ाते देखना उनकी

हार्दिक इच्छा थी। उन्होंने कई प्रेरणास्पद पुस्तकों की भी रचना की थी। वे तकनीक को भारत के जनसाधारण तक पहुंचाने की हमेशा वकालत करते रहे थे। बच्चों और युवाओं के बीच डॉ. कलाम अत्यधिक लोकप्रिय थे।

उन्होंने पहले रक्षा वैज्ञानिक के तौर पर मिसाइल मैन के रूप में देश की अमूल्य सेवा की, फिर राष्ट्रपति के रूप में समस्त देश को प्रेरणा प्रदान की। ऐसे महान युगपुरुष को देश का शत-शत् नमन है, जो जीवन के हर क्षेत्र के लोगों के लिए एक मिसाल भी बने। डॉ. कलाम हर रूप में एक आदर्श और सच्चे अर्थों में विरले थे। वह भारतीय मूल्यों में रचे-बसे एक ऐसे शख्स के रूप में उभरे, जो भारतीयता के पर्याय बने। राष्ट्रपति के तौर पर राजनीति की दिशा बदलने की हर संभव कोशिश की तो देश को महाशक्ति बनाने का मूल मंत्र भी दिया। लोगों में विश्वास जगाया कि भारत वास्तव में उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है। उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हमारे नीति-नियंता उनके सपने का भारत बनाने के लिए प्रतिबद्ध हों।

कलाम की पुस्तकें और उनका हिंदी प्रेम

डॉ. कलाम को हिंदी और तमिल से बहुत प्यार था। वे बेहद टूटी फूटी हिंदी बोलते थे, बल्कि ना के बराबर ही बोलते थे, लेकिन हिंदी को लेकर उनका काफी लगाव था। सन 2002 की बात है, डॉ. कलाम तब राष्ट्रपति बने ही थे। संसद भवन के बालयोगी सभागृह में विश्वनाथ प्रताप सिंह की कविताओं का पाठ आयोजित हुआ था। उस समारोह में चार भूतपूर्व प्रधानमंत्री- खुद विश्वनाथ प्रताप सिंह, चंद्रशेखर, देवगौड़ा और आई. के. गुजराल एक साथ एक मंच पर मौजूद थे। भव्य कार्यक्रम था। राष्ट्रपति कलाम उस कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के तौर पर पहुंचे थे। कार्यक्रम हिंदी में था। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपनी कविताएं सुनाई और सारे वक्ताओं ने हिंदी में अपना भाषण दिया, जिसे डॉ. कलाम बेहद संजीदगी से सुनते और समझते रहे। डॉ. कलाम ने विश्वनाथ प्रताप सिंह की कविताओं पर बहुत अच्छा भाषण दिया था।

उनके भाषण को सुनकर ऐसा लग रहा था कि एक अहिंदी भाषी ने कितनी मेहनत की होगी सारी कविताओं और उसके अर्थ व मर्म को समझने के लिए। वहां उपस्थित तमाम लोग हैरान थे कि एक अहिंदी भाषी कैसे इतनी रुचि के साथ कवि गोष्ठी में ना केवल सक्रियता के साथ भाग लेता है, बल्कि हिंदी में आयोजित इस कार्यक्रम को श्रेष्ठ करार देकर ऐसे और कार्यक्रमों के आयोजन की वकालत करता है।

उनका हिंदी प्रेम उनकी अपनी पुस्तकों में भी झलकता है। कलाम साहब की हिंदी में 20 से ज्यादा किताबें प्रकाशित होकर लोकप्रिय हो चुकी हैं। उनकी किताबों के प्रकाशक प्रभात प्रकाशन के निदेशक पीयूष कुमार ने मुझे बताया था कि जब भी वे डॉ. कलाम से मिलने जाते थे तो वे अपनी किताब के हिंदी अनुवाद में खासी रुचि लेते थे। डॉ. कलाम कहा

करते थे कि उनकी मजबूरी है कि वे अंग्रेजी में ही लिखते हैं, लेकिन जब तक उनकी किताब हिंदी और तमिल में ना प्रकाशित हो जाए, उनको संतोष नहीं होता था। कलाम साहब हिंदी में प्रकाशित अपनी किताबों के शीर्षक को लेकर भी खासे सतर्क रहते थे और जानना चाहते थे कि पाठक इस शीर्षक से जुड़ेगा कि नहीं। डॉ. कलाम हिंदी में प्रकाशित किताबों के मूल्य को लेकर भी सजग रहते थे और बार-बार कहा करते थे कि दाम कम-से-कम होने चाहिए ताकि वह अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुंच सके।

डॉ. कलाम भाषा के साथ-साथ तकनीक के मेल पर भी जोर देते थे। उनके साथ कई किताबों के लेखक प्रोफेसर अरुण तिवारी बताते हैं कि डॉ. कलाम हमेशा कहते थे कि तिवारी जो पुस्तक तुम्हारी माँ ना पढ़ सके उसको लिखने का क्या फायदा। मातृभाषा में लिखा साहित्य ही आत्मा को तृप्त करता और छूता है। कलाम तो विज्ञान और चिकित्सा की पढ़ाई भी मातृभाषा के माध्यम से कराए जाने के पक्षधर थे। डॉ. कलाम के साथ 'अग्नि की उड़ान' जैसी किताब लिखने वाले प्रोफेसर तिवारी ने बताया कि एक बार दक्षिण कोरिया से लौटकर डॉ. कलाम वहां की तकनीक और चिकित्सा सुविधा से काफी प्रभावित थे और बोले कि- 'कोरिया ने ये केवल अपनी मातृभाषा के दम पर किया है। भारत को भी हिंदी के माध्यम से ऐसा करना चाहिए।' तो ऐसे थे हमारे राष्ट्रपति डॉ. कलाम, जो गैर हिंदी भाषी होते हुए भी भारत के विकास के लिए हिंदी को आवश्यक मानते थे।

मेरी उनसे मुलाकात 2002 के बाद जब भी हुई, मैं इस बात पर हैरान होती थी कि हिंदी में लिखे लेखों को वे इतनी बारीकी से कैसे समझते हैं। मेरी इस हैरानी पर कलाम साहब अपनी उजली हंसी के साथ कहते 'दिस इज वंडरफुल। हिंदी पीपुल शुड ऑल्सो नो व्हाट इज बीइंग रिट्न इन अदर लैंग्वेजेज।'

उनके करीबी सहयोगी सृजन पाल सिंह से भी बातों-ही-बातों में मुझे पता चला कि हिंदी को लेकर डॉ. कलाम के मन में गहरा अनुराग था। सृजन पाल सिंह ने बताया कि डॉ. कलाम अपने उत्तर भारत के सैकड़ों दौरे पर अपना भाषण हिंदी में उनसे ही बुलवाते थे, ताकि श्रोताओं को उनकी बात समझने में आसानी हो। अपने भाषण की शुरुआती चार-पांच पंक्तियां हिंदी में बोलने के लिए वे अभ्यास किया करते थे। सृजन पाल सिंह ने भी

इस बात को स्वीकारा है कि हिंदी को लेकर राष्ट्रपति डॉ. कलाम के मन में गहरा सम्मान था। उनका हिंदी प्रेम कई हिंदी विरोधियों के लिए मिसाल है। अब्दुल कलाम की हिंदी में अनुवादित किताबें भारतीय प्रकाशन जगत् में एक सुखद घटना की तरह है। एक अनुमान के मुताबिक 'विंग्स ऑफ फायर' की अब तक 10 लाख से ज्यादा प्रतियां बिक चुकी हैं।

डॉ. अब्दुल कलाम भारतीय इतिहास के ऐसे पुरुष हैं, जिनसे लाखों लोग प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अरुण तिवारी लिखित उनकी जीवनी 'विंग्स ऑफ फायर' भारतीय युवाओं और बच्चों के बीच बेहद लोकप्रिय है। छठी कक्षा के एक छात्र ने कलाम की किताब 'विंग्स ऑफ फायर' पढ़ने के बाद अब्दुल कलाम की एक तस्वीर बनाई। उस तस्वीर को देख उस छात्र का परिवार काफी खुश हुआ और उन्होंने वह तस्वीर तत्कालीन राष्ट्रपति कलाम को भेजने का निर्णय किया। थोड़ा सोच-विचार करने के पश्चात् उन्होंने वह तस्वीर कलाम को भेज दी। उसके बाद जो हुआ, उसकी कल्पना शायद ही किसी ने की थी। कुछ दिन बाद उस छात्र को कलाम की ओर से एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि 'आपके द्वारा बनाई इस खूबसूरत तस्वीर के लिए शुक्रिया।' यह दिल छू लेने वाली बात उनके उदार व्यक्तित्व के एक और पहलू को दिखाती है।

उनकी लिखी पुस्तकों में 'गाइडिंग सोल्स: डायलॉग्स ऑन द पर्पज ऑफ लाइफ' एक गम्भीर कृति है, जिसके सह लेखक अरुण के. तिवारी हैं। इसमें उन्होंने अपने आत्मिक विचारों को प्रकट किया है।

इनके अतिरिक्त उनकी अन्य चर्चित पुस्तकें हैं- 'इग्नाइटेड माइंडस : अनलीशिंग द पावर विदीन इंडिया', 'डेवलपमेंट्स इन फ्ल्यूड मैकेनिक्स एण्ड स्पेस टेक्नोलॉजी' सह लेखक- आर. नरसिम्हा, '2020: ए विजन फॉर द न्यू मिलेनियम' सह लेखक- वाई.एस. राजन, 'इनविजनिंग ऐन इम्पावर्ड नेशन : टेक्नोलॉजी फॉर सोसाइटल ट्रांसफॉरमेशन' सह लेखक- ए. सिवाथनु पिल्लई।

डॉ. कलाम ने तमिल भाषा में कविताएं भी लिखी हैं, जो अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उनकी कविताओं का एक संग्रह 'द लाइफ ट्री' के नाम से अंग्रेजी में भी प्रकाशित हुआ है।

डॉ. अब्दुल कलाम व्यक्तिगत जिन्दगी में बेहद अनुशासनप्रिय थे। उन्होंने अपनी जीवनी 'विंग्स ऑफ फायर' भारतीय युवाओं को मार्गदर्शन प्रदान करने वाले अंदाज में लिखी है। इनकी दूसरी पुस्तक 'गाइडिंग सोल्स-डायलॉग्स ऑफ द पर्पज ऑफ लाइफ' आत्मिक विचारों को उद्घाटित करती है। इन्होंने तमिल भाषा में कविताएं भी लिखी हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि दक्षिणी कोरिया में इनकी पुस्तकों की काफी मांग है और वहां इन्हें बहुत अधिक पसंद किया जाता है।

अलविदा कलाम

27 जुलाई, 2015 की शाम किसे पता था कि 2020 तक भारत को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाने का सपना आंखों में लिए कलाम हम सबसे हमेशा-हमेशा के लिए विदा ले लेंगे। उन्हें शिलांग के आई.आई.एम. संस्थान में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया था, जिसका विषय था 'रहने योग्य ग्रह' (Livable Planet)। उनकी यात्रा का आरंभ जब दोपहर 12:00 बजे दिल्ली से गुवाहाटी के लिए हवाई जहाज द्वारा हुआ तो उनके साथ ''' सृजन पाल भी थे। डॉ. कलाम ने गहरे रंग का सूट पहन रखा था। सृजन ने हमेशा की तरह उनकी तारीफ की कि उनके सूट का रंग अच्छा है। और जवाब में वे मुस्करा उठे। उस दिन मौसम खराब था, फिर भी ढ़ाई घंटे का सफर पूरा करने के बाद वे गुवाहाटी पहुंच गए थे। वहां से उन्हें कार से आई.आई.एम. शिलांग पहुंचने में और ढ़ाई घंटे लगे। इस 5 घंटे के सफर में सृजन ने उनसे कई मुद्दों पर चर्चा की। उसी दिन सुबह पंजाब में बीएसएफ के काफिले पर आतंकवादी हमला हुआ था और खबरें आ रही थी कि हमले में दो जवान बहादुरी से उनका सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। कलाम पंजाब में हुए आतंकी हमले से बेहद आहत थे। उन्होंने कहा- 'लगता है इंसानों की बनाई ताकत भी धरती को प्रदूषण जितना ही नुकसान पहुंचा रही है। ऐसा रहा तो हम सबको धरती छोड़नी पड़ जाएगी।' सृजन ने माहौल को हल्का बनाने के लिए जब बातों का रुख संसद की ओर मोड़ा तो खिन्न मन से कलाम ने संसद में चल रहे गतिरोध पर चर्चा करते हुए उनसे कहा- 'कैसे इस गतिरोध को खत्म किया जाए? मैंने अपने कार्यकाल में दो अलग-अलग सरकारें देखीं और उसके बाद भी कई सरकारें देखीं। काम में ये दखल होता ही रहता है। यह सही नहीं है। मुझे कोई ऐसा रास्ता निकालना ही होगा कि संसद

विकास की राजनीति पर काम करे।' कलाम ने सृजन से कहा कि संसद में चल रहे गतिरोध पर छात्र उनसे कुछ सरप्राइज सवाल जरूर पूछेंगे। फिर उन्होंने सृजन से छात्रों के लिए एक प्रश्न तैयार करने के लिए कहा, जो उन्हें व्याख्यान के बाद देना था। वे चाहते थे कि छात्र संसद को अधिक उत्पादक और जीवंत बनाने के विषय में सलाह दें।

लेकिन कुछ देर बाद उन्होंने कहा- 'मैं उनसे कोई हल सुझाने के लिए कैसे कह सकता हूं जब स्वयं मेरे पास कोई हल ना हो।'

वे लोग 6-7 कारों के काफिले में चल रहे थे, सृजन और डॉ. कलाम दूसरी कार में थे। उनकी कार के आगे एक ओपन जिप्सी थी, जिसमें दो जवान बैठे हुए थे और एक जवान बंदूक लेकर खड़ा था। एक घंटे के बाद कलाम ने सृजन ने कहा- 'वह जवान क्यों खड़ा है? वह थक गया होगा, यह तो सजा है। क्या तुम वायरलेस से मैसेज कर सकते हो कि वह बैठ जाए।' सृजन ने उनको समझाया कि शायद उसे बेहतर सुरक्षा के लिए खड़ा किया होगा। इस सफर के दौरान उन्होंने सृजन से तीन बार कहा कि उसे बैठने के लिए कहो। सृजन ने वायरलेस मैसेज से यह बात आगे चल रही जिप्सी में पहुंचाने की कोशिश की, लेकिन इसमें वे नाकाम रहे। यह देख कर कलाम उनसे बोले- 'मैं शिलांग पहुंच कर उससे मिलना चाहता हूं और उसे धन्यवाद बोलना चाहता हूं।'

जब वे आईआईएम शिलांग पहुंचे, तो उन्होंने सबसे पहले उस जवान को बुलाया। बेचारा भागता-दौड़ता आया कि ना जाने मुझसे क्या गलती हो गयी है, लेकिन जब उसने डॉ. कलाम के मुंह से धन्यवाद सुना तो वह हैरान हो गया और उसके मुंह से यही निकला- 'सर आपके लिए तो छह घंटे भी खड़े रहेंगे।' कलाम ने उससे आत्मीयता से पूछा- 'तुम थक गए होगे, कुछ खाया कि नहीं। मुझे खेद है कि मेरी वजह से तुम्हें तकलीफ उठानी पड़ी।' उनकी आत्मीयता से उस समय कमरे में उपस्थित हर व्यक्ति अभिभूत हो गया था।

इसके बाद वे व्याख्यान कक्ष में पहुंचे, वे व्याख्यान के लिए देर नहीं होना चाहते थे। क्योंकि वे हमेशा कहते थे कि छात्रों को कभी इंतजार नहीं करवाना चाहिए। सृजन ने तुरंत उनका माइक सेट किया, व्याख्यान के बारे में थोड़ा संक्षिप्त विवरण दिया और कंप्यूटर संभाल लिया। जब सृजन उनका माइक लगा रहे थे, तो उन्होंने हंसकर कहा- 'फनी गॉय, क्या तुम

ठीक हो?' जवाब में सृजन ने हां कहा। इसके बाद उन्होंने बोलना शुरू किया- 'इस धरती को कैसे सुंदर बनाया जाये?' यह वाक्य बोलते ही वे जमीन पर गिर पड़े।

सभी लोगों ने उन्हें दौड़कर उठाया, डॉक्टर दौड़ता हुआ आया और उन लोगों ने वह सब कुछ किया, जो कर सकते थे। सृजन उस पल को याद करके सिहरते हुए कहते हैं- 'मैं उनकी थोड़ी-सी खुली आंखों को नहीं भूल सकता। मैंने एक हाथ से उनका सिर पकड़ा था। उनका हाथ मेरी उंगली पर भिंचा हुआ था। पांच मिनट (लगभग 6:30 बजे) के अंदर वे लोग नजदीकी बेथानी अस्पताल के आईसीयू में थे। आखिरी मौके पर उनके चेहरे पर दर्द का भी नामो-निशान तक नहीं था। कुछ ही मिनटों में डॉक्टरों ने बताया कि मिसाइल मैन ने अब हमेशा के लिए उड़ान भर ली है। अस्पताल के सीईओ जॉन साइलो ने बताया कि जब कलाम को अस्पताल लाया गया, तब उनकी नब्ज और रक्तचाप साथ छोड़ चुके थे। लेकिन दो घंटे के बाद इनकी मृत्यु की पुष्टि की गई।'

उनकी मौत का समाचार पूरे देश में तीव्र गति से फैल गया। दो दर्जन किताबों में अपने अनुभव का निचोड़ पेश करने वाले, मगर अंत तक ट्विटर प्रोफाइल पर खुद को एक 'लर्नर' बताने वाले कलाम को श्रद्धांजलि देने का सिलसिला शुरू हो गया। जिससे उनके प्रति देशवासियों के अगाध प्रेम का जीता-जागता सबूत मिला। एक 83 वर्ष का विलक्षण व्यक्तित्व हमेशा के लिए अलविदा कह गया।

अब्दुल कलाम हमेशा कहते थे- 'मेरी कहानी मेरे साथ खत्म हो जाएगी। क्योंकि दुनियावी मायनों में मेरे पास कुछ भी नहीं है। न मेरे पास बेटा है न बेटी। मेरी कहानी बस अब्दुल कलाम पर खत्म हो जाएगी।' लेकिन ऐसा होना मुमकिन नहीं, क्योंकि अपने प्रेरणास्पद विचारों के जरिए वे हमेशा हमारे दिलों में जिंदा रहेंगे। वे कहते थे- 'मैं यह बहुत गर्वोक्ति पूर्वक तो नहीं कह सकता कि मेरा जीवन किसी के लिए आदर्श बन सकता है, लेकिन जिस तरह मेरी नियति ने आकार ग्रहण किया, उससे किसी ऐसे गरीब बच्चे को सांत्वना अवश्य मिलेगी, जो किसी छोटी-सी जगह पर सुविधाहीन सामाजिक दशाओं में रह रहा हो। शायद यह ऐसे बच्चों को उनके पिछड़ेपन और निराशा की भावनाओं से विमुक्त होने में अवश्य सहायता करे।' वे हमें छोड़ गये। एक महान शिक्षक की भांति,

सबसे ऊंचे कद के साथ खड़े हुए उन्होंने धरा छोड़ दी, अपने व्यक्तिगत खाते में बिना कोई संपत्ति जमा किए हुए, उनके खाते में जमा है करोड़ों लोगों का प्यार और उनके प्रति सद्भावनाएं। वे अपने जीवन के अंतिम क्षणों में बेहद सफल रहे।

अपनी मृत्यु से तकरीबन दो सप्ताह पहले जब वे एक दिन सृजन से उनके मिसाइल परियोजना के समय के मित्रों के बारे में चर्चा कर रहे थे, तो उन्होंने कहा- 'बच्चों को उनके माता-पिता की देखभाल करनी चाहिए। यह दुखद है कि बहुत मामलों में ऐसा नहीं हो रहा है।' उन्होंने एक अंतराल लेकर कहा- 'दो बातें हैं, बड़ों को भी करनी चाहिए। मृत्युशैया के लिए वसीयत या संपत्ति का बंटवारा नहीं छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इससे परिवार में झगड़े होते हैं। दूसरा, कितना बड़ा वरदान है काम करते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाना, बिना किसी लम्बी बीमारी से घिरे हुए तब ही चले जाना जब सीधा चल सकता हो व्यक्ति। अलविदा संक्षिप्त होनी चाहिए। वास्तव में बहुत छोटी।'

उस दिन कहे वाक्य को आज जब हम समझें, तो पता चलता है कि उन्होंने अपनी यात्रा अध्यापन करते हुए सम्पन्न की और वे अपने जीवन के अंतिम क्षण तक, सीधे खड़े थे, काम कर रहे थे और व्याख्यान दे रहे थे।

सृजन उनके करीबी थे, इसलिए कलाम उनसे अकसर पूछते थे- 'तुम युवा हो, तय करो कि तुम्हें कैसे याद किया जाना चाहते हो।'

सृजन कोई प्रभावशाली जवाब सोचते रहते। एक दिन सृजन ने उन्हीं से सवाल कर दिया कि पहले आप बताएं कि आप कैसे याद किया जाना चाहोगे? राष्ट्रपति, वैज्ञानिक, लेखक, मिसाइल मैन, इंडिया 2020 या लक्ष्य थ्री बिलियन के लिए?

सृजन को लगा था कि उन्होंने विकल्प देकर सवाल आसान कर दिया है, लेकिन डॉ. कलाम के जवाब ने सृजन को चकित कर दिया, क्योंकि उन्होंने कहा था-

'एक शिक्षक के रूप में।'

अन्तिम विदाई

मृत्यु के तुरंत बाद पूर्व राष्ट्रपति डॉ. कलाम के शरीर को भारतीय वायु सेना के हेलीकॉप्टर द्वारा शिलांग से गुवाहाटी लाया गया। जहां से अगले दिन 28 जुलाई, मंगलवार दोपहर को उनका पार्थिव शरीर वायुसेना के विमान सी-130 जे. हरक्यूलिस से दिल्ली लाया गया। लगभग 12:15 पर विमान पालम हवाईअड्डे पर उतरा। सुरक्षा बलों ने पूरे राजकीय सम्मान के साथ कलाम के पार्थिव शरीर को विमान से उतारा। वहां प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी, दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल व तीनों सेनाओं के प्रमुखों ने इसकी अगवानी की और कलाम के पार्थिव शरीर पर पुष्पहार अर्पित किए। इसके बाद तिरंगे में लिपटे डॉ. कलाम के पार्थिव शरीर को पूरे सम्मान के साथ, एक गन कैरिज में रख उनके आवास 10, राजाजी मार्ग पर ले जाया गया। यहां पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी, राहुल गांधी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री अखिलेश यादव सहित अनेक गणमान्य लोगों ने इन्हें श्रद्धांजलि दी। भारत सरकार ने पूर्व राष्ट्रपति के निधन के मौके पर उनके सम्मान के रूप में सात दिवसीय राजकीय शोक की घोषणा की।

29 जुलाई की सुबह वायुसेना के विमान सी-130 जे. हरक्यूलिस से भारतीय ध्वज में लिपटे कलाम के शरीर को पालम एयरबेस पर ले जाया गया, जहां से उन्हें मदुरै भेजा गया। विमान दोपहर तक मदुरै हवाई अड्डे पर पहुंचा। उनके शरीर को तीनों सेनाओं के प्रमुखों, राष्ट्रीय व राज्य के गणमान्य व्यक्तियों, कैबिनेट मंत्री मनोहर पर्रीकर, वेंकैया नायडू,

पान राधाकृष्णन, तमिलनाडु और मेघालय के राज्यपाल के. रोसैया और वी. षणमुखनाथन ने हवाई अड्डे पर प्राप्त किया। एक संक्षिप्त समारोह के बाद डॉ. कलाम के शरीर को वायु सेना के हेलीकॉप्टर से मंडपम भेजा गया। मंडपम से कलाम के शरीर को उनके गृहनगर रामेश्वरम एक आर्मी ट्रक में भेजा गया। अंतिम श्रद्धांजलि देने के लिए उनके शरीर को स्थानीय बस स्टेशन के सामने एक खुले क्षेत्र में प्रदर्शित किया गया ताकि जनता उन्हें आखिरी श्रद्धांजलि दे सके।

30 जुलाई, 2015 को पूर्व डॉ. राष्ट्रपति को पूरे सम्मान के साथ रामेश्वरम के. पी. करूम्बु ग्राउंड में धारती मां की गोद में सुला दिया गया। प्रधानमंत्री मोदी, तमिलनाडु के राज्यपाल, कर्नाटक, केरल और आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्रियों सहित साढ़े तीन लाख से अधिक लोग अंतिम संस्कार में शामिल हुए।

पुरस्कार / सम्मान

डॉ. कलाम की विद्वता एवं योग्यता को दृष्टिगत रखते हुए सम्मान स्वरूप उन्हें अन्ना यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, कल्याणी विश्वविद्यालय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, जादवपुर विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, रूड़की विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय, आंध्र विश्वविद्यालय, भारतीदासन छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, तेजपुर विश्वविद्यालय, कामराज मदुरै विश्वविद्यालय, राजीव गांधी प्रौद्यौगिकी विश्वविद्यालय, आई.आई. टी. दिल्ली, आई.आई.टी. मुम्बई, आई.आई.टी. कानपुर, बिड़ला इंस्टीटयूट ऑफ टेक्नोलॉजी, इंडियन स्कूल ऑफ साइंस, सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, मनीपाल एकेडमी ऑफ हायर एजुकेशन, विश्वेश्वरैया टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी ने अलग-अलग 'डॉक्टर ऑफ साइंस' की मानद उपाधियां प्रदान की।

इसके अतिरिक्त जवाहरलाल नेहरु टेक्नोलॉजी यूनिवर्सिटी, हैदराबाद ने उन्हें 'पी-एच.डी.' (डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी) तथा विश्वभारती शान्ति निकेतन और डॉ. बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, औरंगाबाद ने उन्हें 'डी.लिट.' (डॉक्टर ऑफ लिटरेचर) की मानद उपाधियां प्रदान कीं।

इनके साथ ही वे इंडियन नेशनल एकेडमी ऑफ इंजीनियरिंग, इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज, बंगलौर, नेशनल एकेडमी ऑफ मेडिकल साइंसेज, नई दिल्ली के सम्मानित सदस्य, एरोनॉटिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया, इंस्टीट्यूशन ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेलीकम्यूनिकेशन इंजीनियर्स के मानद सदस्य, इंजीनियरिंग स्टाफ कॉलेज ऑफ इंडिया के प्रोफेसर तथा इसरो के विशेष प्रोफेसर थे।

उपलब्धियां

- डॉ. अब्दुल कलाम को परियोजना निदेशक के रूप में भारत का पहला स्वदेशी उपग्रह (एस.एल.वी.-3) प्रक्षेपास्त्र बनाने का श्रेय हासिल है।
- जुलाई 1980 में इन्होंने रोहिणी उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा के निकट स्थापित किया था।
- डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने पोखरण में दूसरी बार न्यूक्लियर विस्फोट भी परमाणु ऊर्जा के साथ मिलाकर किया। इस तरह भारत ने परमाणु हथियार के निर्माण की क्षमता प्राप्त करने में सफलता अर्जित की।
- इसके अलावा डॉ. कलाम ने भारत के विकास स्तर को वर्ष 2020 तक विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधुनिक करने के लिए एक विशिष्ट सोच भी प्रदान की।
- उन्हें 'मिसाइल मैन' और 'जनता के राष्ट्रपति' के नाम से जाना जाता है। वे भारतीय गणतंत्र के 11वें निर्वाचित राष्ट्रपति थे। वे भारत के पूर्व राष्ट्रपति, जानेमाने वैज्ञानिक और अभियंता के रूप में विख्यात थे।
- उन्होंने मुख्य रूप से एक वैज्ञानिक और विज्ञान के व्यवस्थापक के रूप में चार दशकों तक रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) संभाला व भारत के नागरिक अंतरिक्ष कार्यक्रम और सैन्य मिसाइल के विकास के प्रयासों में भी शामिल रहे। उन्हें बैलेस्टिक मिसाइल और प्रक्षेपण यान प्रौद्योगिकी के विकास के कार्यों के लिए भारत में 'मिसाइल मैन' के रूप में जाना जाने लगा।

- उन्होंने 1974 में भारत द्वारा पहले मूल परमाणु परीक्षण के बाद से दूसरी बार 1998 में भारत के पोखरण-द्वितीय परमाणु परीक्षण में एक निर्णायक, संगठनात्मक, तकनीकी और राजनैतिक भूमिका निभाई।
- कलाम सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी व विपक्षी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दोनों के समर्थन के साथ 2002 में भारत के राष्ट्रपति चुने गए। पांच वर्ष की अवधि की सेवा के बाद, वह शिक्षा, लेखन और सार्वजनिक सेवा के अपने नागरिक जीवन में लौट आए। उन्होंने भारत रत्न, भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान सहित कई प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त किए।

भाग–2

सपने जो सोने न दें

डॉ. कलाम के प्रेरणा शब्द

'मंजिल चाहे कितनी भी ऊंची क्यों ना हो, रास्ते हमेशा पैरों के नीचे ही होते हैं। बस केवल उन रास्तों को चुनने के लिए एक निर्देशन की जरूरत होती है। आप ध्यान दीजिए, कभी-कभी एक साधारण-सा व्यक्ति अपनी बातों, अपने काम और अपने व्यक्तित्व से हमें इस हद तक प्रभावित कर देता है कि अनजाने में ही वह हमारी प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। जीवन में किसी भी बाधा या मुश्किल से निपटने के लिए एक बहुत अच्छा तरीका यह है कि आप अपने लिए कोई 'प्रेरणा स्रोत' खोज लें। अवसाद, निराशा या किसी घोर संकट की घड़ी में इनमें से कोई एक भी आपकी बहुत मदद कर सकता है। केवल एक शब्द, पंक्ति या ख्याल से ही आपमें नई उमंग-तरंग का संचार हो सकता है।'

डॉ. कलाम के प्रेरणा शब्द भी कई लोगों को आगे बढ़ने के लिए नई उमंग सदियों तक जगाते रहेंगे। उनके निधन पर संगीतकार ए.आर. रहमान ने इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा- 'डॉ. कलाम, जब आप राष्ट्रपति बने तो आपने भारतीयों को 'उम्मीद' शब्द के नये मायने दिए।'

वहीं आरबीआई के गवर्नर रघुराम राजन ने ट्वीट किया- 'महान लोगों के महान सपने हमेशा आगे पहुंचते हैं।' जी हां उनके सपने अवश्य ही आगे पहुंचेंगे, क्योंकि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व से प्रेरणा लेने वाली नई पीढ़ी उनके शब्दों से प्रेरणा लेकर अपने सपनों को आकार देगी।

यही वजह है कि हमने उनके सुविचारों पर आधारित उन लोगों के जीवन की यात्रा को यहां बताने की जरूरत समझी है। जिससे नई पीढ़ी भी उनके विचारों के साथ सफलता पाने वाले लोगों के संघर्ष से प्रेरणा ले सकें।

सपने जो सोने न दें

> ***'सपना वो नहीं है जो आप नींद में देखते हैं, यह तो एक ऐसी चीज है जो आपको नींद ही नहीं आने देती।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

कभी-कभी ऐसा होता है कि ज़िंदगी में हम सपने देखते हैं, पर उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेते और अगर कोई दूसरा व्यक्ति हमारी मदद ना करे तो हम समझते हैं कि हमारे सपने पूरे नहीं होंगे। यहीं पर हम गलती करते हैं। यदि आपने सपने देखे हैं, तो उन्हें पूरा करने की जिम्मेदारी भी आपकी ही होगी। इसी बात से जुड़ी है कार्तिक की कहानी। कार्तिक साहनी उस भारतीय युवक का नाम है, जो इस दुनिया को देख नहीं सकता, लेकिन उसने दुनिया के कई लोगों को सही रास्ता दिखाया है। बचपन में ही आंखों की रोशनी खो देने वाले कार्तिक ने कभी हार नहीं मानी। उसने कभी खुद को निराश होने नहीं दिया और सामान्य लोगों की तरह ही पढ़ने-लिखने की अपनी कोशिशों को जारी रखा। वह दुनिया की रंगीनियत, अलग-अलग चीज़ों और लोगों को देख तो नहीं सकता था, लेकिन उसने सुनहरे सपने देखना बंद नहीं किया। कार्तिक की खूबी भी है कि उसने अपने सपनों को साकार करने के लिए कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी और नेत्रहीनों के लिए दुनिया में मौजूद तकनीकों का हर मुमकिन इस्तेमाल किया। इस नेत्रहीन युवक ने अपने दृढ़संकल्प और संघर्ष से जो कामयाबियां हासिल की हैं, उन्हें हासिल करने में कई सामान्य लोग भी विफल रहे हैं। कार्तिक के संघर्ष और कामयाबी की कहानी सिर्फ नेत्रहीनों को ही नहीं, बल्कि सामान्य लोगों के लिए भी प्रेरणादायक है।

कार्तिक साहनी का जन्म नई दिल्ली में 22 जून, 1994 को एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। पिता रविंदर साहनी एक व्यवसायी है और लाजपत नगर में उनकी दुकान है। माँ इंदू साहनी गृहणी है। कार्तिक की एक जुड़वां बहन है और एक बड़ा भाई।

पैदा होने के कुछ ही दिनों बाद यह पता चला कि कार्तिक को 'रेटिनोपेथी ऑफ प्रीमैच्यूरिटी' नाम की एक बीमारी है। इस बीमारी की वजह से कार्तिक के आंखों की रोशनी हमेशा के लिए चली गयी। कार्तिक नेत्रहीन हो गया। लेकिन मां-बाप ने कार्तिक के लालन-पालन में कोई कमी नहीं छोड़ी और उसे पढ़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

छोटी-सी उम्र में ही कार्तिक को 'नेशनल एसोसिएशन ऑफ ब्लाइंड' में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। 'नेशनल एसोसिएशन ऑफ ब्लाइंड' की वजह से ही कार्तिक ने अपना हौसला नहीं गंवाया और पढ़ने-लिखने के अपने सपने को ज़िंदा रखा। एसोसिएशन में मिले प्रोत्साहन की वजह से कार्तिक का आत्मविश्वास भी बढ़ता गया। कार्तिक की काबिलीयत और पढ़ाई में दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए माता-पिता ने उसका दाखिला सामान्य बच्चों के बड़े और मशहूर स्कूल- 'दिल्ली पब्लिक स्कूल' में कराया।

यह दाखिला कोई मामूली घटना नहीं थी। 'दिल्ली पब्लिक स्कूल' जैसे नामचीन शैक्षणिक संस्थान में सामान्य बच्चों के बीच एक नेत्रहीन बच्चे का दाखिला बहुत बड़ी, असामान्य और अभूतपूर्व बात थी। इससे पहले शायद ही ऐसा कभी हुआ था।

दिल्ली पब्लिक स्कूल ने भी कार्तिक को दाखिला देकर एक साहसिक और सराहनीय काम किया था। स्कूल प्रबंधन भी कार्तिक की प्रतिभा से प्रभावित हुआ था और इसी वजह से उसने एक बड़ा और अभूतपूर्व फैसला लिया।

वैसे तो नेत्रहीनों को सामान्य बच्चों के स्कूलों में दाखिला नहीं दिया जाता, उन्हें नेत्रहीनों के लिए अलग से बनाए गए स्कूलों में ही पढ़ाया जाता है, लेकिन कार्तिक ने अपनी प्रतिभा और तेज़ दिमाग से सभी का मन जीता था। कार्तिक वह करने में कामयाब हुआ था, जो दूसरे नेत्रहीन बच्चे अभी नहीं कर पाये थे।

कार्तिक ने दिल्ली पब्लिक स्कूल की ईस्ट ऑफ कैलाश की शाखा

में पढ़ाई शुरू की। काम बहुत मुश्किल था। दूसरे बच्चे देख सकते थे, लेकिन कार्तिक नेत्रहीन था। नेत्रहीन होने की वजह से कार्तिक किताबें पढ़ नहीं सकता था।

कार्तिक की पढ़ाई के लिए उसकी माँ ने खूब मेहनत की और पाठ्य-पुस्तकों को ब्रेल लिपि में उपलब्ध कराया। ब्रेल पद्धति एक तरह की लिपि है, जिसको विश्व भर में नेत्रहीनों को पढ़ने और लिखने में छूकर व्यवहार में लाया जाता है। फिर क्या था, कार्तिक ने पाठ्य-पुस्तकों का ज्ञान सामान्य बच्चों की तरह हासिल करना शुरू किया। चूंकि कार्तिक के हौसले बुलंद थे और उसके मन में कुछ बड़ा हासिल करने का इरादा था, उसने 'एक्सेस टेक्नोलॉजी' की मदद से कंप्यूटर का इस्तेमाल करना सीख लिया। प्रशांत रंजन वर्मा नामक शख्स ने कार्तिक को कंप्यूटर का इस्तेमाल करना सिखाया। कुछ ही महीनों में कार्तिक ने कंप्यूटर पर ही अपने स्कूल के सारे काम करना शुरू कर दिया। दूसरी कक्षा की परीक्षा उसने कंप्यूटर के ज़रिये ही दी थी।

कंप्यूटर और ब्रेल लिपि के ज़रिये कार्तिक की पढ़ाई आगे बढ़ी। एक के बाद एक करके वह हर कक्षा पास करता गया। 10वीं की परीक्षा में भी उसने कमाल किया था। परीक्षा में उसका प्रदर्शन वाकई काबिले तारीफ था।

जब कार्तिक के लिए इंटर में दाखिला लेने का समय आया, तब उसे अपनी इच्छा अनुसार विषय चुनने का विकल्प था। अपनी दिलचस्पी के मुताबिक कार्तिक ने गणित, विज्ञान और कम्प्यूटर साइंस चुना। कार्तिक का चुनाव देखकर लोग दंग रह गए। एक नेत्रहीन छात्र द्वारा विज्ञान, गणित जैसे गंभीर और जटिल विषय चुनना सभी को आश्चर्य में डालने वाला कदम था। लेकिन कार्तिक का फैसला अडिग था। कार्तिक के फैसले पर केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को भी हैरानी हुई। शुरू में तो बोर्ड के अधिकारी कार्तिक को दाखिला देने से इंकार कर रहे थे, लेकिन बाद में उसकी काबिलीयत देखकर उसे विशेष अनुमति दे दी।

विज्ञान और गणित की कक्षा में दाखिला कार्तिक की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

सामान्य तौर पर विज्ञान और गणित की कक्षाओं में नेत्रहीन बच्चों को दाखिला नहीं दिया जाता। आम तौर पर नेत्रहीन बच्चों को कला

(आर्ट्स) की ओर मोड़ा जाता हैं। किन्तु कार्तिक अपनी प्रतिभा, मेहनत और मजबूत इरादों की वजह से बोर्ड के अधिकारियों को भी मनाने में कामयाब रहा। दाखिले के बाद कार्तिक ने किसी को भी निराश नहीं किया। 11वीं की परीक्षा में उसने 93.4% और 12वीं की परीक्षा में 95.8% अंक हासिल किए।

कार्तिक अपने इन अंकों की वजह से भारत में विज्ञान और गणित वर्ग में सर्वोच्च उपलब्धि हासिल करने वाला पहला नेत्रहीन छात्र बन गया। यानी कार्तिक ने वह कर दिखाया, जिसे भारत में पहले किसी दूसरे नेत्रहीन लड़के ने नहीं किया था। 'दिल्ली पब्लिक स्कूल', रामाकृष्ण पुरम में 11वीं और 12वीं की पढ़ाई करने वाले कार्तिक ने कम्प्यूटर साइंस में 99 अंक, अंग्रेजी, गणित, भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र में 95-95 अंक हासिल किए थे। एक मायने में कार्तिक ने वह कर दिखाया था, जो कई सामान्य बच्चे नहीं कर पाते हैं। परीक्षाओं में कार्तिक ने कई सामान्य बच्चों को पछाड़ा था।

दृढ़संकल्प और एक अजब-सी जिद का नतीजा था कि कार्तिक लगातार कामयाब होता आ रहा था।

कार्तिक ने 12वीं की परीक्षा देने से पहले ही ठान लिया था कि वह देश के सबसे प्रतिष्ठित संस्थान आईआईटी में दाखिला लेगा। उसने आईआईटी में दाखिले के लिए जेईई यानी 'ज्वाइंट एंट्रेंस एग्जाम' के लिए भी तैयारी शुरू कर दी थी। लेकिन आईआईटी के नियमों के मुताबिक किसी नेत्रहीन विद्यार्थी को संस्था में दाखिला नहीं दिया जा सकता था। आईआईटी में पढ़ने के अपने सपने को साकार करने के लिए कार्तिक ने अपनी कोशिशें जारी रखीं। कार्तिक ने उसकी काबिलीयत को परखने के बाद ही उसे संस्था में जगह देने का अनुरोध किया। लेकिन संस्था के अधिकारी नियमों का हवाला देते रहे और कार्तिक को आईआईटी में जगह नहीं मिल पाई।

कार्तिक निराश तो हुआ, लेकिन उसने अब अपना लक्ष्य बदल लिया। कार्तिक ने अपनी प्रतिभा के बल पर अमेरिका की स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में दाखिले की योग्यता हासिल कर ली। महत्त्वपूर्ण बात तो यह भी है कि कार्तिक ने यूनिवर्सिटी की परीक्षा पास कर 'फुल स्कॉलरशिप' हासिल की। यानी कार्तिक को यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के लिए कोई फीस नहीं देनी पड़ी।

कार्तिक की अनेक कामयाबियों में यह भी एक बड़ी कामयाबी थी। उसके पिता अपनी संतान की इन कामयाबियों पर बहुत गर्व महसूस कर रहे थे।

कार्तिक ने 2013 में स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी से बी.एस. की अपनी डिग्री हासिल की और अभी कम्प्यूटर साइंस की पढ़ाई कर रहा है। उसने अभी से मन बना लिया है कि अपने ग्रेजुएशन के बाद नेत्रहीन लोगों के विकास के लिए खुद को समर्पित करेगा। उसका इरादा है कि तकनीक की मदद से नेत्रहीनों को पढ़ाया-लिखाया जाए और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में उनकी हर मुमकिन मदद की जाए।

इस बात में दो राय नहीं है कि कार्तिक की कहानी कोई सामान्य कहानी नहीं है। संघर्ष और मेहनत की एक ऐसी कहानी है, जो दुनिया-भर के लोगों को सन्देश देती है कि कठिन परिस्थितियों में हार मान लेने से जिंदगी थम जाती है और चुनौतियों का डट कर मुकाबला करने से ही असाधारण जीत हासिल होती है। कार्तिक सिर्फ नेत्रहीनों के लिए ही आदर्श नहीं है, उससे सामान्य लोग भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। नेत्रहीन होने के बावजूद जिस तरह से कार्तिक ने पढ़ाई-लिखाई की और बड़ी-बड़ी परीक्षाओं में अव्वल दर्जे के नंबर हासिल किए, उसने भारत में ही नहीं, दुनिया-भर के लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया। कार्तिक को उसकी असाधारण कामयाबियों के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले। कामयाबी की उसकी कहानी दुनिया-भर में सुनी-सुनायी जाने लगी। हालांकि कार्तिक साहनी ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर कई गंभीर सवाल खड़े किए हैं। साहनी का आरोप है कि विकलांग बच्चों के लिए नीति बनाते समय विकलांगों के किसी संगठन को शामिल नहीं किया जाता है, बल्कि एक आईएएस अधिकारी खुद ही विकलांगों को लेकर निर्णय ले लेता है। इसलिए कई बार ऐसे निर्णय गलत और अव्यावहारिक होते हैं। इसके अलावा देश में शिक्षा व्यवस्था की स्थिति पर कोई रिसर्च नहीं करता है। जानकारी का अभाव और असंवेदनशील रवैया दो ऐसी चीजें हैं, जो भारत में बहुत ज्यादा है।

कार्तिक के जीवन और उसकी कामयाबी में उसके माता-पिता की भी अहम भूमिका है। कार्तिक के माता-पिता को जब पहली बार मालूम हुआ कि कार्तिक कभी देख नहीं पाएगा, तो उनपर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। अपनी संतान को लेकर जो सुनहरे सपने उन लोगों ने संजोए थे, वह

हमेशा के लिए टूट गए। उन्हें लगा कि उनका बेटा ज़िंदगी भर परेशानियों से जूझता रहेगा। लेकिन जैसे-जैसे कार्तिक बड़ा होता गया, उसके हौसले बढ़ते गए। उसकी काबिलीयत और सामान्य बच्चों की तरह पढ़ने की जो प्रबल इच्छा थी, उसे देखकर माँ के मन में भी नये सपने जगे थे। माँ ने कार्तिक को पढ़ाने के लिए खूब मेहनत की थी। माँ ने कार्तिक के लिए जो कुछ किया, वह भी लोगों के लिए एक ऐसा उदाहरण है, जिससे जिंदगी की चुनौतियों का किस तरह से सामना किया जाए, इसकी जानकारी मिलती है।

कोशिश करना मत छोड़ो

'इंतजार करने वालों को सिर्फ उतना ही मिलता है, जितना कोशिश करने वाले छोड़ देते हैं।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. कलाम की इस उक्ति से जुड़ी है कल्पना सरोज के जीवन की कहानी। आज कल्पना सरोज की गिनती भारत के सफल उद्यमियों और उद्योगपतियों में होती है। वे कई कम्पनियां चलाती हैं और करोड़ों रुपये की धन-संपत्ति की मालिक हैं। समाज-सेवा की वजह से उनकी शोहरत को चार-चांद लगे हैं।

हालांकि कल्पना सरोज की कहानी में जो घटनाएं हुई हैं, वह अकल्पनीय हैं। कहानी में फर्श से अर्श का सफर है। गोबर के उपले बेचने वाली एक दलित लड़की के आगे चलकर मशहूर कारोबारी और करोड़पति बनने की अनोखी दास्तान भी है।

छुआछूत, गरीबी, बाल-विवाह, ससुराल वालों के हाथों शोषण, अपमान, निंदा- यह सब कुछ अनुभव किया है कल्पना ने। एक बार तो कल्पना ने परिस्थितियों से तंग आकर खुदकुशी करने की भी कोशिश की थी।

कई लोगों की राय में कल्पना सरोज की कहानी फिल्मी कहानी जैसी लगती है। किन्तु इस बात में किसी की भी दो राय नहीं कि दु:ख-दर्द तथा पीड़ा से शुरू होकर बड़ी कामयाबी और ऊंचे मुकाम हासिल करने की यह कहानी लोगों को प्रेरणा देती है।

कल्पना सरोज का जन्म महाराष्ट्र के अकोला जिले के रोपरखेड़ा गांव में रहने वाले एक गरीब दलित परिवार में हुआ था। कल्पना के जन्म के

समय दलितों की हालत ठीक नहीं थी। दलितों के साथ गांवों में भेदभाव किया जाता था, छुआछूत भी थी और अकसर वे लोग शोषण का शिकार होते थे।

कल्पना के पिता पुलिस विभाग में कांस्टेबल थे। वह अपनी बेटी से बहुत प्यार करते थे और चाहते थे कि उनकी बेटी खूब पढ़े-लिखे। पिता ने कल्पना का दाखिला एक स्कूल में करवा दिया। दलित होने की वजह से कल्पना के साथ अलग-सा व्यवहार किया जाता। उसे उसके कई दोस्तों के घर में आने नहीं दिया जाता। स्कूल के कई कार्यक्रमों में भी उसे शामिल नहीं किया जाता। कुछ बच्चे तो कल्पना को छूने से भी कतराते थे। इस भेदभाव पर कल्पना को बहुत गुस्सा आता, पर वह कुछ नहीं कर पाती। अपमान के घूंट पीकर उसे चुप ही रहना पड़ता। बचपन में परिवार की मदद करने और रुपये जुटाने के मकसद से कल्पना ने गोबर के उपले भी बेचे।

परिवारवालों और रिश्तेदारों के दबाव में आकर, 12 साल की उम्र में ही कल्पना का विवाह उससे 10 साल बड़े एक लड़के से कर दिया गया था। शादी की वजह से कल्पना को स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी।

कल्पना का पति उसे अपने साथ मुंबई ले गया। मुंबई पहुंचने के बाद ही कल्पना ने जाना कि उसका पति झुग्गी बस्ती में रहता है। समस्या उस समय और बड़ी हो गयी, जब जेठ-जेठानी ने उसके साथ बदसलूकी करना शुरू किया। छोटी-छोटी बातों पर जेठ-जेठानी कल्पना को मारने-पीटने लगे।

अपशब्द कहना तो आम बात हो गयी थी। जेठ-जेठानी का सलूक इतना बुरा होता कि वो कल्पना के बाल पकड़कर नोचते और उसे बुरी तरह मारपीट कर जख्मी कर देते। कल्पना को खाने के लिए समय पर भोजन नहीं दिया जाता था। उसे परेशान करने के लिए भूखा रखा जाता। कल्पना के लिए वो दिन पीड़ा और दुःख से भरे थे।

कल्पना के पिता जब उससे मिलने मुंबई गए तो उसकी हालत देखकर उन्हें बहुत बड़ा झटका लगा। उन्हें भी बहुत दुःख और पीड़ा हुई। अपनी प्यारी बेटी को फटे-पुराने कपड़ों और उसके शरीर पर शोषण के निशान देखकर वह सहम गये। उन्होंने फैसला कर लिया कि अब एक पल भी अपनी बेटी को मुंबई में नहीं रखेंगे और कल्पना को अपने साथ वापस गांव लेकर चले गए।

कल्पना ने सिलाई-बुनाई जैसे काम कर अपना समय काटना शुरू किया। उसने स्कूल में फिर से दाखिला लिया। उसने पुलिस विभाग में नौकरी पाने की भी कोशिश की, परन्तु कामयाब नहीं हुई। कुछ दिनों बाद गांव में भी कल्पना के लिए हालात बिगड़ने लगे। गांव की कई लड़कियां और महिलाएं कल्पना पर ताने कसती और अपमानजनक शब्दों का इस्तेमाल करतीं। इन सब से तंग आकर कल्पना ने एक दिन आत्महत्या करने का फैसला किया। उसने कीटनाशक पी लिया। जिसके प्रभाव से वह ज़मीन पर गिर गयी और उसके मुंह से झाग निकलने लगा। तभी कल्पना की एक रिश्तेदार ने उसे इस हालत में देख लिया और दूसरों को सूचना दी। कल्पना को अस्पताल ले जाया गया, जहां उसकी जान बचा ली गयी।

अस्पताल से लौटने के बाद कल्पना ने फैसला किया कि वह ज़िंदगी को अपनी शर्तों पर जिएगी और दुनिया में कुछ बड़ा हासिल करके ही रहेगी। अपने फैसले को साकार करने के लिए उसने गांव छोड़ने और फिर से 'सपनों की नगरी' मुंबई जाने का फैसला किया। कल्पना अपने मां-बाप पर बोझ बनना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि स्वतंत्र रूप से काम करे, अपने खर्चों के लिए खुद कमाए।

कल्पना ने इस बार मुंबई आने के बाद अपने एक भरोसेमंद रिश्तेदार के यहां रहना शुरू किया। उसने सिलाई मशीन को कमाई का जरिया बनाया। कुछ दिनों तक एक होजियरी शॉप में काम किया। इस स्टोर में काम के लिए कल्पना को हर दिन सिर्फ दो रुपये दिए जाते।

काम ऐसे ही चल रहा था कि कल्पना की एक बहन बीमार पड़ गयी। कल्पना की कमाई के रुपयों से भी उसकी बहन की जान नहीं बच पाई। इस बार उसने फिर एक बड़ा फैसला लिया। उसने ठान लिया कि पैसे कमाने के साथ-साथ उसे कुछ ऐसा करना चाहिए, जिससे खुशी और संतुष्टि मिले।

उसने खुद कारोबार करने का मन बना लिया और कारोबार के साधन तलाशने शुरू किए। उसने फर्नीचर का कारोबार शुरू किया। इस कारोबार के दौरान उसकी मुलाक़ात एक ऐसे फर्नीचर कारोबारी से हुई, जिसने उसका मन जीत लिया। कल्पना ने इस कारोबारी से शादी की। दोनों के दो बच्चे भी हुए। लेकिन ज़िंदगी में एक बार फिर कल्पना को बड़ा झटका लगा। 1989 में उसके कारोबारी पति की मृत्यु हो गयी।

कल्पना को अपने पति से विरासत में अलमारी बनाने वाला एक कारखाना मिला था, जो घाटे में चल रहा था। अपने बच्चों की खुशी, उनकी पढ़ाई-लिखाई और दूसरी ज़रूरतों के लिए कल्पना ने घाटे में चल रहे कारखाने को फिर से मुनाफे में लाने के लिए पूरी ताकत लगा दी।

कल्पना ने 1995 में ज़मीन-ज़ायदाद का भी कारोबार शुरू किया। 1997 में एक वित्तीय संस्थान की मदद से कल्पना ने 4 करोड़ रुपये की लागत से एक कॉम्प्लेक्स का निर्माण किया। फिर कुछ दिनों बाद इस कॉम्प्लेक्स को बेचकर मुनाफा कमाया। धीरे-धीरे कल्पना ने कंस्ट्रक्शन इंडस्ट्री और रियल एस्टेट में भी अपने पैर जमा लिए।

मुनाफे की एक बड़ी रकम उसने गन्ना उद्योग में भी निवेश की। उसने अहमदनगर के साईं कृपा शक्कर कारखाने के शेयर खरीदे, जिससे वह कम्पनी की निदेशक (डायरेक्टर) बन गयी।

कल्पना ने जल्द ही एक सफल कारोबारी व उद्यमी के रूप में नाम कमाया और अपनी अलग पहचान बना ली। इसी दौरान आया ज़िंदगी और कामयाबी को एक नये मुकाम पर ले जाने का मौका।

2006 में कल्पना की कंपनी 'कल्पना सरोज एंड एसोसिएट्स' से 'कमानी ट्यूब्स को' टेकओवर कर लेने की पेशकश की गयी। कल्पना सरोज की शोहरत कुछ इस तरह की हो चुकी थी कि कमानी ट्यूब्स के मालिकों को लगा कि घाटे में चल रही उनकी इस बीमार कंपनी को कल्पना ही ले सकती हैं।

'कमानी ट्यूब्स' की शुरुआत प्रसिद्ध उद्योगपति रामजी कमानी ने की थी। रामजी कमानी भारत के पहले प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरु के बहुत ही करीबी थे। कमानी परिवार में उभरे मतभेदों का कंपनी के कामकाज और कारोबार पर बुरा असर पड़ा था। एक समय तो कंपनी बंद होने के कगार पर पहुंच गयी थी, लेकिन कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद मज़दूर यूनियन ने कंपनी चलायी। हालांकि कंपनी कामयाब नहीं रही। 1997 तक कंपनी का घाटा बढ़कर 160 करोड़ हो गया था। 2006 में कल्पना सरोज के हाथों कंपनी की जिम्मेदारी आयी तो दिन फिर गए। कल्पना सरोज ने 'कमानी ट्यूब्स' को दोबारा मुनाफे में लाने को एक चुनौती के तौर पर लिया। अपने नए-नए विचारों, प्रयोगों, मजदूरों के मेहनत और मदद से कल्पना ने 'कमानी ट्यूब्स' की काया ही पलट कर रख दी। अब कंपनी

मुनाफे में है। 'कमानी ट्यूब्स' को जिस तरह से कल्पना सरोज ने घाटे में चल रही कंपनी से मुनाफे वाली कंपनी बनाया, वह आज भारतीय उद्योग जगत् में एक मिसाल के तौर पर पेश की जाती है।

धन-दौलत और संपत्ति की मालिक बनने के बाद कल्पना ने समाज-सेवा में भी कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। वह महिलाओं, आदिवासियों, दलितों, गरीब और ज़रूरतमंद बच्चों की मदद के लिए कई तरह के कार्यक्रम आयोजित करती हैं। हज़ारों ज़रूरतमंद बच्चे, महिलाएं उनकी संस्थाओं से मदद उठा चुके हैं।

कल्पना सरोज आज एक नहीं कई कारोबार कर रही हैं। कई कंपनियों की मालिक हैं। करोड़ों की संपत्ति उनके नाम है। वह भारत की सफल उद्यमी, उद्योगपति और कारोबारी हैं। उन्होंने कई पुरस्कार जीते हैं। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से नवाज़ा है। उन्होंने साबित कर दिया है कि इंतजार करने वालों को सिर्फ उतना ही मिलता है, जितना कोशिश करने वाले छोड़ देते हैं।

कठिनाइयां हमारी मदद करती हैं

जीवन में कठिनाइयां हमें बर्बाद करने नहीं आती है, बल्कि यह हमारी छुपी हुई सामर्थ्य और शक्तियों को बाहर निकालने में हमारी मदद करती है। कठिनाइयों को यह जान लेने दो कि आप उससे भी ज्यादा कठिन हो।

–डॉ. अब्दुल कलाम

बनारस शहर में एक बच्चा अपने दोस्तों के साथ खेलते-खेलते एक दोस्त के घर में चला गया। जैसे ही उस दोस्त के पिता ने इस बच्चे को अपने घर में देखा, वो गुस्से से लाल-पीले हो गये। दोस्त के पिता ने बच्चे पर चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया।

उसने ऊंची आवाज़ में पूछा- 'तुम कैसे मेरे घर में आ सकते हो? तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मेरे घर में आने की? तुम जानते हो तुम्हारा बैकग्राउंड क्या है? तुम्हारा बैकग्राउंड अलग है, हमारा अलग। अपने बैकग्राउंड वालों के साथ उठा-बैठा करो।' यह कहकर दोस्त के पिता ने उस बालक को बाहर का रास्ता दिखा दिया।

दोस्त के पिता के इस व्यवहार से बच्चा घबरा गया। उसे समझ में नहीं आया कि आखिर उसने क्या गलत किया है। क्योंकि दूसरे बच्चों की तरह ही वह भी, अपने दोस्तों के साथ खेलते-खेलते दोस्त के घर में चला गया था। दोस्तों के घर में तो हर बच्चा जाता है, फिर उसने क्या गलत किया?

उस बच्चे के मन में अब 'बैकग्राउंड' के बारे में जानने की प्रबल इच्छा पैदा हो गयी। अपनी जिज्ञासा को दूर करने के लिए वह बालक अपने एक परिचित व्यक्ति के पास गया, जो कि पढ़ा-लिखा था और किसी

बड़ी परीक्षा की तैयारी भी कर रहा था। इस परिचित व्यक्ति ने बालक को उसके सामजिक पृष्ठभूमि के बारे में समझाया। बालक को अहसास हो गया कि वह गरीब है और उसका दोस्त अमीर। उसके पिता रिक्शा चलाते हैं और उसकी सामाजिक परिस्थिति ठीक नहीं है।

अचानक ही बालक ने उस परिचित से पूछ लिया कि सामाजिक बैकग्राउंड को बदलने के लिए क्या किया जा सकता है, तब अनायास ही उस परिचित के मुंह से निकल गया कि आईएएस अधिकारी बन जाओ, तुम्हारी भी बैकग्राउंड बदल जाएगी।

शायद मज़ाक में या फिर बच्चे का उस समय दिल खुश करने के लिए उस परिचित ने यह बात कही थी। लेकिन इस बात को बच्चे ने काफी गंभीरता से लिया था। उसके दिलोदिमाग पर इस बात ने गहरी छाप छोड़ी। उस समय छठी कक्षा में पढ़ रहे उस बालक ने ठान लिया कि वह हर हाल में आईएएस अधिकारी बनेगा। और तब से ही उस बालक ने अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए जी-जान लगाकर मेहनत की। तरह-तरह की दिक्कतों, विपरीत परिस्थितियों और अभावों के बावजूद वह बालक आगे चलकर अपनी लगन, मेहनत, संकल्प के बल पर आईएएस अधिकारी बन गया।

जिस घटना की यहां बात हुई है, वह घटना गोविन्द जायसवाल के बचपन की सच्ची घटना है।

रिक्शा चलाने वाले एक गरीब परिवार में जन्मे गोविन्द जायसवाल ने अपने पहले प्रयास में ही आईएएस की परीक्षा पास कर ली थी। आज वह एक कामयाब और नामचीन अधिकारी है।

हालांकि जिन मुश्किल हालातों और अभावों में गोविन्द ने अपनी पढ़ाई की, वह किसी को भी तोड़ सकती है। अकसर आम लोग इन हालातों और अभावों से हार जाते हैं और आगे नहीं बढ़ पाते। गोविन्द ने जो हासिल करके दिखाया है, वह बड़ी मिसाल है। गरीब परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे-युवा और दूसरे लोग भी गोविन्द की कामयाबी की कहानी से प्रेरणा ले सकते हैं।

गोविन्द के पिता नारायण जायसवाल बनारस में रिक्शा चलाते थे। रिक्शा ही उनकी कमाई का एक मात्र साधन था। रिक्शे के दम पर ही सारा घर-परिवार चलता था। गरीबी ऐसी थी कि परिवार के सारे पांचों सदस्य

बस एक ही कमरे में रहते थे। पहनने के लिए ठीक कपड़े भी नहीं थे। गोविन्द की माँ बचपन में गुजर गई थीं। तीन बहनें गोविन्द की देखभाल करती; पिता सारा दिन रिक्शा चलाते, फिर भी ज्यादा कुछ कमाई नहीं होती थी। बड़ी मुश्किल से दिन कटते थे। बड़ी-बड़ी मुश्किलें झेलकर पिता ने गोविन्द की पढ़ाई जारी रखी। चारों बच्चों की पढ़ाई और खर्चे के लिए पिता ने दिन-रात मेहनत की। कड़ाके की सर्दी हो, तेज़ गर्मी या फिर ज़ोरदार बरसात, पिता ने रिक्शा चलाया और बच्चों का पेट भरा। एक दिन जब गोविन्द ने देखा कि तेज बुखार के बावजूद उसके पिता रिक्शा लेकर चले गए, तब उसका संकल्प और भी मजबूत हो गया कि उसे किसी भी कीमत पर आईएएस बनना है। बचपन से ही गोविन्द ने कभी भी पिता और बहनों को निराश नहीं किया। भले ही उसके पास दूसरे बच्चों जैसी सुविधाएं ना हो, उसने खूब मन लगाकर पढ़ाई की और हर परीक्षा में अव्वल नंबर प्राप्त किया।

गोविन्द के घर के आसपास कई फैक्ट्रियां थीं। इन फैक्ट्रियों में चलने वाले जेनरेटरों की आवाज़ परिवारवालों को बहुत परेशान करती थी। तेज आवाजों से बचने के लिए गोविन्द कानों में रुई डालकर पढ़ाई करता।

गोविन्द की जिंदगी में मुश्किलें कम नहीं आई, उसे केवल एक जोड़ी कपड़े मिलते थे, वो भी होली में। एक जोड़ी कपड़े में पूरा साल कैसे? एक कमरे में पांच लोगों का परिवार रहता था; वही खाना बनाना; वही सोना; इनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, लेकिन यही बातें गोविन्द को हमेशा उसके लक्ष्य की याद दिलाती थी कि उसे बहुत आगे जाना है। गोविन्द की बड़ी दीदी ममता जब पढ़ाई के लिए स्कूल जाती तो लोग ताने देते कि- 'तुम्हे तो दूसरो के घर में बर्तन धोने चाहिए, जिससे दो पैसे कमा लो। पढ़-लिख कर क्या करोगी?' गोविन्द को भी कुछ लोग अकसर ताने मारकर परेशान करते कि- 'कितना भी पढ़ लो बेटा, चलाना तो तुम्हें रिक्शा ही है। कितने बड़े बनोगे; तुम दो रिक्शा ज्यादा खरीद लोगे, खुद भी चलाओगे और दूसरों से भी चलवाओगे।' ये बातें गोविन्द को बहुत अंदर तक जख्म दे जाती थी; लेकिन वह कर भी क्या सकता था, या तो उनसे लड़ ले या फिर उसी ऊर्जा को अपने लक्ष्य पर लगा दे। गरीबी के थपेड़े झेलते किसी तरह जिंदगी आगे बढ़ रही थी कि हालत उस समय और भी बिगड़ गए, जब पिता के पांव में सेप्टिक हो गया।

सेप्टिक की वजह से पिता का रिक्शा चलाना नामुमकिन हो गया। घर-परिवार चलाने के लिए पिता ने रिक्शा किराये पर दे दिया। पिता की मेहनत की वजह से गोविन्द की बहनों की शादी हो गई थी।

इन सबके बीच गोविन्द ने भी अच्छे नंबरों से ग्रेजुएशन की पढ़ाई पूरी कर ली। उसने आईएएस अधिकारी बनने का अपना सपना साकार करने के लिए कोचिंग लेने का मन बनाया। कोचिंग के लिए गोविन्द को बनारस से दिल्ली जाना पड़ा। दिल्ली में भी दिन मुश्किलों भरे ही रहे।

छात्रों को टयूशन पढ़ाकर गोविन्द ने अपने खर्चे के लिए रुपये जुटाए। कई बार तो गोविन्द ने दिनभर में सिर्फ एक बार भोजन कर अपना काम चलाया। आईएएस की परीक्षा में पास होने के मकसद से गोविन्द ने हर दिन कम-से-कम 12-13 घंटे तक पढ़ाई की। कम खाने और ज्यादा पढ़ने से हालात ऐसे हो गए कि गोविन्द की तबीयत बिगड़ गयी और उसे डॉक्टर के पास ले जाना पड़ा। डॉक्टर ने सलाह दी कि अगर कुछ समय के लिए पढ़ाई को नहीं रोका गया तो हालत और भी बिगड़ जाएगी, जिससे बहुत नुकसान होगा। लेकिन सिर्फ लक्ष्य की ओर देख रहे गोविन्द ने किसी की ना सुनी और अपनी पढ़ाई जारी रखी।

परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अब इंटरव्यू के लिए अच्छी ड्रेस और जूते चाहिए थे। उन्हीं दिनों उनकी दीदी गर्भवती थी और उन्हें चेकअप करवाने जाना था, पर उन पैसों से उन्होंने गोविन्द के इंटरव्यू की ड्रेस का इंतजाम कर दिया। सबने कहा कि आपको खतरा हो सकता है अगर इलाज नहीं हुआ तो; उन्होंने कहा 14 मई को रिजल्ट आएगा, तभी कर लूंगी। उनके इस विश्वास को गोविन्द कभी नहीं तोड़ना चाहता था। उसकी दूसरी दीदी गीता दी, जो परिवार वालों से लड़कर उन्हें सहयोग करती थी; बहुत सारी उम्मीदें थी उन्हें अपने भाई से, उन उम्मीदों को गोविन्द कभी नहीं तोड़ना चाहता था। रिजल्ट आने के पहले उसके पिताजी की तबियत बहुत ख़राब हो गयी; पर उनका बेहतर इलाज करने की क्षमता अब नहीं थी, क्योंकि सब कुछ गोविन्द की पढ़ाई में पहले ही लगाया जा चुका था। आज भी पिताजी की बात को याद करके उनकी आंखों में आंसू आ जाते हैं, जब उन्होंने अपने रिक्शे बेचते हुए कहा था- 'सबके पास 2-3 लाख होते हैं तो क्या; हमारे पास 2-3 रिक्शे हैं; वो तुम्हारे ही तो हैं, उन्हें ही बेच देते हैं।'

इस मेहनत और संकल्प का नतीजा यह निकला कि गोविन्द ने पहले ही प्रयास में आईएएस परीक्षा पास कर ली। गोविन्द ने आईएएस (सामान्य वर्ग) परीक्षा में 48वीं रैंक हासिल की। गोविन्द ने हिंदी माध्यम से अव्वल नंबर पाने का खिताब भी अपने नाम किया। आज अगर गोविन्द सफल न हुआ होता, तो जाने कितनी जिंदगियां ख़त्म हो गयी होती। आज उन्हीं गलियों के लोग उनसे बातें करना चाहते हैं, उनके ऊपर गर्व करते हैं, जिन्होंने एक दिन गोविन्द को उन्हीं गलियों में खेलने से मना कर दिया था।

गोविन्द अपनी सफलता के बारे में सिर्फ इतना कहते हैं कि- 'आप अगर वास्तविक परिश्रम करो तो कोई भी चीज असंभव नहीं है। अभाव के प्रभाव से इंसान बहुत कुछ बन सकता है।

महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि गोविन्द को अपनी पढ़ाई और कैरियर के सम्बन्ध में परिवार से कोई मार्गदर्शन नहीं मिला। लेकिन कठिनाइयों के दौर में बहनों ने गोविन्द का खूब साथ दिया। हमेशा उसकी हौसला अफज़ाई की। गोविन्द की हर मुमकिन मदद की, माँ की तरह प्यार-दुलार दिया। कुछ दोस्तों और शिक्षकों ने भी समय-समय पर सही सलाह दी। आईएएस परीक्षा की तैयारी में दिल्ली के 'पतंजलि इंस्टीटयूट' से भी मदद मिली। यहां पर धर्मेंद्र कुमार नामक शख्स ने गोविन्द की सबसे ज्यादा मदद की।

दिलचस्प बात यह भी है कि गोविन्द ने अपने जीवन में कभी 'शॉर्ट कट रास्ता' नहीं पकड़ा और बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से पढ़ाई-लिखाई की। मेहनत बहुत ज्यादा की। अभावों को आड़े आने नहीं दिया।

आईएएस परीक्षा के लिए विषय चुनने के विषय में भी गोविन्द की बात दिलचस्प है। गोविन्द के एक दोस्त के पास इतिहास की काफी किताबें थीं, सो उसने इतिहास को मुख्य विषय चुना। दूसरा विषय दर्शनशास्त्र रखा, क्योंकि इसका सिलेबस छोटा था और विज्ञान पर उसकी पकड़ मजबूत थी।

गोविन्द जायसवाल की यह कहानी लोगों को बहुत कुछ सिखाती है। अकसर लोग गरीबी, तंग हालात और विपरीत परिस्थितियों को अपनी नाकामी की वजह बताते हैं। लेकिन गोविन्द ने साबित किया है कि अगर हौसले बुलंद हो, मेहनत की जाए, संघर्ष चलता रहे तो अभावों और गरीबी में भी जीत हासिल की जा सकती है। सपनों को साकार करने के लिए परिस्थितियों और कठिनाइयों से घबराना नहीं चाहिए। अभावों को दूर करने लिए मेहनत और संघर्ष ही सफलता का सूत्र है। इस बात में भी दो राय

नहीं कि अभाव के प्रभाव ने ही गोविन्द को एक बड़ी कामयाबी हासिल करने का दृढ़संकल्प लेने पर मजबूर किया था। और, यह संकल्प पूरा हुआ कड़ी मेहनत और निरंतर संघर्ष की वजह से।

गोविन्द की कहानी यह भी बताती है कि पृष्ठभूमि का भी कामयाबी पर असर नहीं पड़ने दिया जा सकता है। बैकग्राउंड अगर कमजोर भी हो तो मजबूत संकल्प और संघर्ष से सपनों को साकार किया जा सकता है।

डॉ. कलाम ने भी ठीक ऐसा कुछ कहा है, जिसे गोविन्द ने अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाया। उसके जीवन की कठिनाइयों ने उसे चुनौती दी, लेकिन उसने अपनी छुपी हुई सामर्थ्य और शक्तियों को बाहर निकालकर कठिनाइयों को यह बता दिया कि वह उससे भी ज्यादा चुनौती दे सकता है।

जब सबकुछ बुरा होते दिखे, चारों तरफ अन्धकार-ही-अन्धकार नज़र आये, अपने भी पराये लगने लगें तो भी उम्मीद मत छोड़िए। आशा मत छोड़िए, क्योंकि इसमें इतनी शक्ति है कि यह हर खोई हुई चीज आपको वापस दिला सकती है। अपनी आशा की मोमबत्ती को जलाए रखिए, बस अगर यह जलती रहेगी तो आप किसी भी अन्य मोमबत्ती को प्रकाशित कर सकते हैं।

आशावादी बनें, सफल जीवन का संपूर्ण आयाम आशा की उर्वर भूमि पर ही खड़ा होता है। आशा हमारे विश्वास का संबल है। हमारा जीवन स्वयं आशा का प्रतिबिंब है। अपने गुणों पर विश्वास से ही आशा बनी रहती है। आशावादियों के जीवन की कोशिकाएं क्रियात्मक बनी रहती हैं। वस्तुतः कर्म की प्रेरणा और सक्रियता हमारी आशावादिता के कारण ही है। सफलता के लिए इसी ऊर्जा को बढ़ाना पड़ता है। जैसे-जैसे हमारा उत्साह बढ़ेगा, हमारी कार्यक्षमता बढ़ेगी, स्वयं पर विश्वास उसी अनुपात में बढ़ता जाएगा।

लक्ष्य के प्रति निष्ठावान रहें

'अपने मिशन में कामयाब होने के लिए, आपको अपने लक्ष्य के प्रति एकचित्त निष्ठावान होना पड़ेगा।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. कलाम के इस विचार से मिलता-जुलता उदाहरण है तमिलनाडु के अरुणाचलम मुरुगनाथन के जीवन की कहानी। जिनकी गिनती आज देश के सफलतम उद्यमियों और कारोबारियों में होती है। उनके द्वारा बनाई गयी एक मशीन की वजह से भारत में क्रांति आयी और महिलाओं को उससे बहुत फायदा हुआ। महिलाओं के लिए सस्ती, लेकिन गुणवत्ता युक्त सैनिटरी नैपकिन बनाने वाली इस मशीन का ईजाद कर अरुणाचलम ने देश-भर में खूब नाम कमाया। इस मशीन को बनाने के लिए उन्होंने एक कारखाना भी खोला। मशीन इतनी कारगर थी कि उसकी खूब बिक्री हुई और अरुणाचलम ने खूब मुनाफा कमाया। अरुणाचलम की कम्पनी 'जयश्री इंडस्ट्रीज' ने देश के 29 में से 23 राज्यों में अपनी मशीनें बेची हैं और अब विदेशों से भी मशीन की मांग हो रही है। क्रांतिकारी ईजाद और सफल कारोबार की वजह से साल 2014 में विश्वप्रसिद्ध 'टाइम्स' मैगजीन ने उन्हें दुनिया के सबसे प्रभावशाली 100 लोगों की सूची में शामिल किया। इसी सूची में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा, भारत के प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी जैसी हस्तियां शामिल हैं। अरुणाचलम ने कई प्रतिष्ठित सम्मान और पुरस्कार अपने नाम किए हैं। मुरुगनाथन का कारोबारी मंत्र

काफी सरल है- 'पैसे के पीछे मत भागो। समस्याएं खोजो और उनका समाधान करो। इससे पैसा अपने आप आ जाएगा। एमबीए के डिग्रीधारी छात्र भी यह नहीं समझते हैं कि सफलता का मतलब महज धन संचय करना ही नहीं है।' वह अपने बारे में कहते हैं- 'वह न तो कारोबारी हैं और न ही कोई आविष्कारक।'

लेकिन कामयाबी की इस कहानी के पीछे खुद की पत्नी-माँ का बहिष्कार और समाज का तिरस्कार भी है। अपने आविष्कार के लिए प्रयोग किए जाने के दौरान परिवार वालों ने नहीं, बल्कि दोस्तों और दूसरे साथियों ने भी उससे सारे नाते तोड़ लिए। कई लोगों ने अरुणाचलम को पागल कहा, तो कुछ ने उसे सनकी करार दिया, तो कुछ लोगों ने उस पर मानसिक रूप से विक्षिप्त होने और लैंगिक बीमारी से पीड़ित होने का शक जताया। उसे कई बार अपमान और नफरत का सामना करना पड़ा। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि पक्की लगन, हार ना मानने का जज्बा, कामयाब होने का जुनून, लक्ष्य हासिल करने की जिद ने अरुणाचलम को एक मामूली गरीब इंसान से कामयाब, मशहूर और प्रभावशाली व्यक्ति बनाया।

अरुणाचलम का जन्म तमिलनाडु के एक बहुत ही पिछड़े ग्रामीण इलाके में रहने वाले गरीब बुनकर परिवार में हुआ था। पिता की एक दुर्घटना में मौत के बाद अरुणाचलम के लिए हालात और भी बिगड़ गए। माँ वनिता को खेतों में मजदूरी करनी पड़ी। चूंकि मजदूरी से रकम कम मिलती थी और घर-परिवार को चलाना मुश्किल हो रहा था, पैसे बचाने के लिए अरुणाचलम को स्कूल बीच में ही छोड़ना पड़ा। 14 साल की उम्र में स्कूल छोड़ने के बाद अरुणाचलम ने रुपये कमाने के मकसद से कई जगह नौकरी की। कभी फैक्ट्री मज़दूरों को भोजन आपूर्ति की तो कभी वेल्डर, मशीन ऑपरेटर की तरह काम किया। किसी तरह मजदूरी और मेहनत कर अपने और माँ के लिए रोटी और कपड़ों का इंतज़ाम किया।

1998 में अरुणाचलम की शादी शान्ति नामक युवती से हुई। शादी के बाद अरुणाचलम की ज़िंदगी में बड़ी तेज़ी से बदलाव आए। शादी ने अरुणाचलम को पूरी तरह से बदल कर रख दिया।

शादी के कुछ ही दिनों बाद अरुणाचलम ने एक दिन देखा कि उसकी पत्नी उससे कोई सामान छिपा रही थी।

अरुणाचलम के मन में जानने की इच्छा लगातार बढ़ती गयी कि आखिर वह कौन-सी चीज़ थी, जो उसकी पत्नी उससे छिपा रही थी। बहुत कोशिश के बाद भी अरुणाचलम जान नहीं पाया।

फिर एक दिन अरुणाचलम ने देखा कि उसकी पत्नी कपड़ों के टुकड़े और अखबार के पन्ने चुन रही है। अरुणाचलम बहुत हैरान हुआ, उससे रहा नहीं गया। उसने अपनी पत्नी से छिपाई गयी उन वस्तुओं, कपड़ों के टुकड़े और अखबार के पन्ने चुनने की वजह पूछी।

पत्नी ने बताया कि वह मासिक धर्म के समय इन कपड़ों के टुकड़ों और अखबार के पन्नों का इस्तेमाल करती है।

अरुणाचलम पत्नी के लिए नैपकिन लेने केमिस्ट के पास गया तो उसे ताज्जुब हुआ कि महज कुछ रुपयों की चीज के दाम 60 रुपये थे। उसने निश्चय किया कि वह देश की तमाम महिलाओं के लिए सस्ते न नैपकिन का निर्माण खुद करेगा। इसके लिए उसने कई प्रकार के प्रयोग किए। लोगों ने उसे पागल करार तक दे दिया।

तरह-तरह के प्रयोगों के बावजूद वह यह नहीं जान पाया था कि अंतर्राष्ट्रीय कंपनियां आखिर सैनिटरी नैपकिन किससे और कैसे बनाती हैं। वह यह जरूर जान गया था कि कपास के अलावा किसी दूसरी वस्तु का इसमें इस्तेमाल होता है।

अरुणाचलम ने अपने जान-पहचान के एक प्रोफेसर की मदद लेकर सैनिटरी नैपकिन बनाने वाली कंपनियों को चिट्ठियां लिखनी शुरू की। सवाल था कि किस वस्तु का इस्तेमाल कर नैपकिन बनाई जाती हैं। अरुणाचलम को जवाब नहीं मिला।

करीब दो साल की मेहनत और काफी जोड़-तोड़ के बाद अरुणाचलम जान पाया कि सैलूलोज फाइबर का इस्तेमाल होता है। यह सैलूलोज फाइबर चीड़ के पेड़ की लकड़ी के छाल के गूदे से निकाला जाता था। इस जानकारी ने अरुणाचलम में नया उत्साह भरा। उसके मन में नयी उम्मीद जगी।

उसने अब नैपकिन बनाने वाली मशीन की तलाश शुरू की। जो जानकारी मिली, उससे वह कुछ पल के लिए दंग रह गया। सबसे सस्ती मशीन की कीमत 3.5 करोड़ रुपये थी। इस बार अरुणाचलम ने एक और

बड़ा फैसला किया। उसने ठान लिया कि वह सैनिटरी नैपकिन बनाने वाली मशीन का भी ईजाद करेगा। अरुणाचलम की मेहनत लगन रंग लाई। और सस्ती लेकिन गुणवत्ता वाली सैनिटरी नैपकिन बनाने वाली मशीन बनाने में वह कामयाब हो गया। उसने सिर्फ 65,000 रुपये की लागत में मशीन बनवा ली।

इसके बाद अरुणाचलम ने फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह लगातार कामयाब होता गया। उसकी शोहरत लगातार बढ़ती गयी।

उसकी जिंदगी में उस समय एक बड़ा मोड़ आया, जब उसे आईआईटी मद्रास जाने का मौका मिला। आईआईटी मद्रास ने अरुणाचलम को न्योता देकर खासतौर पर बुलाया था और जानने की कोशिश की थी कि अरुणाचलम ने कैसे सैनिटरी नैपकिन बनाने वाली मशीन को बनाया था। अरुणाचलम की कहानी सुनकर आईआईटी के वैज्ञानिक और दूसरे लोग काफी प्रभावित हुए। इन्हीं लोगों ने अरुणाचलम के नाम की सिफारिश 'इनोवेशन्स अवार्ड' के लिए की। अरुणाचलम को यह अवार्ड तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के हाथों से प्राप्त हुआ।

इस अवार्ड के बाद अरुणाचलम को खूब ख्याति मिली। मीडिया में भी अरुणाचलम के बारे में अच्छी-अच्छी खबरें छपीं।

इन सबसे उत्साहित होकर अरुणाचलम ने 'जयश्री इंडस्ट्रीज' की स्थापना की और अपनी मशीन बेचना शुरू करते हुए कारोबार किया। उद्योग जगत् में भी अरुणाचलम को खूब कामयाबी मिली। उसने महिलाओं के विकास और कल्याण के लिए काम कर रही गैर-सरकारी संस्थाओं और स्वयंसेवी संस्थाओं को भी अपनी मशीन बेची।

यह अरुणाचलम की मेहनत, कोशिश और संघर्ष का ही नतीजा है कि भारत में एक नयी क्रांति आयी और इससे महिलाओं तथा लड़कियों को काफी लाभ मिला।

देश और दुनिया के बड़े-बड़े संस्थान अब अरुणाचलम के विचार सुनने उन्हें अपने यहां ससम्मान बुला रहे हैं।

लेकिन उन्होंने जिस मशीन का आविष्कार किया है, वह उसके व्यावसायीकरण से साफ इनकार करते हैं। उनका कहना है कि इससे प्राप्त मुनाफा सीधे तौर पर गांवों और शहरों की महिलाओं को मिलना चाहिए। इन मशीनों को 23 राज्यों तक पहुंचाने के बाद मुरुगनाथन ने छत्तीसगढ़ के

दंतेवाड़ा के दो गांवों में महिलाओं के दो समूह स्थापित किए और उन्हें मशीन के रूप में जीविका का साधन दिया। माओवादियों के साथ आए दिन होने वाली मुठभेड़ पर वह कहते हैं- 'वे हरेक जगह हैं। जब उन्होंने मेरे काम के बारे में सुना, तो वे मुझ पर हंसे थे।'

धनाढ्य कंपनियां भी सीएसआर धन के साथ इस काम में उनकी मदद कर रही हैं। उड़ीसा के अंगुल में जिंदल स्टील ने मुरुगनाथन द्वारा तैयार छह मशीनों का प्रायोजन किया है, वहीं बेल्लारी में जेएसडब्ल्यू स्टील ने दो मशीनों का खर्च दिया है। उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में 'डुयू पॉन्ट' ने एक बालिका विद्यालय में एक मशीन स्थापित करने में मदद दी है, वहीं 'मोजरबीयर' ने भी दिल्ली के एक स्कूल में यह मशीन स्थापित करने में योगदान दिया है।

मुरुगनाथन का काम अभी पूरा नहीं हुआ है। वह अब अगली समस्या के निदान पर काम कर रहे हैं। वह प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की कुपोषण की रिपोर्ट का हवाला देते हैं और कहते हैं- 'वह इस समस्या पर पहले से ही काम कर रहे हैं। वह चाहते हैं कि हरेक गरीब घर खाद्य प्रसंस्करण की इकाई बन जाए। वह वैकल्पिक जरियों जैसे कूड़े (जैसे चीथड़े-कचरे) पर फसल उगाने पर काम कर रहे हैं। इससे भूमिहीन लोगों को उत्पादन करने और अपने बच्चों को भरपूर आहार देने में मदद मिलेगी।'

आज अरुणाचलम सिर्फ आविष्कारक की नहीं, एक सफल उद्यमी, समाज सेवी, मार्ग-प्रदर्शक, आदर्श और क्रांतिकारी व्यक्तित्व हैं।

अरुणाचलम की यह कहानी लोगों को अपने लक्ष्य के प्रति एकचित्त निष्ठावान रहना सिखाती है। अपने मिशन में कामयाब होने के लिए, अपने लक्ष्य के प्रति एकचित्त निष्ठावान होना ही पड़ेगा, तभी जीवन में सफलता मिलती है।

समस्याओं से लड़ना और उनसे जीतना आना चाहिए

'मेरा यह सन्देश विशेष रूप से युवाओं के लिए है। उनमें अलग सोच रखने का साहस, नए रास्तों पर चलने का साहस, आविष्कार करने का साहस होना चाहिए। उन्हें समस्याओं से लड़ना और उनसे जीतना आना चाहिए। ये सभी महान गुण हैं और युवाओं को इन गुणों को अपनाना चाहिए।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

भारत सरकार ने 66वें गणतंत्र दिवस पर जिन लोगों के नामों की घोषणा पद्म पुरस्कारों के लिए की, उनमें एक नाम अरुणिमा सिन्हा का भी था। उत्तर प्रदेश की अरुणिमा सिन्हा को 'पद्मश्री' के लिए चुना गया। 'पद्मश्री' भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाला चौथा सबसे बड़ा नागरिक सम्मान है। भारत रत्न, पद्मविभूषण और पद्मभूषण के बाद 'पद्मश्री' ही सबसे बड़ा सम्मान है। किसी भी क्षेत्र में असाधारण और विशिष्ट सेवा के लिए पद्म सम्मान दिए जाते हैं। खेलकूद के क्षेत्र में असाधारण और विशिष्ट सेवा के लिए अरुणिमा सिन्हा को 'पद्मश्री' देने का ऐलान किया गया। अरुणिमा सिन्हा दुनिया के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने वाली दुनिया की पहली विकलांग महिला हैं। 21 मई, 2013 की सुबह 10:55 मिनट पर अरुणिमा ने माउंट एवरेस्ट पर तिरंगा फहराकर 26 साल की उम्र में विश्व की पहली विकलांग पर्वतारोही बनने का गौरव हासिल किया।

खेलकूद के क्षेत्र में जिस तरह अरुणिमा की कामयाबी असाधारण है, उसी तरह उनकी ज़िंदगी भी असाधारण ही है।

अरुणिमा को कुछ बदमाशों ने चलती ट्रेन से बाहर फेंक दिया था। अरुणिमा ने इन बदमाशों को अपनी चेन छीनने नहीं दिया था, जिससे नाराज़ बदमाशों ने उन्हें चलती ट्रेन से बाहर फेंक दिया। इस हादसे में बुरी तरह ज़ख्मी अरुणिमा की जान तो बच गयी थी, लेकिन उन्हें जिंदा रखने के लिए डॉक्टरों को उनकी बायीं टांग काटनी पड़ी। अपना एक पैर गंवा देने के बावजूद राष्ट्रीय स्तर पर वॉलीबाल खेलने वाली अरुणिमा ने हार नहीं मानी और हमेशा अपना जोश बनाए रखा। भारतीय क्रिकेटर युवराज सिंह और देश के सबसे युवा पर्वतारोही अर्जुन वाजपेयी के बारे में पढ़कर अरुणिमा ने उनसे प्रेरणा ली। फिर माउंट एवरेस्ट पर फतह पाने वाली पहली भारतीय महिला बछेंद्री पाल से मदद और प्रशिक्षण लेकर एवरेस्ट पर विजय हासिल की।

अरुणिमा ने एवरेस्ट पर फतह करने से पहले ज़िंदगी में कई उतार-चढ़ाव देखे। कई मुसीबतों का सामना किया। कई बार अपमान सहा। बदमाशों और शरारती तत्वों के गंदे और भद्दे आरोप सहे। मौत से भी संघर्ष किया। कई विपरीत परिस्थितियों का सामना किया, लेकिन कभी हार नहीं मानी। कमज़ोरी को भी अपनी ताकत बनाया। मजबूत इच्छा-शक्ति, मेहनत, संघर्ष और हार न मानने वाले ज़ज्बे से असाधारण कामयाबी हासिल की। दुनिया की सबसे ऊंची पर्वतचोटी पर पहुंच कर अरुणिमा ने साबित किया कि हौसले बुलंद हो तो ऊंचाई मायने नहीं रखती, इंसान अपने दृढ़ संकल्प, तेज़ बुद्धि और मेहनत से बड़ी-से-बड़ी कामयाबी हासिल कर सकता है। अरुणिमा सिन्हा अपने संघर्ष और कामयाबी की वजह से दुनिया-भर में कई लोगों के लिए प्रेरणा बन गयी हैं।

बहादुरी की अद्‌भुत मिसाल पेश करने वाली अरुणिमा का परिवार मूलत: बिहार से है। उनके पिता भारतीय सेना में थे। स्वाभाविक तौर पर उनके तबादले होते रहते थे। इन्हीं तबादलों के सिलसिले में उन्हें उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर आना पड़ा था, लेकिन सुल्तानपुर में अरुणिमा के परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अरुणिमा के पिता का निधन हो गया। हंसते-खेलते परिवार में मातम छा गया।

पिता की मृत्यु के समय अरुणिमा की उम्र महज़ कुछ साल थी। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और देखभाल की सारी जिम्मेदारी माँ पर

आ पड़ी। माँ ने मुश्किलों से भरे इस दौर में हिम्मत नहीं हारी और मजबूत फैसले लिए। माँ अपने तीनों बच्चों- अरुणिमा, उसकी बड़ी बहन लक्ष्मी और छोटे भाई को लेकर सुल्तानपुर से अम्बेडकर नगर आ गयीं। अम्बेडकर नगर में माँ को स्वास्थ्य विभाग में नौकरी मिल गयी, जिसकी वजह से बच्चों का पालन-पोषण ठीक तरह से होने लगा। बहन और भाई के साथ अरुणिमा भी स्कूल जाने लगी। स्कूल में अरुणिमा का मन पढ़ाई में कम और खेल-कूद में लगता था। दिन-ब-दिन खेल-कूद में उसकी दिलचस्पी बढ़ती गयी। वह चैंपियन बनने का सपना देखने लगी।

जान-पहचान के लोगों ने अरुणिमा के खेल-कूद पर आपत्ति जताई, लेकिन माँ और बड़ी बहन ने अरुणिमा को अपने मन की इच्छा के मुताबिक काम करने दिया। अरुणिमा को फुटबॉल, वॉलीबॉल और हॉकी खेलने में ज्यादा दिलचस्पी थी। जब कभी मौका मिलता, वह मैदान चली जाती और खूब खेलती। अरुणिमा का मैदान में खेलना आस-पड़ोस के कुछ लड़कों को खूब अखरता। वे लोग अरुणिमा पर तरह-तरह की टिप्पणियां करते, उसे छेड़ने की कोशिश करते। किन्तु अरुणिमा शुरू से ही तेज़ थी और माँ के लालन-पालन की वजह से विद्रोही स्वभाव भी उसमें था। वह लड़कों को अपनी मनमानी करने नहीं देती थी और छेड़छाड़ की कोशिश पर ऐसे तेवर दिखाती, जिससे डरकर लड़के दूर भाग जाते। एक बार तो अरुणिमा ने उसकी बहन से बदतमीज़ी करने वाले एक शख्स की भरे-बाजार में पिटाई कर दी थी।

अरुणिमा ने इस दौरान कई प्रतियोगिताओं में हिस्सा लिया और अपनी प्रतिभा से कइयों को प्रभावित किया। उसने खूब वॉलीबॉल-फुटबॉल खेला, कई पुरस्कार भी जीते। राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भी खेलने का मौका मिला।

इसी बीच अरुणिमा की बड़ी बहन की शादी हो गई। शादी के बाद भी बड़ी बहन ने अरुणिमा का काफी ख्याल रखा। बड़ी बहन की मदद और प्रोत्साहन की वजह से ही अरुणिमा ने खेल-कूद के साथ-साथ अपनी पढ़ाई भी जारी रखी। उसने कानून की पढ़ाई की और एलएलबी की परीक्षा भी पास कर ली।

घर-परिवार चलाने में माँ की मदद करने के मकसद ने अरुणिमा ने

अब नौकरी करने की सोची। नौकरी के लिए उसने कई जगह अर्जियां दाखिल कीं।

इसी दौरान उसे केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल यानी सीआईएसएफ के दफ्तर से बुलावा आया। अधिकारियों से मिलने वह नोएडा जाने के लिए पद्मावत एक्सप्रेस पर सवार हुई और एक जनरल डिब्बे में खिड़की के किनारे की सीट पर बैठ गयी। कुछ ही देर बाद कुछ बदमाश लड़के अरुणिमा के पास आये और उनमें से एक ने अरुणिमा के गले में मौजूद चेन पर झपट्टा मारा। अरुणिमा को गुस्सा आ आया और वह लड़के पर झपट पड़ी। दूसरे बदमाश साथी उस लड़के की मदद के लिए आगे आये और अरुणिमा को दबोच लिया। अरुणिमा ने हार नहीं मानी और लड़कों से जूझती रही। लेकिन उन बदमाश लड़कों ने अरुणिमा को हावी होने नहीं दिया। इतने में ही किसी बदमाश लड़के ने अरुणिमा को इतनी ज़ोर से लात मारी कि वह चलती ट्रेन से बाहर गिर गयी। अरुणिमा का एक पांव ट्रेन की चपेट में आ गया और वह बेहोश हो गयी। रात-भर अरुणिमा ट्रेन की पटरियों के पास ही पड़ी रही। सुबह जब कुछ गांववालों ने उसे इस हालत में देखा तो उसे अस्पताल ले गए। जान बचाने के लिए डॉक्टरों को अस्पताल में अरुणिमा की बायीं टांग काटनी पड़ी।

जैसे ही इस घटना की जानकारी मीडिया वालों को हुई, ट्रेन की यह घटना अखबारों और न्यूज़चैनलों की सुर्खियों में आ गयी। मीडिया और महिला संगठनों के दबाव में सरकार को बेहतर इलाज के लिए अरुणिमा को लखनऊ के ट्रॉमा सेंटर में भर्ती कराना पड़ा।

सरकार की ओर से कई घोषणाएं भी की गयीं। तत्कालीन रेल मंत्री ममता बनर्जी ने अरुणिमा को नौकरी देने की घोषणा की। खेल मंत्री अजय माकन की ओर से भी मदद की घोषणा हुई। सीआईएसएफ ने भी नौकरी देने का ऐलान कर दिया, लेकिन इन घोषणाओं के बाद ज्यादा कुछ नहीं हुआ। उल्टे कुछ लोगों ने अरुणिमा के बारे में तरह-तरह की झूठी बातों का प्रचार किया। उसे बदनाम करने की कोशिश की गयी। कुछ शरारती तत्वों ने यह कहकर विवाद शुरू किया कि अरुणिमा सरकारी नौकरी की हकदार नहीं है, क्योंकि उसने कभी राष्ट्रीय स्तर पर खेला ही नहीं है। इस तरह की बातें मीडिया में भी आने लगीं। अरुणिमा इन बातों से बहुत हैरान और परेशान हुई। वह अपने अंदाज़ में आरोप लगाने वालों को जवाब देना

चाहती थी, लेकिन बेबस थी। एक पांव काट दिया गया था और शारीरिक रूप से कमज़ोर होकर वह अस्पताल में बिस्तर पर पड़ी हुई थी। बहुत कुछ चाह कर भी वह कुछ न कर पाने की हालत में थी।

माँ, बहन व जीजा ने अरुणिमा की हिम्मत बढ़ाई और उसे अपना ज़ज्बा बरकरार रखने की सलाह दी।

अस्पताल में इलाज के दौरान समय काटने के लिए अरुणिमा ने अखबार पढ़ना शुरू किया। एक दिन जब वह अखबार पढ़ रही थी, उसकी नज़र एक खबर पर गयी। खबर थी कि नोएडा के रहने वाले 17 वर्षीय अर्जुन वाजपेयी ने देश के सबसे युवा पर्वतारोही बनने का कीर्तिमान हासिल किया है।

इस खबर ने अरुणिमा के मन में एक नए विचार को जन्म दिया। खबर ने उसके मन में एक नया जोश भर दिया था। अरुणिमा के मन में विचार आया कि जब 17 साल का युवक माउंट एवरेस्ट पर विजय पा सकता है, तो वह क्यों नहीं? उसे एक पल के लिए लगा कि उसकी विकलांगता अड़चन बन सकती है, लेकिन उसने ठान लिया कि वह किसी भी सूरतेहाल में माउंट एवरेस्ट पर चढ़कर की रहेगी। उसने अखबारों में क्रिकेटर युवराज सिंह के कैंसर से संघर्ष के बाद मैदान में फिर से उतरने की खबर भी पढ़ी। उसका इरादा अब बुलंद हो गया।

इसी बीच उसे कृत्रिम पांव भी मिल गया। अमेरिका में रहने वाले डॉ. राकेश श्रीवास्तव और उनके भाई शैलेश श्रीवास्तव, जो 'इनोवेटिव' नाम से एक संस्था चलाते हैं, उन्होंने अरुणिमा के लिए कृत्रिम पैर बनवाया। इस कृत्रिम पैर को पहनकर अरुणिमा फिर से चलने लगी।

हालांकि कृत्रिम टांग लगने के बावजूद कुछ दिनों तक अरुणिमा की मुश्किलें जारी रहीं। विकलांगता का प्रमाणपत्र होने के बावजूद लोग अरुणिमा पर शक करते। एक बार तो रेलवे सुरक्षा बल के एक जवान ने अरुणिमा की कृत्रिम टांग खुलवाकर देखा कि वह विकलांग है या नहीं। ऐसे ही कई जगह अरुणिमा को अपमान सहने पड़े।

वैसे तो ट्रेन वाली घटना के बाद रेल मंत्री ममता बनर्जी ने नौकरी देने की घोषणा की थी, लेकिन रेल अधिकारियों ने इस घोषणा पर कोई कार्यवाही नहीं की और हर बार अरुणिमा को अपने दफ्तरों से निराश ही लौटाया। अरुणिमा कई कोशिशों के बावजूद रेल मंत्री से भी नहीं मिल पाई, लेकिन अरुणिमा ने अपने हौसले बुलंद रखे और जो अस्पताल में

फैसला लिया था, उसे पूरा करने के लिए काम चालू कर दिया।

अरुणिमा ने किसी तरह बछेंद्री पाल से संपर्क किया। बछेंद्री पाल माउंट एवरेस्ट पर फतह पाने वाली पहली भारतीय महिला थीं। बछेंद्री पाल से मिलने अरुणिमा जमशेदपुर गयीं। बछेंद्री पाल ने अरुणिमा को निराश नहीं किया। अरुणिमा को हर मुमकिन मदद दी और हमेशा प्रोत्साहित किया।

अरुणिमा ने उत्तराखंड स्थित नेहरु इंस्टीट्यूट ऑफ माउंटेनरिंग (एनआईएम) से पर्वतारोहण का 28 दिन का प्रशिक्षण लिया।

उसके बाद इंडियन माउंटेनियरिंग फाउंडेशन यानी आईएमएफ ने उसे हिमालय पर चढ़ने की इजाजत दे दी। प्रशिक्षण पूरा करने के बाद 31 मार्च, 2012 को अरुणिमा का मिशन एवरेस्ट शुरू हुआ। अरुणिमा के एवरेस्ट अभियान को 'टाटा स्टील एडवेंचर फाउंडेशन' ने प्रायोजित किया। फाउंडेशन ने अभियान के आयोजन और मार्गदर्शन के लिए 2012 में एशियन ट्रैकिंग कंपनी से संपर्क किया था।

एशियन ट्रैकिंग कंपनी ने 2012 के वसंत में अरुणिमा को नेपाल की आइलैंड चोटी पर प्रशिक्षण दिया। 52 दिनों के पर्वतारोहण के बाद 21 मई, 2013 की सुबह 10:55 मिनट पर अरुणिमा ने माउंट एवरेस्ट पर तिरंगा फहराया और 26 साल की उम्र में विश्व की पहली विकलांग पर्वतारोही बनीं। अपने इस अनुभव को सबके साथ साझा करते हुए कहा कि जब मैंने पहली बार एवरेस्ट फतह करने की अपने दिल की इच्छा जताई थी, तो लोगों ने कैसा मजाक उड़ाया था। आज वे ही लोग देख लें कि मैं कहां पर हूं। 'अरे! पैरों से चलकर मंजिल मिलती होती तो अरबों लोग अपनी मंजिलों पर पहुंच गए होते, यह तो हौसला होता है, जो आपको कहीं भी पहुंचा देता है।'

कृत्रिम पैर के सहारे माउंट एवरेस्ट पर पहुंचने वाली अरुणिमा सिन्हा यहीं नहीं रुकना चाहती हैं। वह और भी बड़ी कामयाबियां हासिल करने का इरादा रखती हैं। वे ऐसी युवा हैं, जिनमें अलग सोच रखने का साहस, नये रास्तों पर चलने का साहस, आविष्कार करने का साहस है। उन्हें समस्याओं से लड़ना और उनसे जीतना आता आता है। उनकी इच्छा यह भी है कि वे शारीरिक रूप से विकलांग लोगों की कुछ इस तरह से मदद करें कि वे भी असाधारण कामयाबियां हासिल करें और समाज में सम्मान से जियें।

जीवन में उजाला

'किसी के जीवन में उजाला लाओ। इससे दूसरों को मदद मिलेगी, और आपको खुशी।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. अब्दुल कलाम को एक बार तमिलनाडु के मणिमारन की सेवा के बारे में पता चला तो उन्होंने मणिमारन से मिलने का मन बनाया और जब वे उससे मिले तो उसके काम से प्रभावित होकर उन्होंने एक संस्था खोलने की सलाह दी। उनकी सलाह को मानते हुए मणिमारन ने अपने कुछ दोस्तों के सहयोग से साल 2009 में 'वर्ल्ड पीपुल सर्विस सेंटर' की स्थापना की। आज यह संस्था कलाम के बताए हुए रास्तों पर चल कर जरूरतमंदों की मदद कर रही है।

आम तौर पर कई लोगों में यह धारणा बनी हुई है कि समाज-सेवा के लिए खूब धन-दौलत की ज़रूरत होती है। जिनके पास रुपये हैं, वे ही ज़रूरतमंद लोगों की मदद कर समाज-सेवा कर सकते हैं। परन्तु इस धारणा को तोड़ा है तमिलनाडु के एक नौजवान मणिमारन ने।

मणिमारन का जन्म तमिलनाडु में तिरुवन्नामलई जिले के थलयमपल्लम गांव के एक किसान परिवार में हुआ। परिवार इतना गरीब था कि उसकी गिनती गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों में होती थी। गरीबी के बावजूद घर के बड़ों ने मणिमारन को स्कूल भेजा। पिता चाहते थे कि मणिमारन खूब पढ़े और अच्छी नौकरी पर लगे। किन्तु आगे चलकर हालत इतने खराब हो गए कि मणिमारन को बीच में ही स्कूल छोड़ना पड़ा। गरीबी की वजह से मणिमारन ने नवीं कक्षा में पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी

और घर-परिवार चलाने में बड़ों की मदद करने में जुट गए। मणिमारन ने भी उसी कपड़ा मिल में नौकरी करनी शुरू की, जहां उनके भाई नौकरी करते थे। मणिमारन को शुरुआत में 1000 रुपये प्रतिमाह की तनख्वाह पर काम दिया गया।

मणिमारन ने अपनी मासिक कमाई का आधा हिस्सा अपने पिता को देना शुरू किया और आधा हिस्सा यानी 500 रुपये ज़रूरतमंद लोगों की मदद में लगाया।

बचपन से ही मणिमारन को ज़रूरतमंद और निस्सहाय लोगों की मदद करने में दिलचस्पी थी। मणिमारन का परिवार गरीब था और परिवारवालों के लिए 500 रुपये काफी मायने रखते थे, लेकिन मणिमारन पर ज़रूरतमंदों की मदद करने का जुनून सवार था। मणिमारन 500 रुपये अपने लिए भी खर्च कर सकते थे। नये कपड़े, जूते और दूसरे सामान, जो बच्चे अकसर अपने लिए चाहते हैं, किन्तु खरीद सकते थे। लेकिन मणिमारन के विचार कुछ अलग ही थे। छोटी-सी उम्र में वे थोड़े से ही काम चलाना जान गए थे और उनकी मदद को बेताब थे, जिनके पास कुछ भी नहीं है।

अपनी मेहनत की कमाई के 500 रुपये से मणिमारन ने सड़कों, गलियों, मंदिरों और दूसरी जगहों पर निस्सहाय पड़े रहने वाले लोगों की मदद करना शुरू किया। मणिमारन ने इन लोगों में कम्बल, कपड़े और दूसरे ज़रूरी सामान बांटे। मणिमारन ने कई दिनों तक ऐसे ही अपनी कमाई का आधा हिस्सा ज़रूरतमंद लोगों में लगाया।

गरीबी के उन हालातों में शायद ही कोई ऐसा करता। परिवारवालों ने भी मणिमारन को अपनी इच्छा के मुताबिक काम करने से नहीं रोका। मणिमारन ने ठान लिया था कि वह अपनी ज़िंदगी किसी अच्छे मकसद के लिए समर्पित करेंगे।

इसी दौरान एक घटना ने मणिमारन के जीवन की दशा और दिशा दोनों बदल दी।

एक बार मणिमारन कोयंबटूर से तिरुपुर जा रहे थे। सफर बस से था। बस में कुछ खराबी आने की वजह से उसे ठीक करने के लिए उसे बीच रास्ते में ही रोका गया। बस में बैठे मणिमारन ने देखा कि एक बूढ़ी महिला, जो कि कुष्ठ रोग से पीड़ित थी, लोगों से पीने के लिए पानी मांग रही थी।

उसके हाव-भाव से साफ था कि वह प्यासी है। लेकिन इस प्यासी बुढ़िया की किसी ने मदद नहीं की। उल्टे, लोग बुढ़िया को दूर भगाने लगे। कोई उसे सुनने को भी तैयार नहीं था। इतने में ही मणिमारन ने देखा कि वह बुढ़िया अपनी प्यास बुझाने के लिए एक नाले के पास गयी और वहीं से गन्दा पानी उठाने लगी। यह देख कर मणिमारन उस बुढ़िया के पास दौड़ा और उसे गंदा पानी पीने से रोका।

मणिमारन ने देखा कि बुढ़िया की शारीरिक हालत काफी खराब हैं और कुष्ठ रोग की वजह से उसके शरीर पर कई ज़ख्म हैं, तो उसका दिल पसीज गया। उसने उस बूढ़ी महिला का मुंह साफ किया और उसे साफ पानी पिलाया। इस मदद से खुश उस महिला ने मणिमारन को अपने गले लगा लिया और गुज़ारिश की कि वह उसे अपने साथ ले चले। मणिमारन उस महिला को अपने साथ ले जाना चाहते थे, लेकिन उस समय उसे ले जाने की हालत में नहीं थे। इस वजह से मणिमारन ने एक ऑटो ड्राइवर को 300 रुपए दिया और उससे दो दिन तक महिला की देखभाल करने को कहा। मणिमारन ने महिला को भरोसा दिलाया कि वह तीसरे दिन आकर उन्हें अपने साथ ले जाएगा।

मणिमारन जब उस महिला को लेने उसी जगह पहुंचे, तो वह वहां नहीं थी। मणिमारन ने महिला की तलाश शुरू की, लेकिन काफी कोशिशों के बावजूद भी वह नहीं मिली। मणिमारन बहुत निराश हुए।

यहीं से उनके जीवन की दिशा बदली। मणिमारन ने एक बड़ा फैसला लिया। फैसला लिया- कुष्ठ रोग से पीड़ित लोगों की सेवा में अपना जीवन समर्पित करने का। फिर क्या था, अपने संकल्प के मुताबिक मणिमारन ने कुष्ठ रोग से पीड़ित लोगों की मदद करना शुरू किया। जहां कहीं उन्हें कुष्ठ रोग से पीड़ित लोग निस्सहाय स्थिति में दिखाई देते, वे उन्हें अपने यहां लाकर उनकी मदद करते। मणिमारन ने इन लोगों का इलाज भी करवाना शुरू किया।

उन दिनों लोग, कुष्ठ रोग से पीड़ित लोगों को बहुत ही हीन भावना से देखते थे। कुष्ठ रोग से पीड़ित होते ही व्यक्ति को घर से बाहर निकाल दिया जाता। इतना ही नहीं, एक तरह से समाज भी उनका बहिष्कार करता। कोई भी उनकी मदद या इलाज के लिए आगे नहीं आता। कुष्ठ रोग से पीड़ित लोगों को छूने से भी लोग कतराते थे। अकसर ऐसे लोग सड़कों या

फिर मंदिरों के पास निस्सहाय हालत में भीख मांगते नज़र आते। मणिमारन ने ऐसी ही लोगों की मदद का सराहनीय और साहसी काम शुरू किया।

'वर्ल्ड पीपुल सर्विस सेंटर' संस्था की सेवाओं के बारे में जब तमिलनाडु सरकार को पता चला, तब सरकार की ओर से ज़रूतरमंदों की मदद में सहायक सिद्ध होने के लिए मणिमारन को जगह उपलब्ध कराई गयी।

मणिमारन ने 'वर्ल्ड पीपुल सर्विस सेंटर' के ज़रिये जिस तरह से गरीब और ज़रूरतमंदों की सेवा की, उसकी वजह से उनकी ख्याति देश-भर में ही नहीं, बल्कि दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में भी होने लगी। उनके काम के बारे में जो भी सुनता, वह उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रुकता। अपनी इस अनुपम और बड़ी समाज-सेवा की वजह से मणिमारन को कई पुरस्कारों और सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है। इस बात में दो राय नहीं कि गरीबी से जूझते हुए भी जिस तरह से मणिमारन ने लोगों की सेवा की है, वह अपने आप में गज़ब की मिसाल है।

परिश्रम सफलता का एकमात्र रास्ता

> ***'सरलता और परिश्रम का मार्ग अपनाओ, जो सफलता का एक मात्र रास्ता है।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

डॉ. कलाम की इस उक्ति को शत प्रतिशत चरितार्थ किया है भारत की झुग्गी बस्ती में पले-बढ़े एक नौजवान ने। यह कहानी उसके करोड़पति बनने की एक ऐसी कहानी है, जो सच्ची है और लोगों के सामने आज भी प्रत्यक्ष मौजूद है। यही कहानी आज कइयों की प्रेरणा का स्रोत बनकर लोगों के सामने खड़ी है। यह सच्ची कहानी है, चेन्नई की एक झुग्गी बस्ती में पले-बढ़े सरथ बाबू की। सरथ ने झुग्गी में रहकर पढ़ाई की और आगे चलकर अपनी काबिलीयत से पहले बिट्स-पिलानी और फिर आईआईएम-अहमदाबाद में दाखिला पाया और उच्च स्तरीय शिक्षा हासिल की। लाखों की नौकरी ठुकरा कर कारोबार शुरू करने वाले सरथ ने जीवन में कई तकलीफों का सामना किया, कई चीज़ों का अभाव झेला है, लेकिन संघर्ष जारी रखा और कामयाबी की राह में अभावों को आड़े आने नहीं दिया। सरथ की कामयाबी की कहानी से ज्यादा-से-ज्यादा लोगों लोगों को प्रेरणा मिले, इस वजह से उन्हें कई किताबों में जगह दी गयी है। यह कहानी खूब सुनी और सुनायी जाने भी लगी। अपनी कामयाबी की वजह से कई सम्मान और पुरस्कार पाने वाले सरथ बाबू का जन्म चेन्नई के मडिपक्कम इलाके की एक झुग्गी बस्ती में हुआ। परिवार दलित

समुदाय से था और बहुत गरीब भी। परिवार में दो बड़ी बहनें और दो छोटे भाई थे। घर-परिवार चलाने की सारी ज़िम्मेदारी माँ पर थी। माँ दिन-रात मेहनत करती, जिसकी वजह से पांचों बच्चों का गुज़र-बसर होता। सरथ की माँ 10वीं तक पढ़ी हुई थी, इस वजह से उन्हें एक स्कूल में मिड डे मील योजना के तहत बच्चों का भोजन बनाने की नौकरी मिल गयी। इस नौकरी से उन्हें 30 रुपये महीना मिलते थे, लेकिन सिर्फ 30 रुपये पांच बच्चों की ज़रूरतें पूरी करने के लिए काफी नहीं थे। माँ सभी बच्चों को खूब पढ़ाना चाहती थी। उन्हें लगता था कि अगर बच्चे पढ़-लिख जाएं तो उन्हें नौकरियां मिल जाएंगी, फिर उन लोगों को तकलीफों का सामना नहीं करना पड़ेगा।

बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और दूसरी ज़रूरतों को पूरा करने के मकसद से माँ ने स्कूल में काम करने के अलावा सुबह में इडली बेचना भी शुरू किया। इतना ही नहीं, माँ ने शाम को भारत सरकार के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के तहत अशिक्षित लोगों को पढ़ाना भी शुरू किया। इस तरह तीन अलग-अलग समय, तीन अलग-अलग जगह, तीन अलग-अलग काम करते हुए सरथ की माँ ने अपने बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़रूरी रुपये कमाए। माँ की दिन-रात की मेहनत का सरथ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे पता था कि माँ चाहती है उनके सभी बच्चे अच्छा पढ़े ताकि उन्हें नौकरी मिले और गरीबी दूर हो जाए।

सरथ ने माँ को कभी निराश नहीं किया। स्कूल में हमेशा सरथ का प्रदर्शन दूसरे बच्चों से अच्छा होता। वह हमेशा कक्षा में प्रथम आता।

पढ़ाई के साथ-साथ सरथ ने कमाई में अपनी माँ की मदद भी की। वे भी सुबह अपनी माँ के साथ इडली बेचने जाते। चूंकि झुग्गी के लोग नाश्ते में इडली के लिए रुपये खर्च नहीं कर सकते थे, सरथ और उसकी माँ अमीर लोगों के मोहल्लों में जाकर इडली बेचा करते थे।

10वीं तक सरथ ने हर परीक्षा में शानदार प्रदर्शन किया। 10वीं पास करने के बाद जब कॉलेज में दाखिले की बारी आयी, तब 11वीं और 12वीं की फीस ने सरथ को उलझन में डाल दिया। 10वीं तक उन्हें स्पेशल फीस नहीं देनी पड़ी थी, लेकिन अब फीस ज्यादा हो गयी थी।

फीस का भुगतान करने के लिए सरथ ने एक तरकीब ढूंढ ली। गर्मी

की छुट्टियों में सरथ ने बुक-बाइंडिंग का काम करना शुरू किया। सरथ का काम इतना अच्छा था कि बहुत सारे ऑर्डर मिले। मांग के मुताबिक काम पूरा करने के लिए सरथ ने दूसरे बच्चों को अपने साथ काम पर लगा लिया और इसके बाद 11वीं और फिर 12वीं की पढ़ाई हुई।

चूंकि परिवार में कोई भी ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था और झुग्गी बस्ती में भी सरथ का मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं था। सरथ 12वीं के बाद की पढ़ाई के बारे में ज्यादा नहीं जानता था, उसके एक मित्र ने उसे पिलानी के 'बिड़ला प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान संस्थान' (बिट्स) के बारे में बताया और कहा कि अगर सरथ को बिट्स, पिलानी में दाखिला मिल जाता है तो उसे बड़ी नौकरी मिलेगी, जिससे गरीबी भी हमेशा के लिए दूर हो जाएगी। सरथ के दिमाग में यह बात जमकर बैठ गयी और उसने बिट्स, पिलानी में दाखिले की परीक्षा के लिए तैयारी शुरू कर दी। मेहनत और लगन का नतीजा था कि सरथ को बिट्स, पिलानी में दाखिला मिल गया।

झुग्गी बस्ती में रहने वाला एक गरीब लड़का पहली बार अपने शहर के बाहर, देश के सबसे मशहूर संस्थानों में एक, में पढ़ने जा रहा था। लेकिन यहां पर भी फीस ने सरथ के होश उड़ा दिये। उन्हें अपने पहले ही सेमेस्टर के लिए 42000 रुपये चाहिए थे। यह रकम पूरे परिवार के लिए बहुत भारी रकम थी। सरथ की आर्थिक रूप से मदद करने वाला भी कोई नहीं था। सरथ की एक बहन, जिसका विवाह हो चुका था, उसने अपने गहने गिरवी रखकर रुपयों का इंतज़ाम किया। इस तरह पहले सेमेस्टर की फीस जमा हो पायी।

दूसरे सेमेस्टर के आने तक माँ ने सरथ को एक सरकारी स्कॉलरशिप के बारे में बताया। सरथ ने तुरंत अर्जी भेज दी। उसे स्कॉलरशिप मिल भी गया। स्कॉलरशिप की पहली किस्त से सरथ ने अपनी बहन के गहने छुड़वाए। स्कॉलरशिप से सरथ सिर्फ टयूशन फीस ही भर पाता था। अपनी दूसरी ज़रूरतों- खाने-पीने, कपड़े और रोज़ इस्तेमाल होने वाले सामान खरीदने के लिए सरथ को कर्ज लेना ही पड़ा।

बिट्स, पिलानी में शुरुआती दिन आसान नहीं रहे। यहां पढ़ने आये ज्यादातर बच्चे अमीर या फिर मध्यमवर्गीय परिवारों से थे। शायद सरथ

अकेले ऐसे थे, जो झुग्गी बस्ती से आये थे। दूसरे साथियों का रहन-सहन काफी अलग था। उन लोगों की जीवन शैली भी अलग थी। वे लोग रुपये भी खुलकर खर्च करते थे। अंग्रेजी भी आसानी से और साफ़-साफ़ अच्छी बोलते थे। सरथ को न अंग्रेजी ठीक से बोलना आता था और न ही वे अपने दूसरे साथियों की तरह रुपये खर्च करने की स्थिति में थे।

लेकिन लोगों को देख-समझ कर सरथ ने बहुत कुछ सीख लिया। बिट्स, पिलानी में हर दिन उनके लिए एक सबक रहा। उन्होंने यहां बहुत कुछ सीखा। किताबों की बातों के अलावा सरथ ने तरह-तरह के लोगों, उनके विचारों, उनके कामकाज के तरीकों के बारे में जाना। बिट्स, पिलानी से डिग्री लेने के बाद सरथ को अपने शहर चेन्नई के 'पोलारिस सॉफ्टवेयर लैब्स' में नौकरी मिल गयी। पिलानी में पढ़ाई के दौरान कुछ साथियों ने उन्हें आईआईएम में दाखिला लेकर मैनेजमेंट की डिग्री लेने और मैनेजमेंट की कला सीखने की सलाह दी थी। कई साथी सरथ के मैनेजमेंट स्किल्स से प्रभावित थे।

नौकरी करते-करते ही सरथ ने आईआईएम में दाखिले के लिए कैट परीक्षा की तैयारी शुरू की। दो बार फेल होने के बाद तीसरे प्रयास में सरथ ने कैट परीक्षा में दाखिले के लिए ज़रूरी रैंक हासिल कर लिया। आईआईएम वह प्रतिष्ठित संस्थान है, जहां प्रबंधन की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा दी जाती है।

सरथ को आईआईएम अहमदाबाद में दाखिला मिला। आईआईएम अहमदाबाद में सरथ ने प्रबंधन के गुर और बड़े-बड़े सूत्र सीखे। चूंकि सरथ को खान-पान की बिक्री का अनुभव था, उन्हें मेस कमिटी यानी भोजनशाला समिति में भी जगह मिली। अपनी काबिलीयत की वजह से वे समिति के सचिव भी बने।

आईआईएम अहमदाबाद में पढ़ाई के दौरान ही उन्हें नौकरियों के कई प्रस्ताव मिले। तनख्वाह लाखों में थी। लेकिन सरथ ने नौकरी न करने का बड़ा फैसला किया।

सरथ, धीरूभाई अम्बानी और नारायण मूर्ति से बहुत प्रभावित थे और जीवन में कुछ बड़ा करना चाहते थे। अपनी माँ से प्रेरणा लेने वाले सरथ ने भोजन आपूर्ति करने का कारोबार करने का फैसला लिया। लाखों की नौकरी छोड़कर कारोबार करने के फैसले के पीछे कई कारण और इरादे थे।

सरथ का एक इरादा यह भी था कि वह उन लोगों की मदद करें, जिनके साथ वे पले-बढ़े थे। वह जानते थे कि झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों की तकलीफें क्या और कैसी होती हैं। वे इन तकलीफों को दूर करने की कोशिश करना चाहते थे। सरथ को यह भी लगता था कि अगर वह कारोबार करेंगे तो उन्हें दूसरों को नौकरी देने का मौका मिलेगा। नौकरी करते हुए वे ऐसा नहीं कर सकते थे।

लाखों की नौकरी छोड़कर कारोबार करने का फैसला साहसी कदम था। कुछ जोखिम भी था। लेकिन सरथ ने ठान लिया कि वे अपने सपने और इरादे कारोबार से ही पूरे करेंगे।

सरथ ने साल 2006 में अपनी कंपनी का पंजीकरण 'फूड किंग केटरिंग सर्विसेस प्राइवेट लिमिटेड' के नाम से कराया। एक लाख रुपये से इस कंपनी की शुरुआत हुई। पहले इस कंपनी ने दूसरी कंपनियों में चाय, कॉफी और अल्पाहार सप्लाई किया। धीरे-धीरे कारोबार बढ़ता गया। सरथ को नयी-नयी और बड़ी-बड़ी कंपनियों से ऑर्डर मिलने लगे। उन्होंने जिस संस्थाओं में पढ़ाई की यानी बिट्स-पिलानी और आईआईएम-अहमदाबाद से भी उन्हें भोजन और अल्पाहार उपलब्ध कराने का काम मिला।

इसके बाद सरथ ने भारत में कई जगह 'फूड किंग केटरिंग' नाम से अपने रेस्तरां खोले। अपने इन रेस्तराओं में लज़ीज़ पकवान वाजिब कीमत पर उपलब्ध करवा कर सरथ ने खूब नाम कमाया। एक लाख रुपये से शुरू किया गया भोजन और अल्पाहार का कारोबार बढ़कर करोड़ों का हो गया।

सफल कारोबारी बनने के बाद सरथ ने समाज-सेवा शुरू की। उन्होंने 2010 में 'हंगर फ्री इंडिया फाउंडेशन' की स्थापना की। इस संस्था का मकसद अगले 20 सालों में भारत को 'भुखमरी मुक्त' बनाना है। सरथ अपनी ओर से गरीबों और ज़रूरतमंदों की हर मुमकिन मदद भी कर रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि सरथ आज भी अपनी माँ से ही प्रेरणा लेते हैं। बचपन से लेकर आजतक वे माँ से ही प्रेरणा, उत्साह और विश्वास हासिल कर रहे हैं। सरथ जब भी कभी परेशान होते हैं या फिर किसी समस्या से दो-चार होते हैं, तब वह अपनी माँ को याद करते हैं। माँ के संघर्ष और त्याग की कहानी याद कर निराशा और नाउम्मीदी को दूर भगाते हैं।

सरथ को अब भी वो दिन याद हैं, जब उनकी माँ सिर्फ पानी पीकर सो जाती थी ताकि उनके पांचों बच्चे भरपेट खाना खा सकें। माँ ने बच्चों के लिए कई रातें सिर्फ पानी पीकर काटीं। बचपन में ही सरथ ने गौर किया था कि उनकी माँ पानी ज्यादा पीती हैं। शुरू में तो सरथ को लगा था कि माँ को पानी पीना बहुत पसंद है, इसलिए वे बहुत ज्यादा पानी पीती हैं। आगे चलकर उन्हें यह अहसास हुआ कि बच्चों की खातिर उन्होंने पानी पीकर काम चलाया ताकि बच्चों को भरपेट भोजन मिले और उनकी दूसरी ज़रूरतें पूरी हों। यही वजह है कि सरथ ने हमेशा माँ से प्रेरणा ली।

आपका नज़रिया सबसे अलग होना चाहिए

'बारिश के दौरान सारे पक्षी आश्रय की तलाश करते हैं, लेकिन बाज बादलों के ऊपर उड़कर बारिश को ही अवॉयड कर देता है। समस्याएं कॉमन है, लेकिन आपका एटीट्यूड इनमें अंतर पैदा करता है।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. कलाम की इस उक्ति में जिस बाज का जिक्र है, वह हमें असल जिंदगी में बहुत ही कम देखने को मिलता है। अगर हम इंसान की शक्ल में देखना चाहें तो ऐसी मिसाल और ऐसे जीवन की कहानी बहुत ही कम लोगों की देखने, सुनने और पढ़ने के लिए मिलती है, जैसी कि पश्चिम बंगाल के बहुत ही पिछड़े इलाके में रह रहे एक बच्चे की। जिसने अपने बचपन से ही एक ऐसा प्रयोग शुरू किया, जिसकी वजह से वह आज दुनिया-भर में मशहूर है। वैसे अब वह बच्चा बड़ा हो गया है, लेकिन उसके कामयाब प्रयोग की चर्चा हर तरफ है। इस मुश्किल और क्रांतिकारी प्रयोग की शुरुआत उसने अपने बचपन में ही की थी। उसके एक क्रांतिकारी विचार की वजह से दुनिया के कई मशहूर विद्वान, अर्थशास्त्री, शिक्षाविद और नीति-निर्धारक उसके प्रशंसक बन गए। उसने जो काम बचपन में किया, वह काम लोग ताउम्र नहीं कर पाते। पढ़-लिख तो सभी जाते हैं, लेकिन दूसरों को पढ़ाने-लिखाने का विचार हर एक को नहीं आता। इस शख्स की कोशिश और कामयाबी ने दुनिया को एक नया रास्ता दिखाया है। हम जिस शख्स की बात कर रहे हैं, उसका नाम

बाबर अली है। बाबर पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले का रहने वाला है। आज उसकी उम्र है 22 साल और वह पढ़ाई कर रहा है। महज 9 साल की छोटी-सी उम्र में उसने जिस विचार को अपना जीवन-लक्ष्य बनाया, उस विचार को साकार करने के दृढ-संकल्प ने उसे दुनिया-भर में शोहरत दिलाई। देश-विदेश में कई लोग उसके विचारों से प्रभावित और प्रेरित होकर आगे बढ़ने लगे हैं।

बाबर के प्रयोग की कहानी 2002 में शुरू हुई, जब वह 9 साल का था। साल 2002 में बाबर को स्कूल जाने के लिए 10 किलोमीटर का सफर तय करना पड़ता था। उसके गांव भाब्ता उत्तरपाड़ा में कोई स्कूल नहीं था। बाबर खूब पढ़-लिख कर बड़ा आदमी बनना चाहता था। पिता मोहम्मद नसीरुद्दीन ने अपने बेटे बाबर को निराश होने नहीं दिया। कृषि उत्पादों का छोटा-मोटा कारोबार करने वाले नसीरुद्दीन ने शुरू से ही बाबर की हौसला अफ़ज़ाई की। पढ़ने-लिखने के लिए बाबर को जो कुछ भी चाहिए था, वह मुहैया कराया। बाबर भी खूब मन लगाकर पढ़ता।

लेकिन एक दिन बाबर ने देखा कि उसके गांव के दूसरे बच्चे स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। गरीबी की वजह से उनके मां-बाप इन बच्चों को दूर दूसरे गांव और शहर में स्कूल नहीं भेज पा रहे थे। ये बच्चे दिन-भर, या तो घर-बाहर के काम करते हैं या फिर खेलते रहते। कुछ बच्चे तो गाय-भैंस चराते थे और कुछ खेत में काम करते थे। बाबर को अहसास हुआ कि उसकी खुद की बहन भी स्कूल नहीं जा पा रही है। उसकी बहन की तरह ही कई बच्चे स्कूल से वंचित थे। बाबर के मन में एक ख़याल आया। उसने सोचा क्यों न वह उन बच्चों को पढ़ाये, जो स्कूल नहीं जा पाते हैं। 9 साल के बाबर ने फैसला किया कि वह जो भी अपने स्कूल में सीखता है, उसे अपने गांव के बच्चों को भी सिखायेगा। फिर क्या था, 9 साल का बाबर अपने गांव के बच्चों का शिक्षक बन गया।

बाबर ने अपने मकान के पीछे आंगन में अमरूद के एक पेड़ के नीचे अपनी कक्षा शुरू की। उसकी बहन और कुछ बच्चे बाबर की इस कक्षा के पहले छात्र बने। जो कुछ भी वह स्कूल से पढ़कर-लिखकर आता, वही दूसरे बच्चों को सिखाता। जैसे उसके शिक्षक उससे करने को कहते, वह भी वही चीज़ें अपने गांव के बच्चों से करने को कहता। गांव

के बच्चों को पढ़ाई में मजा आने लगा। नन्हें बाबर को भी मास्टरी करने में खुशी मिलने लगी।

धीरे-धीरे छोटे मास्टर बाबर की कक्षा की खबर गांव-भर में फैल गयी और दूसरे बच्चे भी अब कक्षा में आने लगे।

अपने कक्षा के बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए 9 साल के बाबर को बहुत मेहनत करनी पड़ी। किसी तरह उसने ब्लैक बोर्ड का इंतज़ाम किया। वह अपने स्कूल से इस्तेमाल किए हुए चॉकपीस के टुकड़े लाता और अपनी कक्षा में बच्चों को पढ़ाने के लिए उन्हीं का इस्तेमाल करता। अखबार और उसके पन्नों के ज़रिये बाबर ने अपनी कक्षा के बच्चों को पढ़ना सिखाया। काम आसान नहीं था, लेकिन बाबर ने पूरी मेहनत की थी।

जब बाबर के लिए बच्चों को लिखवाने की ज़रूरत पड़ी, तब भी उसने अपना तेज़ दिमाग चलाया और नयी योजना बनाई। बाबर रद्दीवाले की दुकान पर जाता और किताबों के खाली पन्ने निकालकर ले लेता। वह इन्हीं पन्नों पर बच्चों को लिखवाता।

अब बाबर के कक्षा में सब कुछ था- ब्लैक बोर्ड, पढ़ने के लिए अखबार-किताबें, लिखने के लिए कागज़।

बच्चे भी खूब मन लगाकर पढ़ने लगे थे। बच्चों की दिलचस्पी इतनी ज्यादा बढ़ गयी थी कि सभी बेसब्री से बाबर का स्कूल से लौटने का इंतज़ार करते। बाबर भी स्कूल से आते ही बच्चों की कक्षा में चला जाता और मास्टर बनकर उन्हें पढ़ाता-लिखाता।

एक दिन जब बाबर के पिता ने देखा कि बाबर का ध्यान अब मास्टरी पर ज्यादा हो चला, तो उन्होंने कक्षा बंद करने और अपने स्कूल की पढ़ाई-लिखाई पर पूरा ध्यान देने की सलाह दी। बाबर ने अपने पिता को भरोसा दिलाया कि वह अपनी मास्टरी का उसकी पढ़ाई पर कोई असर पड़ने नहीं देगा। बाबर के निर्णय और दृढ़ संकल्प को देखकर पिता भी बहुत प्रभावित हुए।

बाबर के मास्टरी की चर्चा अब गांव-गांव होने लगी थी। जब बाबर के शिक्षकों को उसकी कक्षा और मास्टरी का पता चला, तो उन्होंने भी उसकी पीठ थपथपाई। दिलचस्प बात तो यह थी कि कई गांववाले अब अपने बच्चों को बाबर की कक्षा में भेजने लगे थे। साल-दर साल बाबर

की कक्षा में बच्चों की संख्या बढ़ती ही चली गयी। बाबर ने अपनी कक्षा और बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नये-नये तरीक़े अपनाये। बाबर ने कक्षा चलाने के मकसद से बच्चों के मां-बाप से चावल लिए और उन्हें बेचकर पढ़ाने-लिखाने के लिए बच्चों की किताबें खरीदी। चूंकि गांववाले और किसान रुपये दे नहीं सकते थे, बाबर ने सोचा कि किसान चावल दे सकते हैं और उसे बेच कर ही वह रुपयों का इंतज़ाम कर लेगा। यह तरकीब भी खूब चली।

थोड़े-ही समय में छोटा-सा ही सही, पर मास्टर बाबर की एक असरदार छोटी-सी कक्षा ने स्कूल का रूप इख्तियार कर लिया था।

बाबर ने इस सायंकालीन स्कूल की औपचारिक शुरुआत करनी चाही। गांववालों और उसके पिता ने इसमें उसकी खूब मदद की। जब बाबर छठी कक्षा में था, तब गांव के प्रधान ने बाबर के कक्षा की मदद के लिए ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर से किताबें दिलवाने की सिफारिश की थी।

धीरे-धीरे बाबर को प्रधान की तरह ही दूसरे मददगार मिलते गए। गांव की एक महिला, जिसे बच्चे तुलु मासी बुलाते थे, ने खुद आगे आकर स्कूल के लिए घंटी बजाने का कार्य संभाल लिया। पिता नसीरुद्दीन ने स्कूल की औपचारिक शुरुआत और उद्घाटन के लिए 600 रुपये दिए।

उद्घाटन के लिए माइक किराये पर लिया गया। स्कूल को सजाया गया। सजाने में माँ की साड़ी भी काम आयी। रिबन भी काटा गया। सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए। गीत गाये गए, नृत्य भी हुआ। स्कूल का नाम 'आनंद शिक्षा निकेतन' रखा गया।

यानी बाबर अब सिर्फ एक मास्टर या शिक्षक ही नहीं था, वह एक स्कूल का प्रधानाध्यापक बन गया।

जब अखबारों में बाबर के स्कूल की खबर छपी तो उसे पढ़कर विश्वविख्यात अर्थशास्त्री और नोबल पुरस्कार से सम्मानित अमर्त्य सेन ने बाबर को 'शान्ति-निकेतन' बुलाया। बाबर ने 'शांति-निकेतन' में पश्चिम बंगाल के पूर्व वित्त मंत्रियों, जाने-माने अर्थशास्त्रियों और दूसरे विद्वानों के सामने एक घंटे तक अपना भाषण दिया। वहां मौजूद हर कोई बाबर के विचारों से बहुत प्रभावित हुआ। उस समय बाबर सिर्फ 8वीं कक्षा का छात्र था।

बाबर और उसके स्कूल की चर्चा अब राज्य की राजधानी कोलकाता में भी होने लगी। बाबर कोलकाता भी जाता और आईएएस, आईपीएस और दूसरे अधिकारियों से मिलता और अपने स्कूल के लिए अनुदान मांगता।

2008 में जब बाबर 10वीं कक्षा में आया, तब उसे बहुत मेहनत करनी पड़ी। वह सुबह जल्दी उठ जाता और पढ़ाई करता। फिर स्कूल जाता, वहां भी मन लगाकर पढ़ता-लिखता। उसके बाद घर जाकर अपने स्कूल में बच्चों को पढ़ाता-लिखाता। दिन-रात एक करने की वजह से ही 2008 में बाबर ने प्रथम श्रेणी में 10वीं की परीक्षा पास कर ली।

जिस तरह बाबर ने पूरी मेहनत और लगन से स्कूल को चलाया और आगे बढ़ाया; गांव के बच्चों को शिक्षित किया, उसे देखकर दुनिया-भर में भी कई लोग और संस्थाएं प्रभावित हुई।

2009 में 'डेमियन ग्रामेटिक्स' ने बीबीसी की श्रृंखला 'हंगर फॉर लर्निंग' या शिक्षा की भूख पर अपनी पहली रिपोर्ट में बाबर अली से मुलाकात की, जिसकी शिक्षा परियोजना सैकड़ों गरीब बच्चों का जीवन बदल रही थी। दुनिया भर में मशहूर समाचार एजेंसी- बीबीसी ने बाबर को 'दुनिया-भर का छोटा हेड मास्टर' घोषित किया। बाबर की कहानी को दुनिया-भर में प्रसारित किया। भारत के अंग्रेजी समाचार चैनल सीएनएन-आईबीएन ने 'रियल हीरो' के खिताब से बाबर को नवाज़ा। दूसरे लोगों, दूसरी संस्थाओं ने भी बाबर का सम्मान किया।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि बाबर को बस सम्मान-ही-सम्मान मिला और हर किसी ने उसकी मदद की। बाबर के मुताबिक, कई लोगों ने उसके प्रयास पर पानी फेरने की कोशिश की। कई लोग उसकी तरक्की और कामयाबी से जलते थे, उसकी शोहरत से परेशान थे।

उसे स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रेरणा मिलती हैं। जब कभी वह किसी समस्या से घिरता है या फिर कोई चुनौती उसके सामने आती है, वह स्वामी विवेकानंद के विचारों और उनकी बताई बातों को याद करता है और उन्हीं से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ता है।

स्वामी विवेकानंद की बात 'एक विचार लो, उस विचार को अपना जीवन बना लो -उसके बारे में सोचो उसके सपने देखो, उस विचार को जियो। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, नसों, शरीर के हर हिस्से को उस

विचार में डूब जाने दो और बाकी सभी विचार को किनारे रख दो, यही सफल होने का तरीका है।' को बाबर ने अपने में आत्मसात किया है और कामयाबी हासिल की।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाबर की पढ़ाई अभी जारी है और वह आईएएस अधिकारी बनना चाहता है। बाबर का स्कूल अब बहुत बड़ा हो गया है और उसमें 500 से ज्यादा बच्चों ने दाखिला लिया है। 22 साल का बाबर अब चाहता है कि भारत के दूसरे गांवों में पढ़े-लिखे लोग खासकर बच्चे दूसरों को पढ़ाये-लिखाये ताकि सभी साक्षर बने और देश खूब तरक्की करे।

आने वाली पीढ़ी का भविष्य उज्जवल हो

> ***'आइये हम अपने आज का बलिदान कर दें ताकि हमारे बच्चों का कल बेहतर हो सके।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

डॉ. कलाम की इस उक्ति पर अपने जीवन को उतारना हर किसी के वश में नहीं है। भला आज ऐसे कितने लोग होंगे, जो अपना सब कुछ दूसरों के जीवन को संवारने में लगा दें। हम यहां इस उक्ति पर खरे उतरने वाले उन मुट्ठी भर लोगों में से ही एक की बात करने जा रहे हैं।

भारत में आज भी कई बच्चे ऐसे हैं, जिनके पास रहने को घर नहीं है। इनका जीवन सड़कों पर या फिर फुटपाथों पर बीतता है। अकसर ये बच्चे शोषण का शिकार होते हैं। रोटी-कपड़े के लिए दर-दर भटकते हैं। फुटपाथी बच्चों के अलावा झुग्गी-बस्तियों में रहने वाले बच्चों की भी हालत काफी खराब है। गरीबी की वजह से ये न स्कूल जा पाते हैं, न ही पढ़-लिख पाते हैं। ऐसे ही गरीब और ज़रूरतमंद बच्चों की मदद करने, उन्हें पढ़ा-लिखाकर अच्छे काम करने लायक बनाने के मकसद से एक शख्स ने जो योजना बनाई, वह आज देश-भर में सरकारों के लिए भी आदर्श बनी हुई है। कई गैर-सरकारी संगठन भी इसी योजना के जरिये गरीब बच्चों को शिक्षा देकर उन्हें काबिल बना रहे हैं। यह एक ऐसी योजना है, जिसमें बच्चों को खेल-खेल में ही शिक्षा दी जाती है। यानी मनोरंजन और शिक्षा साथ-साथ। इस योजना को देशभर में अमल में लाने के मकसद से इसके योजनाकार ने बड़ी ही मोटी और तगड़ी रकम वाली अपनी नौकरी छोड़ दी और गरीब बच्चों के सर्वांगीण विकास में समर्पित

हो गए। हम जिस शख्स की बात कर रहे हैं, उनका नाम है मैथ्यू स्पेसी। आज वह अपने इसी कार्यक्रम की वजह से दुनिया-भर में जाने जाने लगे हैं और अपने नाम कई सम्मान और पुरस्कार हासिल कर चुके हैं।

मैथ्यू स्पेसी 1986 में पहली बार भारत आये थे। कोलकाता में उन्होंने 'दि सिस्टर्स ऑफ़ चैरिटी' के लिए बतौर स्वयंसेवी काम किया। तभी से उनका मन समाज-सेवा में लग गया था। ग्रेजुएशन की पढ़ाई पूरी करने के बाद मैथ्यू को नौकरी मिल गयी। उन्होंने यूनाइटेड किंगडम में कई महत्त्वपूर्ण पदों पर काम किया। उनकी प्रतिभा और दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए उनकी कंपनी ने उन्हें भारत भेजा। वह 'कॉक्स एंड किंग्स' नाम की कंपनी के मुख्य कार्य अधिकारी यांनी सीओओ बनकर भारत आये। उस समय मैथ्यू की उम्र महज़ 29 साल थी। यानी वे एक युवा और जोश से भरे अधिकारी थे। उन दिनों ब्रिटिश कंपनी 'कॉक्स एंड किंग्स' भारत में भी सबसे बड़ी ट्रैवल एजेंसी थी। युवा अवस्था में ही मैथ्यू को बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गयी थी, जिसे उन्होंने बखूबी निभाया। लेकिन मैथ्यू की ज़िंदगी में एक बहुत बड़ा बदलाव उस समय आया, जब वह भारत की रग्बी टीम के लिए खेला करते थे। मैथ्यू को खेल में बेहद दिलचस्पी थी और रग्बी उनका पसंदीदा खेल था। दिलचस्पी इतनी ज्यादा थी कि मैथ्यू ने अपने कौशल के बल पर रग्बी की नेशनल टीम में जगह बना ली। मैथ्यू अन्य खिलाड़ियों के साथ मुंबई के मशहूर फैशन स्ट्रीट के सामने वाले मैदान में अभ्यास किया करते थे। अभ्यास कर रहे खिलाड़ियों का खेल देखने के लिए आसपास के बच्चे वहां जमा हो जाते। इन बच्चों में ज्यादातर फुटपाथी बच्चे होते, जिनके रहने को कोई स्थाई ठिकाना या पक्का घर नहीं होता। इनकी ज़िंदगी फुटपाथों पर ही गुजरती। ये फुटपाथी बच्चे हर दिन रग्बी टीम का अभ्यास देखने आते। उन्हें खिलाड़ियों का खेल देखने में बहुत मज़ा आता और वे बच्चे अकसर खिलाड़ियों की हौसला अफ़ज़ाई तालियां बजाकर या सीटियां बजाकर करते। बच्चों का जोश देखकर खिलाड़ियों का भी उत्साह बढ़ता। मैथ्यू भी इन बच्चों के उत्साह से अछूते नहीं थे। बच्चों का जोश देखकर मैथ्यू उन्हें अपने साथ खेलने के लिए बुलाने लगे। धीरे-धीरे बच्चे भी अब रग्बी खेलने लगे थे। बच्चों को रग्बी खेलने में बहुत मज़ा आने लगा था। वे समय पर मैदान आ जाते और खूब रग्बी खेलते। बच्चे मैथ्यू को बहुत पसंद करने लगे।

वजह साफ़ थी-मैथ्यू ने बच्चों को रग्बी खेलने का मौका दिया दिया था। वो अब सिर्फ दर्शक नहीं रह गए थे, वे भी खिलाड़ी बन गए थे। सड़कों और फुटपाथों पर ज़िन्दगी गुज़र-बसर करने वालों को हंसने-खेलने का यह सुनहरा मौका मिला था।

इसी सबके बीच मैथ्यू ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प बात गौर की। मैथ्यू ने देखा कि रग्बी खेलने की शुरुआत करने के बाद बच्चों के बर्ताव में एक सकारात्मक परिवर्तन आया था। बच्चों में अब अनुशासन था। बच्चे अब एक दूसरे से अच्छी तरह बर्ताव कर रहे थे। पहले आपस में बहुत गाली-गलौच होती थी। बर्ताव भी अजीब-सा और एक किस्म से गन्दा था। लेकिन धीरे-धीरे खेल के मैदान में खेलते-खेलते वे बदलते जा रहे थे। वे नेशनल टीम के खिलाड़ियों से बहुत कुछ अच्छा सीख चुके थे। इस बदलाव ने मैथ्यू के मन में एक क्रांतिकारी विचार को जन्म दिया।

मैथ्यू ने सप्ताह के अंत में छुट्टियों के दिन एक बस किराये पर लेना शुरू किया। इस बस में वे बहुत सारे खिलौने, मिठाइयां और दूसरे ऐसे सामान लेते, जो बच्चों को बहुत पसंद आते। इस बस को लेकर मैथ्यू धारावी और दूसरी झुग्गी बस्तियों में जाते और बच्चों में यह सामान बांटते। मैथ्यू कुछ गरीब और फुटपाथी बच्चों को अपनी बस में पिकनिक पर भी ले जाते। बच्चे भी पिकनिक का खूब मज़ा लेते।

एक वक्त की रोटी, अच्छे कपड़ों, खिलौनों के लिए तरसते बच्चों के लिए मैथ्यू की बस का बेसब्री से इंतज़ार रहता। इस बस-सेवा की वजह से मैथ्यू गरीब और फुटपाथी बच्चों के हीरो बन गए थे। यही बस आगे चलकर 'मैजिक बस' नाम के बड़े महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम का आधार बनी।

लेकिन कुछ दिनों के बाद मैथ्यू को अहसास हुआ कि हफ्ते में जब वह बस लेकर बच्चों के बीच जाते हैं, तभी बच्चे खुश रहते हैं। बाकी सारे दिन उनकी ज़िंदगी एक-सी होती है। रोटी के लिए उन्हें दर-दर भटकना पड़ता है। रात में सोने के लिए उनके पास कोई घर या मकान नहीं होता। खेलने के लिए खिलौने नहीं होते। गुज़र-बसर सड़क या फुटपाथ पर ही करनी पड़ती है। कई बार तो ये बच्चे शरारती तत्वों और बदमाशों के हाथों शोषण का शिकार भी होते हैं।

सो मैथ्यू ने ठान लिया कि कुछ ऐसा किया जाए जिससे इन बच्चों की समस्या का स्थाई समाधान निकले। ये बच्चे भी पढ़-लिखकर आगे

बढ़ें। अच्छी नौकरी करें, अच्छे घर में रहें। अलग-अलग कॉर्पोरेट कंपनियों में अपने दोस्तों की मदद से मैथ्यू ने फुटपाथ और झुग्गी बस्तियों में रहने वाले कुछ बच्चों को इन कंपनियों के दफ्तरों में नौकरियां दिलवाई। लेकिन इन बच्चों में अनुशासन, शिष्टाचार और कार्य-कौशल की कमी की वजह से वे ज्यादा दिन तक इन कंपनियों में नहीं टिक पाये।

इस कटु अनुभव ने मैथ्यू को एक नया पाठ पढ़ाया। मैथ्यू ने अब नए सिरे से फुटपाथ और झुग्गी बस्तियों में रहने वाले बच्चों के विकास और उत्थान के लिए काम करने की ठान ली। मैथ्यू ने अपने पुराने अनुभव के आधार पर बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए खेल-कूद का सहारा लेने का फैसला लिया। 1999 में मैथ्यू ने अपने एनजीओ 'मैजिक बस' की औपचारिक रूप से शुरुआत की।

2001 में मैथ्यू ने बच्चों की सेवा के अपने काम को तेज़ी से आगे बढ़ाने के लिए अपनी नौकरी छोड़ दी और अपनी परियोजना 'मैजिक बस' पर पूरा ध्यान देना शुरू किया।

मैथ्यू ने सबसे पहले यह सुनिश्चित किया कि सरकारी स्कूलों में दाखिला लेने वाले बच्चे हर हाल में स्कूल जाएं और किसी सूरतेहाल में अपनी पढ़ाई बीच में न छोड़ें। इसके लिए मैथ्यू ने सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम में खेल-कूद को काफी तवज्जो दी। मैथ्यू ने बच्चों के लिए 'शिक्षा-नेतृत्व-कमाई' की कड़ी बनाने वाले पाठ्यक्रम को तैयार किया। मैथ्यू का नारा था 'एक समय पर एक काम'। बच्चों के बेहतर जीवन के लिए मैथ्यू ने उनमें शिक्षा के प्रति जागरूकता लाने के अलावा उन्हें हुनर सीखने का भी मौका प्रदान किया। कोशिश थी कि बच्चे इतना पढ़-लिख और सीख लें कि उन्हें एक अच्छी नौकरी मिल जाए और वो पूरी तरह आत्म-निर्भर बने ताकि उन्हें समाज में सम्मान मिले।

कोशिश कामयाब हुई। मैथ्यू का बनाया पाठ्यक्रम अब स्कूलों के लिए कामयाबी का नया मंत्र था।

मैजिक बस के कार्यक्रमों की वजह से बच्चों की स्कूलों में उपस्थिति 80 प्रतिशत से बढ़कर 95.7 प्रतिशत तक हो गई। 98.95 प्रतिशत प्रौढ़ लड़कियां स्कूल की पढ़ाई कर रहीं हैं।

'मैजिक बस' कार्यक्रम की वजह से ही एक समय फुटपाथ और झुग्गियों में रहने वाले हज़ारों बच्चे आज बड़े होकर अच्छी-अच्छी नौकरियां कर रहे हैं।

'मैजिक बस' कार्यक्रम देश के 19 राज्यों में लागू है और इससे अब तक करीब 3 लाख बच्चे लाभ पा चुके हैं। 'मैजिक बस' की कामयाबी में बड़ा हाथ उन स्वयंसेवी युवकों का है, जो लगातार मेहनत करते रहते हैं। देश में आज कई राज्यों में सरकारें गरीब और जरूरतमंद बच्चों की मदद के लिए मैजिक बस का ही सहारा ले रही है।

'मैजिक बस' कार्यक्रम की मदद करने के लिए कई बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियां आगे आयी हैं। हाल ही में मैजिक बस को 'लारेंस विश्व खेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। 13 वर्ष पहले शुरू किए गए मैजिक बस कार्यक्रम का लक्ष्य 2016 तक 10 लाख बच्चों को अपनी छत्रछाया में लेना है। लारेंस फाउंडेशन शुरू ही से मैजिक बस को प्रायोजित कर रहा है।

ज़िंदगी और समय, सबसे बड़े अध्यापक

> ***'ज़िंदगी और समय, विश्व के दो सबसे बड़े अध्यापक हैं। ज़िंदगी हमें समय का सही उपयोग करना सिखाती है, जबकि समय हमें ज़िंदगी की उपयोगिता बताता है।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

समय, सफलता की कुंजी है। समय का चक्र अपनी गति से चल रहा है या यूं कहें कि भाग रहा है। अकसर इधर-उधर कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी से सुनने को मिलता है कि क्या करें समय ही नहीं मिलता। वास्तव में हम निरंतर गतिमान समय के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल ही नहीं पाते और पिछड़ जाते हैं। समय जैसी मूल्यवान संपदा का भंडार होते हुए भी हम हमेशा उसकी कमी का रोना रोते रहते हैं, क्योंकि हम इस अमूल्य समय को बिना सोचे समझे खर्च कर देते हैं।

विकास की राह में समय की बरबादी ही सबसे बड़ा शत्रु है। एक बार हाथ से निकला हुआ समय कभी वापस नहीं आता है। हमारा बहुमूल्य वर्तमान क्रमशः भूत बन जाता है, जो कभी वापस नहीं आता। अगर उसी समय में अपनी संतुष्टि वाला काम किया जाए तो कई बार दूसरों को भी रास्ता दिखा जाता है। जैसे अमीरा शाह ने छोटी सी उम्र में कई लोगों को दिखाया। अमीरा की बात करने से पहले उनके पिता डॉक्टर सुशील शाह को जानते हैं, जिन्होंने 1980 में मेडिकल कॉलेज से ग्रेजुएशन किया, लेकिन वे देश की अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवाओं से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने तय कर लिया कि वे अपने मरीजों का इलाज नई तकनीक के सहारे करेंगे, जो

बाजार में उपलब्ध होंगी। इसके लिए उन्होंने अमेरिका का रुख किया ताकि वहां जाकर फैलोशिप के साथ विभिन्न तरीकों और प्रक्रियाओं को पढ़ाई के जरिये समझ सकें। जब वे वापस लौटे तो उन्होंने पैथोलॉजी लैबोरेटरी की स्थापना की और उसका नाम रखा 'डॉ. सुशील शाह लैबोरेटरी'। यह काम उन्होंने अपने गैराज से शुरू किया और रसोईघर को उन्होंने क्लिनिक के तौर पर इस्तेमाल किया।

आज के दौर में हम भले ही थायराइड परीक्षण, फर्टिलिटी परीक्षण और विभिन्न हार्मोनल परीक्षण के बारे में जान गए हों, लेकिन 80 के दशक में लोगों को इनकी कम जानकारी थी। वे पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इस तरह के परीक्षण को शुरू किया। उन्होंने इस काम की शुरुआत बहुत ही छोटे स्तर से की और अपना ध्यान अपनी सेवाओं को देने में लगाया। आज उनके इस काम को उनकी 35 साल की बेटी अमीरा संभाल रही है। वैश्विक स्तर पर पहचान बना चुकी उनकी कंपनी, जो एक पैथोलॉजी लैबोरेटरी से शुरू हुई थी, आज 2000 करोड़ रुपये की कंपनी बन चुकी है। अमीरा जब 21 साल की थी; तो उसे नहीं पता था कि उनको आगे जिंदगी कैसे बितानी है, वह अनुभवहीन थीं।

अमीरा ने न्यूयॉर्क में 'गोल्डमैन सॉक्स' के लिए काम किया। हालांकि यह प्रतिष्ठित जगह थी, उनके दोस्त भी उनकी इस उपलब्धि से ईर्ष्या करने लगे थे, लेकिन उनको इस काम में मजा नहीं आ रहा था। हालांकि न्यूयॉर्क में रहना उनको पसंद आ रहा था, लेकिन वित्तीय सेवाओं वाला यह क्षेत्र शायद उनके लिए था ही नहीं। इसलिए उन्होंने बिना सोचे-समझे अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद उन्होंने एक स्टार्टअप पर काम शुरू कर दिया, जिसमें सिर्फ 5 कर्मचारी थे। यहां उन्होंने कई तरह के अनुभव हासिल किए। धीरे-धीरे अमीरा का रुझान कुछ सार्थक काम करने के लिए होने लगा। इस सबके बावजूद अमीरा संतुष्ट नहीं थी, तब उन्होंने अपने पिता से सलाह लेने का फैसला लिया।

जब अमीरा ने अपने पिता से बात की, तो उन्होंने उनसे एक सवाल किया कि वह क्या बनना चाहती हैं एक अच्छा प्रबंधक या फिर एक उद्यमी। जिसका अमीरा के पास कोई जवाब नहीं था, क्योंकि वह नहीं जानती थी दोनों में अंतर क्या होता है। इसके बाद उनके पिता ने उनको

समझाया कि अगर उनको बढ़िया कैरियर, प्रतिष्ठा और पैसा चाहिए, तो उनको अमेरिका में ही रहना चाहिए; क्योंकि वहां पर इन चीजों के लिए बेहतर मौके हैं, लेकिन अगर वो अपनी छाप दूसरों पर छोड़ना चाहती हैं और उनका दिल व दिमाग दोनों कंपनी के लिए धड़कते हैं जहां पर सिर्फ काम ही महत्त्व रखता है, तो उनको उद्यमी बनना चाहिए। इसके लिए उनको भारत लौट आना चाहिए। अमीरा ने अपने पिता की बात सुनी और उद्यमी बनने की चाहत में साल 2001 में भारत लौट आई।

अमीरा भारत तो लौट आई थी, लेकिन उनको यह फैसला विवादित लगने लगा था। क्योंकि उस वक्त भारत को उभरता हुआ बाजार नहीं माना जा रहा था, उद्यमिता ना के बराबर थी, यह उनके लिए सांस्कृतिक धक्का भी था। क्योंकि उन्होंने कभी भी भारत में काम नहीं किया था। उनके पिता की पैथोलॉजी लैबोरेटरी में होने वाले कोई भी फैसले उनके पिता लेते या फिर उनका कोई विश्वासपात्र लेता था। सभी चीजें केंद्रित थीं। जहां पर कोई भी कंप्यूटर, ईमेल सिस्टम जैसी कई चीजें नहीं थीं। यहां पर सिर्फ एक आदमी बैठता, जो फोन पर सभी के जवाब देता था। तभी अमीरा को लग गया था कि इस तरह विस्तार नहीं हो सकता। कोई एक व्यक्ति ही अकेले सारे फैसले नहीं ले सकता। तब वहां कोई व्यवस्था नहीं थी और सब कुछ मनमाने तरीके से चल रहा था।

डॉ. सुशील शाह लैबोरेटरी को दक्षिण मुंबई में 1500 वर्ग फीट में चलाया जा रहा था। जहां पर उसके तय ग्राहक थे और उसकी अपनी एक प्रतिष्ठा भी थी। दक्षिण मुंबई में यह अकेली लैबोरेटरी थी। अमीरा के पिता चाहते थे कि पूरे भारत में वह अपनी लैबोरेटरी की एक श्रृंखला बनाएं, लेकिन इसको जमीनी स्तर पर कैसे किया जाए, नहीं जानते थे। तब अमीरा ने इस काम में बदलाव लाने का फैसला लिया। सबसे पहले उन्होंने तय किया कि वह अपने पिता के इस कारोबार को कंपनी के ढर्रे पर चलाएंगी। इसके लिए उन्होंने नई प्रतिभा, नये विभाग और डिजिटल संचार के साधनों का इस्तेमाल के बारे में सोचा। हालांकि यह सब अमीरा के लिए नया था। लेकिन इन सब बदलाव के लिए उनके पिता की सहमति जरूरी थी। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले ग्राहक सेवा केंद्र में काम करना शुरू किया, जहां पर उन्होंने मरीजों की दिक्कतों को समझा, हर दिन अलग-अलग मुद्दों का

सामना करना सीखा। इसके साथ-साथ उन्होंने धीरे-धीरे अपने विचारों को हकीकत में बदलने का काम भी जारी रखा क्योंकि एक ओर वह जमीनी हकीकत से रूबरू हो रही थीं, तो दूसरी ओर उन जरूरतों को पूरा करने के रास्ते भी तलाश रही थीं। वक्त के साथ अमीरा अपने काम को लेकर काफी गंभीर हो गई और उन्होंने तय किया कि विकास के लिए अब गंभीरता से प्रयास करने होंगे। दक्षिण मुंबई में 25 सालों के दौरान उनके पिता ने लैबोरेटरी के क्षेत्र में अपनी एक प्रतिष्ठा बनाई थी। इन लोगों को मालूम था कि शहर में और भी दूसरी कई जानी मानी लैबोरेटरी हैं, इसलिए उन्होंने सबसे पहले अपनी लैबोरेटरी 'डॉ. सुशील शाह लैबोरेटरी' का नाम बदल कर 'मेट्रोपोलिस' रखा। क्योंकि कई बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस क्षेत्र में उतर गई थीं। जिसके बाद अमीरा की कंपनी ने ऐसी लैबोरेटरी की तलाश शुरू कर दी, जो इनके साथ काम कर सके और वह उसे मेट्रोपोलिस के नाम से चलाएं। साल 2004 में उनकी खोज पूरी हुई और सबसे पहले उन्होंने चेन्नई की एक लैबोरेटरी के साथ ऐसा समझौता किया। डॉ. श्रीनिवासन उनके तय किए मानदंड पर सही बैठते थे। उसके बाद सिलसिला चल निकला और आज मेट्रोपोलिस ने 25 ऐसी भागीदारियां की हैं।

मेट्रोपोलिस ने सबसे पहले साल 2006 में निवेश प्राप्त किया। यह निवेश किया था आईसीआईसीआई ने। इसके बाद साल 2010 में अमेरिकी कंपनियों ने मेट्रोपोलिस में बड़ा निवेश किया। अमीरा के मुताबिक उनको पैसे की सख्त जरूरत थी, क्योंकि उनको दूसरी कंपनियों के शेयरों का अधिग्रहण करना था जो कर्ज जुटा कर संभव नहीं था। अमीरा के मुताबिक वह किसी कारोबारी परिवार से ताल्लुक नहीं रखती थी, जिनके पास निवेश के लिए खूब पैसा हो। इन लोगों ने अपने मुनाफे को निवेश में लगाया ताकि उनके लैबोरेटरी का कारोबार यूं ही आगे बढ़ता रहे। यह आज के दौर में स्टार्टअप की तरह नहीं था कि कंपनी की आय 2 करोड़ की है, जबकि वह खर्च 100 करोड़ रुपये कर रही है। इन लोगों ने सिर्फ अपने पैसे का ही इस्तेमाल किया। मेट्रोपोलिस ने हाल ही में वारबर्ग पिंक्स में हिस्सेदारी हासिल की है।

दरअसल मेट्रोपोलिस की अभूतपूर्व वृद्धि की नींव साल 2006 से पहले ही पड़ गई थी। साल 2002 में कंपनी की आय सिर्फ एक लैब से

7 करोड़ रुपये थी, उस वक्त उस लैब में 40 से 50 लोग काम करते थे, लेकिन पिछले 13 सालों के सफर के दौरान मेट्रोपोलिस के 800 सेंटर और 125 लैबोरेटरी सात देशों में हैं। कंपनी की वैल्यू 2000 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा की हो गई है जबकि कंपनी की सालाना आय 500 करोड़ रुपये है। आज मेट्रोपोलिस का कारोबार मुंबई, चेन्नई और केरल में मुख्य रूप से चल रहा है। इसके अलावा श्रीलंका में साल 2005 से, मध्य पूर्व एशिया में साल 2006 से और अफ्रीका में साल 2007 से अपने काम को अंजाम दे रहे हैं।

अमीरा कहती हैं कि चूंकि वह शुरू से कम्पनी के साथ हैं, इसलिए इसके विकास के साथ-ही-साथ उनका भी विकास हुआ है। उनके लीडरशिप स्टाइल को एन रांड की पुस्तक 'एटलस श्रग्ड' ने काफी प्रेरित किया है। उनकी सभी पुस्तकों में मानव क्षमता के संदेश को बेहद दिलचस्प ढंग से चित्रित किया गया है। 'यह संदेश बचपन से ही मुझे प्रेरित करता रहा है और मुझे इंसानी क्षमताओं का अहसास कराता रहा है।'

अमीरा के मुताबिक मेट्रोपोलिस के साथ काम करके उनको कई तरह के अनुभव हासिल हुए हैं क्योंकि जितने भी देशों में उनका कारोबार है, वहां अलग और कुछ हट कर काम करना होता है। श्रीलंका बड़ी आरामदायक जगह है, यहां पर भारत की तरह कई सार्वजनिक छुट्टियां होती हैं लेकिन मध्य पूर्व का बाजार छवि पर ध्यान केंद्रित रखता है और वहां पर काम करने का माहौल कॉरपोरेट जगत से मिलता-जुलता है जबकि दक्षिण अफ्रीका का माहौल काफी पेशेवर है। वहां पर लोग सिर्फ 9-5 के बीच काम करते हैं। लगातार सफलता की सीढ़ियां चढ़ता मेट्रोपोलिस को कई निराशाजनक विफलताओं का भी सामना करना पड़ा है। अमीरा के मुताबिक ज्यादातर साझेदारी सफल हुई हैं, जबकि कुछ में इनको विफलता भी मिली है। इन्हीं विफलताओं को देखते हुए वह अपने काम में बदलाव लाती रहती हैं ताकि दोबारा उस स्थिति का सामना ना करना पड़े।

नई पीढ़ी के सी.ई.ओ. के कौशल एवं गुणों के बारे में बात करते हुए अमीरा कहती हैं- 'नई पीढ़ी के सी.ई.ओ. को उच्च स्तर का दृढ़निश्चयी होना चाहिए। आज के अत्यधिक प्रतियोगिता तथा जटिलताओं के युग में तो यह खासतौर पर जरूरी है। आजकल के लीडर महज रुझानों का

पालन करने का जोखिम नहीं उठा सकते, बल्कि उन्हें खुद को भीड़ से अलग दर्शाने के काबिल होना पड़ेगा। उन्हें कुछ नया करने से घबराना नहीं चाहिए। आगे बढ़ने तथा अपना नाम स्थापित करने के लिए उन्हें सबसे आगे खड़े होकर नेतृत्व करना होगा। साथ ही उन्हें मजबूत टीम तैयार करने तथा उसके सदस्यों को प्रोत्साहित करने के काबिल भी बनना होगा। एक और खास बात कि उन्हें खुद को टैक सैवी भी बनाना होगा।'

स्वास्थ्य सेवा का क्षेत्र काफी पुराना है और इसमें पुरुषों का एकाधिकार है। एक युवा महिला होने के नाते लोगों का अमीरा को गंभीरता से लेना एक मुश्किल बाधा के समान बात थी जबकि उनके पास मेडिकल का कोई अनुभव भी नहीं था। महिला बॉस होने के कारण अमीरा को कई बार भयावह घटनाओं का सामना करना पड़ा। अमीरा के मुताबिक- 'कार्यक्षेत्र में महिलाओं को अकसर अपने लिंग की लड़ाई लड़नी पड़ती है और अगर कोई महिला उद्यमी हो तो उसके लिए यह अलग मामला होता है। एक महिला होने के नाते आपने एक उद्यम को खड़ा किया होता है, जहां पर संस्कृति और हालात अलग होते हैं। जहां पर आपको अपना ब्रांड बनाना होता है उसके लिए आपको खुद बाहर निकलना पड़ता है और अपनी कहानी बेचनी होती है। यह काम का काफी कठिन हिस्सा होता है और यहीं पर भेदभाव सामने दिखाई देता है।'

अमीरा के मुताबिक ज्यादातर लोग उनके तजुर्बे को देखते हुए उनके साथ जब बातचीत करते हैं तो असहज महसूस करते हैं। हालांकि यह उनकी गलती नहीं है, क्योंकि पुरुषों को बचपन से यही सिखाया जाता है कि कोई महिला सिर्फ दो ही चीजों के काबिल है या तो वह माँ बन सकती है या फिर किसी की पत्नी, लेकिन कार्यक्षेत्र में उसकी कोई जगह नहीं होती इसलिए महिलाओं को कई पुरुष अपने समान नहीं देख पाते। बावजूद इसके अमीरा का मानना है कि किसी भी महिला को अपनी ताकत का अहसास होना चाहिए और ऐसे हालात से निपटना आना चाहिए।

भविष्य के बारे में अमीरा का कहना है कि मेट्रोपोलिस ने पिछले 2-3 सालों के दौरान अपने कर्मचारियों, आधारभूत सुविधाओं, वितरण, नेटवर्क और सेल्स में निवेश किया है। जिसके बाद अब उनको उम्मीद है कि इसका परिणाम जल्द ही सामने आएगा। उनके मुताबिक ग्राहकों का

बर्ताव भी पहले से बदला है, उनकी सोच बदली है और वह चाहती हैं कि अपने कारोबार को पेशेवर तरीके से चलायें ताकि भविष्य की जरूरतों को देखते हुए कारोबार में भी बदलाव लाया जा सके। अब वो मेट्रोपोलिस को दूसरे देशों में भी ले जाने का इरादा रखती हैं। कर्मचारियों को सलाह देते हुए वह कहती हैं- 'यह जरूरी है कि हम अपने काम के माहौल के साथ-साथ खुद के बारे में जागरूक रहें। खुद के बारे में जागरूक होना एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। नियमित रूप से सीखते रहने की क्षमता व्यक्ति को कुदरती रूप से सफलता के पथ पर अग्रसर रखती है। इस प्रकार की सीख हमें अपनी कम्पनी तथा इंडस्ट्री के हित में कार्य करने को प्रेरित करती है।'

अमीरा का मानना है कि विफलता इंसान को बेहतर बनाती है। पिछले 14 साल के दौरान उतार-चढ़ाव को देखने के बाद अमीरा की सलाह है कि आपको अपनी सीमाओं को लगातार बढ़ाना चाहिए। यह मानव प्रकृति है कि वह आराम चाहता है और उसी के साथ जीना चाहता है। अनिश्चितता से इंसान को नफरत होती है, लेकिन ऐसे हालात में ही इंसान अपना मुकाम बना सकता है इसलिए अपनी सीमाओं को लगातार बढ़ाना जरूरी है।

ईमानदार, मेहनती पाता है ईश्वर से विशेष सम्मान

'जो लोग जिम्मेदार, सरल, ईमानदार एवं मेहनती होते हैं, उन्हें ईश्वर द्वारा विशेष सम्मान मिलता है, क्योंकि वे इस धरती पर उसकी श्रेष्ठ रचना हैं।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. कलाम के इस विचार पर आधारित है, 'दोसा के डॉक्टर' प्रेम गणपति के जीवन की कहानी। सरल और ईमानदार प्रेम गणपति आज जिस मुकाम पर हैं उसके पीछे उनकी मेहनत है।

वैसे तो दोसा एक दक्षिण भारतीय पकवान है, लेकिन आजकल भारत के अन्य हिस्सों में ही नहीं बल्कि दुनिया-भर में बनाया और खाया जा रहा है। दोसा का स्वाद अब दुनिया-भर में मशहूर है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दोसा के साथ कामयाबी की एक ऐसी कहानी जुड़ गयी है, जिससे आने वाले कई सालों तक लोग मेहनत और संघर्ष के महत्त्व को समझते रहेंगे। यह कहानी है 'दोसा का डॉक्टर' के नाम से पहचाने जाने वाले 'दोसा प्लाज़ा' के मालिक और संस्थापक प्रेम गणपति की। 'दोसा प्लाज़ा' रेस्तरांओं की एक बड़ी श्रृंखला का नाम है। भारत-भर में 'दोसा प्लाज़ा' के कई आउट्लेट्स हैं और इन आउट्लेट में हर दिन हज़ारों लोग दोसा और दूसरे लज़ीज़ पकवानों का मज़ा ले रहे हैं। इसी 'दोसा प्लाज़ा' से जुड़ी है संघर्ष की एक अनोखी कहानी है प्रेम गणपति की।

'दोसा प्लाज़ा' के आउटलेट्स में पकवान बेचकर हर दिन लाखों रुपये कमा रहे इसके मालिक प्रेम गणपति एक समय मुंबई में एक बेकरी में बर्तन साफ़ किया करते थे। जिस महानगर में बड़ी नौकरी पाने का सपना देखकर अपने गांव से आये थे, वहां पहले ही दिन उनके साथ विश्वासघात हुआ था, लेकिन किसी तरह खुद को संभालकर प्रेम गणपति ने एक अनजान शहर में जो संघर्ष किया, उसे आज मिसाल के तौर पर पेश किया जा रहा है।

पकवानों के ज़रिये ही करोड़ों रुपये का कारोबार कर रहे प्रेम गणपति का जन्म तमिलनाडु के टुटिकोरिन जिले के नागलापुरम गांव में हुआ। प्रेम का परिवार बड़ा है। उसके छह भाई और एक बहन हैं। पिता लोगों को योग और कसरत करना सिखाते थे, थोड़ी खेती-बाड़ी भी हो जाती थी, लेकिन अचानक खेती-बाड़ी में नुकसान हो जाने की वजह से हालात बिगड़ गए। घर में दो-जून की रोटी जुटाने के लिए भी मुश्किल होने लगीं। उसी समय प्रेम गणपति ने फैसला कर लिया कि वह 10वीं के बाद पढ़ाई नहीं करेगा और घर चलाने में पिता की मदद करने के लिए नौकरी करेगा। प्रेम ने कुछ दिनों के लिए अपने गांव में ही छोटी-मोटी नौकरियां कीं, लेकिन उसे अहसास हो गया कि गांव में ज़रूरत और मेहनत के मुताबिक कमाई नहीं होगी। उसने महानगर चेन्नई जाकर नौकरी करने का फैसला किया। चेन्नई में भी प्रेम को छोटी नौकरियां ही मिलीं। इन नौकरियों से ज़रूरतें पूरी होने का नाम नहीं ले रही थीं। उन दिनों जब प्रेम अच्छी कमाई वाली बड़ी नौकरी की तलाश में था, तब उसके एक परिचित ने उसे मुंबई ले जाकर अच्छी नौकरी दिलाने का वादा किया। वादा था कि वह मुंबई में प्रेम को 1200 रुपए की नौकरी दिलाएगा। उस समय 1200 रुपये प्रेम के लिए बड़ी रकम थी। उसे अपने इस परिचित पर भरोसा था, वह उसके साथ चेन्नई छोड़कर मुंबई चलने को राज़ी हो गया।

परिचित के साथ प्रेम चेन्नई से मुंबई के लिए रवाना हुआ। परिचित प्रेम को ट्रेन द्वारा चेन्नई से मुंबई लाया। दोनों पहले वीटी (उस समय विक्टोरिया टर्मिनल कहे जाने वाले अब के छत्रपति शिवाजी टर्मिनल) पर उतरे। इसके बाद परिचित ने प्रेम को मुंबई की लोकल ट्रेन पर चढ़ाया। इस लोकल ट्रेन के सफर में ही वह परिचित प्रेम को धोखा देकर रफूचक्कर हो गया। परिचित ने प्रेम को खाली हाथ छोड़ा था। प्रेम के पास जो कुछ

रुपये थे, उन्हें भी लेकर वह गायब हो गया। परिचित की इस बेवफाई और धोखे ने प्रेम को हिलाकर रख दिया। अनजान शहर, वह भी महानगर में वह अकेला पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर करे तो क्या करे। जेब खाली थी, ऊपर से उसे तमिल के सिवाय कोई और भाषा आती भी नहीं थी। मुंबई में प्रेम का दूसरा कोई परिचित भी नहीं था। वह हिंदी, मराठी, अंग्रेजी तीनों में से कोई भी भाषा नहीं जानता था। लोगों से बात करने की हालत में भी नहीं था वह।

जब वह बांद्रा स्टेशन पर लोकल ट्रेन से उतरा, तो पूरी तरह नाउम्मीद हो गया था। लोगों की भीड़ के बीच उसे समझ नहीं आ रहा था कि जाए तो कहां जाए, मदद मांगे तो किससे और कैसे?

प्रेम की इस हालत पर एक टैक्सी वाले को तरस आया और उसने उसे धारावी इलाके में मारियम्मन मंदिर पहुंचाया। इस मंदिर में आने वाले ज्यादातर लोग तमिलभाषी ही थे। टैक्सी चालक को लगा कि कोई न कोई तमिल भाषी प्रेम की मदद कर देगा और प्रेम वापस अपने गांव जाने में कामयाब होगा। टैक्सी चालक की उम्मीद के मुताबिक ही, मारियम्मन मंदिर में तमिलभाषी लोग प्रेम की मदद के लिए आगे आये और उन्होंने प्रेम को गांव वापस भिजवाने में उसकी मदद करने का भरोसा दिलाया, लेकिन प्रेम ने गांव वापस जाने के इरादे को बदल लिया था। उसने फैसला किया कि वह मुंबई में रहकर नौकरी करेगा। उसने मदद करने आगे आये तमिलभाषियों से कहा कि वह नौकरी के मकसद से ही मुंबई आया था, सो यहीं नौकरी करेगा। उसने साफ़ कह दिया कि वापस चेन्नई या फिर अपने गांव जाने का सवाल ही नहीं उठता।

प्रेम को मुंबई में पहली नौकरी चेम्बूर इलाके में मिली। 150 रुपए महीने की तनख्वाह पर उसे एक छोटी बेकरी में बर्तन साफ करने का काम मिला। प्रेम ने कई दिनों तक बर्तन साफ किए और रुपये कमाए, लेकिन प्रेम के लिए ये रुपये काफी कम थे। उसकी खुद की ज़रूरतें पूरी नहीं हो रही थीं, ऊपर से उसे अपने घर के लिए भी रुपये भेजने थे। प्रेम ने अपने मालिक से उसे 'वेटर' बनाने को कहा, लेकिन मालिक ने उस समय के हालातों के मद्देनज़र ऐसा नहीं किया। निराश प्रेम को बर्तन मांजते हुए ही नौकरी करनी पड़ी।

प्रेम ने ज्यादा रुपये कमाने के मकसद से रात में एक छोटे से ढाबे

पर रसोइए का काम भी शुरू कर दिया। प्रेम को दोसा बनाने का शौक था और इसी शौक के चलते ढाबा मालिक ने प्रेम को दोसा बनाने का ही काम सौंपा। रात-दिन की मेहनत के बाद प्रेम कुछ रुपये जमा करने में कामयाब हुआ था। उसने इन रुपयों से अपना खुद का छोटा-सा कारोबार शुरू करने की सोची। जमा किए रुपयों से प्रेम ने इडली-दोसा बनाने की रेहड़ी किराए पर ले ली। प्रेम ने 1000 रुपए के बर्तन खरीदे, एक स्टोव खरीदा और इडली-दोसा बनाने का कुछ सामान भी। यह बात 1992 की है।

अपने ठेले को लेकर प्रेम वाशी रेलवे स्टेशन पहुंचा और दोसा बनाकर बेचने लगा। प्रेम इतने स्वादिष्ट दोसे बनाता था कि जल्द ही वह काफी मशहूर हो गया। प्रेम के बनाये दोसे खाने के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। जो एक बार प्रेम के बनाये दोसे को खा लेता, वह दोबारा खाने ज़रूर आता। प्रेम के दोसे छात्रों में भी काफी मशहूर हो गए। कई सारे छात्र प्रेम की ठेली पर आते और दोसे खाते। अपना धंधा शुरू करते ही उसने अपने भाई मुरूगन व परमशिवम को भी गांव से बुला लिया।

छात्रों के प्रोत्साहन और मदद से उत्साहित प्रेम ने 1997 में एक दुकान किराए पर ली। उसने दो लोगों को नौकरी पर भी रखा। इस तरह से प्रेम ने अपना 'दोसा रेस्तरां' खोला। प्रेम ने रेस्टोरेंट का नाम रखा- 'प्रेम सागर दोसा प्लाज़ा'।

इस ठेले की वजह से प्रेम की दोस्ती कई छात्रों से हो गयी थी। यही छात्र अब प्रेम को अपना कारोबार बढ़ाने के लिए सलाह भी देने लगे।

मुंबई के सैकड़ों इडली के ठेलों से अलग उसके ठेले की खासियत यह थी कि वह सफाई रखता था, सिर पर कैप लगाता था और साफ-सुथरे कपड़े पहनकर मुस्कराते हुए व्यापार करता था। दोसा व सांभर का अच्छा मसाला वह अपने गांव से लेकर आता था और गुणवत्ता का विशेष ध्यान रखता था। 15,000 महीने की आय होने पर उसने वाशी में सोने हेतु और सामान बनाने के लिए एक छोटी जगह किराए पर ले ली। उसका हाथठेला कई बार महानगर पालिका वालों ने जब्त किया और उस पर जुर्माना लगाया, लेकिन वह हताश नहीं हुआ। यह नाम रखने के पीछे भी एक वजह थी। जिस जगह प्रेम ने दुकान किराये पर ली थी, वह जगह वाशी प्लाज़ा कहलाती थी। प्रेम को लगा कि अगर वह वाशी और दोसा

को जोड़ेगा तो जल्द मशहूर होगा। और हकीकत में हुआ भी ऐसा ही। प्रेम की दुकान खूब चलने लगी।

प्रेम के बनाये दोसों का स्वाद ही इतना लज़ीज़ था कि उसकी खुशबू जगह-जगह फैलने लगी। प्रेम के इस रेस्तरां में अधिकतर कॉलेज के छात्र ही आया करते। इन्हीं छात्रों की मदद से प्रेम ने एक कदम आगे बढ़ते हुए कम्प्यूटर चलाना भी सीख लिया। कंप्यूटर पर इंटरनेट की मदद से प्रेम ने दुनिया-भर में अलग-अलग जगह बनाये जाने वाले लज़ीज़ पकवानों को बनाना भी सीख लिया।

इसी दौरान प्रेम को एक विचार आया और इसी आइडिये ने प्रेम की ज़िंदगी बदल दी जिससे उसके सपनों को एक नयी उड़ान मिली।

प्रेम ने दोसों पर अलग-अलग प्रयोग करना शुरू किया। उसने तरह-तरह के दोसे बनाना चालू किया। अलग-अलग स्वादिष्ट पकवानों को दोसों के साथ जोड़ने का काम हुआ। चाइनीज खाना पसंद करने वालों के लिए चाइनीज दोसा भी बना डाला। उत्तर भारतीयों के लिए दोसे में पनीर का भी इस्तेमाल हुआ। अपने प्रयोग कामयाब हो रहे या नहीं, यह जानने के लिए प्रेम कुछ चुनिंदा छात्रों को अपने प्रयोगात्मक दोसे खिलाता। अगर स्वाद छात्रों को पसंद आ जाता, तब उन्हें बनाकर बेचने लगता।

जल्द ही प्रेम ने अपने रेस्तरां में 20 किस्म के दोसे बेचना शुरू कर दिया। नए- नए और लज़ीज़ दोसों को खाने के लिए लोगों की भीड़ जुटने लगी। लोगों की लगातार बढ़ती भीड़ को देखते हुए उसे अपने रेस्तरां का विस्तार करना पड़ा। लोगों की मांग पर प्रेम ने और भी नए-नए दोसों का ईजाद किया। इन नए-नए दोसों के स्वाद की चर्चा मुंबई में कुछ इस तरह हुई कि प्रेम के रेस्तरां में लोगों का हुजूम उमड़ने लगा। 2005 तक प्रेम ने इसी रेस्तरां में अपने प्रयोगों से 104 किस्म के दोसे तैयार कर डाले। अपने दोसों की वजह से प्रेम 'दोसों का डॉक्टर' के नाम से जाना जाने लगा। प्रेम को अपने प्रयोगात्मक दोसों की वजह से खूब मुनाफा भी होने लगा। लोगों की मांग को देखते हुए प्रेम ने नया रेस्तरां खोला। मांग और बढ़ गयी, फिर एक नया सिलसिला शुरू हुआ- नए-नए रेस्तरां खोलने का सिलसिला। मांग बढ़ती गयी, रेस्तरां बढ़ते गए। काम और कारोबार इतना बढ़ गया कि मदद के लिए प्रेम ने गांव से अपने भाई को मुंबई बुला लिया।

प्रेम के दोसों की खुशबू इतनी फैली कि मुंबई के बाहर से भी रेस्तरां

खोलने की मांग उठने लगी। प्रेम ने मुंबई के बाहर भी अपने दोसा प्लाज़ा खोलने शुरू किए। एक-एक करके दोसा प्लाज़ा के कई सारे आउटलेट्स देश के अलग-अलग शहरों में खुले, सभी रेस्तरां खूब चले भी। प्रेम ने कामयाबी की एक और बड़ी मंज़िल उस समय हासिल की, जब 'दोसा प्लाज़ा' का एक आउटलेट विदेश में भी खुला। प्रेम और उनके 'दोसा प्लाज़ा' की कामयाबी यहीं नहीं रुकी, कई और देशों में भी रेस्तरां खुलने और खूब चलने का सिलसिला जारी है। विदेश में न्यूजीलैंड, मध्यपूर्व और दुबई समेत 10 देशों में 'दोसा प्लाज़ा' के रेस्तरां प्रेम की सफलता की कामयाबी बयां कर रहे हैं। दुनिया-भर में प्रेम के दोसे लगातार मशहूर होते जा रहे हैं। 'दोसा प्लाज़ा' के 105 किस्म के दोसों में से 27 के अपने ट्रेडमार्क हैं। भारत के कई राज्यों में अब लोग 'दोसा प्लाज़ा' से दोसा और दूसरे व्यंजनों का लुत्फ़ उठा रहे हैं।

गरीबी, कम शिक्षा व लाचारी आदि बहाने इंसान के बनाए हुए हैं। एक छोटे से आइडिये पर भी डटकर मेहनत की जाए तो आप अपनी एक शानदार दुनिया खड़ी कर सकते हैं। आज अवसरों की कमी नहीं है, हिम्मतवालों की कमी है। यह कहानी हमारे पुरखों के जमाने की नहीं है, आज की है और बिलकुल ताजा है। यदि प्रेम गणपति अपना भाग्य खुद लिख सकते हैं, तो आप भी लिख सकते हैं।

प्रेम गणपति की यह कहानी संघर्ष से क्या कुछ हासिल किया जा सकता है, उसकी एक सुन्दर झलक पेश करती है। एक व्यक्ति जो कभी किसी के यहां जूठे बर्तन साफ़ करता था, वह आदमी मेहनत, संघर्ष और लगन के बल पर अब कई लोगों को नौकरियां देने वाले 'दोसा प्लाज़ा' का मालिक है।

विज्ञान के मूल काम होंगे हमारी भाषा में

> ***'अंग्रेजी आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान में विज्ञान के मूल काम अंग्रेजी में हैं। मेरा विश्वास है कि अगले दो दशक में विज्ञान के मूल काम हमारी भाषाओं में आने शुरू हो जाएंगे, तब हम जापानियों की तरह आगे बढ़ सकेंगे।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

डॉ. कलाम विज्ञान को जानने के लिए अंग्रेजी को पढ़ने पर जोर देते हैं। उनकी यह बात हकीकत में कई छात्रों को निजी तौर पर सही लगती होगी। उन्हीं भुक्तभोगियों में से एक डॉ. विजयराघवन विश्वनाथन हैं, जिनको अपने इंजीनियरिंग कॉलेज का वह पहला दिन आज तक याद है, जब उनसे अपने बारे में कुछ बताने को कहा गया। उस वक्त वह अंग्रेजी में कुछ शब्द ही बोल पाए और उनकी आंखों में आंसू गए, क्योंकि उन्हें अंग्रेजी का पूर्णरूपेण ज्ञान नहीं था, इसलिए वे आगे कुछ भी नहीं कह पाए। आज यही डॉ. विजयराघवन (CERN) यूरोपीय संगठन परमाणु अनुसंधान में वैज्ञानिक के तौर पर काम कर रहे हैं और एक उद्यमी भी हैं। मदुरै के राजपलायम के रहने वाले विजय का परिवार एक किसान परिवार है। अपने शुरुआती दिनों में ही विजय जान गए थे कि शिक्षा का जीवन में कितना महत्त्व है। वह हमेशा पढ़ना चाहते थे और शैक्षणिक दृष्टि से अपने आप को साबित करना चाहते थे। उनको इलेक्ट्रॉनिक्स से लगाव था, इसलिए उन्होंने कोयंबटूर में अमरुथा इंजीनियरिंग कॉलेज से इंजीनियरिंग की पढ़ाई की।

इंजीनियरिंग की पढ़ाई के दौरान उनको आर्थिक दिक्कतों का सामना करना पड़ा। जब वे कॉलेज के दूसरे साल में थे तो वित्तीय कठिनाई के चलते उनको अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। फिर भी दोस्तों और रिश्तेदारों की मदद से वे एक बार फिर से अपनी पढ़ाई जारी रखने में कामयाब रहे। इसके अलावा कई स्कॉलरशिप्स ने उनको आगे बढ़ने में मदद की। तीसरे वर्ष की समाप्ति पर विजय को लार्सन एंड टुब्रो, पवई में नौकरी मिल गई। अपने कॉलेज के दिनों को याद करते हुए विजय बताते हैं कि पहले साल वे अपने कॉलेज की प्रोफेसर मिनी मेनन से काफी डरते थे, क्योंकि उनकी अंग्रेजी भाषा में काफी अच्छी पकड़ थी और अंग्रेजी में मिनी मेनन के साथ बातचीत करने में विजय को काफी डर लगता था। बावजूद इसके एक दिन मिनी मेनन ने उनसे बात की और विजय को कुछ ऐसी सलाह दी कि उनका जीवन ही बदल गया। उन्होंने विजय को सलाह दी की वे हर दिन अंग्रेजी अखबार के संपादकीय पढ़ें, भले ही उनके शब्दों को वह समझें या नहीं। इसके बाद जब भी विजय को कोई ऐसा शब्द मिलता, जिसे वे समझ नहीं पाते थे तो उसे लिखकर रख लेते थे और उसका अर्थ शब्दकोश में तलाश कर याद करते।

दूसरों से अलग और अंतर्मुखी विजय अपना ज्यादातर वक्त पुस्तकालय में बिताते थे। तीसरे साल विजय को पता चला कि उन्हें स्कॉलरशिप भी मिल सकती है, जिसने उनको उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद उन्होंने विभिन्न विश्वविद्यालयों में आवेदन किया। विजय एक मेधावी छात्र थे, जिन्होंने तीसरे साल इंजीनियरिंग की पढ़ाई में 88 प्रतिशत अंक हासिल किए थे। आगे पढ़ाई जारी रखने के लिए उन्होंने बैंक में लोन के लिए आवेदन किया लेकिन बैंक मैनेजर ने उनको लोन देने से यह कहकर इनकार कर दिया कि वह इसे कैसे चुकाएंगे? इस घटना के बाद विजय उदास हो गए, लेकिन उन्होंने ऐसे विश्वविद्यालयों की तलाश की, जो 100 प्रतिशत स्कॉलरशिप देते हैं।

किस्मत भी उन्हीं लोगों पर मेहरबान होती है, जो मेहनत करना जानते हैं। इटली, फ्रांस और स्विट्जरलैंड के विश्वविद्यालयों ने उनका आवेदन मान लिया। जिसके बाद उन्होंने इटली-भारत छात्रवृत्ति कार्यक्रम के तहत उन्होंने छात्रवृत्ति लेने का फैसला लिया। हालांकि अब तक वह तमिलनाडु से बाहर कभी नहीं गए थे, लेकिन इस छात्रवृत्ति के लिए देश से तीन

छात्रों का चयन हुआ था, जिसमें से वे भी एक थे। 5 सितंबर, 2007 को विजय इटली के लिए रवाना हो गये। जब वे मिलान में उतरे तो वहां पर बर्फ गिर रही थी, जिसके लिए वह तैयार नहीं थे। उनके पास इस बर्फबारी से बचने के लिए कोई जैकेट भी नहीं था। विजय बहुत सीधे-सादे थे, इसलिए उन्होंने किसी से पैसे भी नहीं मांगे, लेकिन उनके एक दोस्त ने अपनी जैकेट उनको तब तक के लिए दे दी, जब तक विजय को स्कॉलरशिप के पैसे नहीं मिले।

हालांकि यह विजय की परेशानियों का अंत नहीं था। जब वे खाना खाने के लिए बाहर गये, तो उन्होंने एक रेस्टोरेंट में शाकाहारी खाने की मांग की, लेकिन वहां पर सैंडविच में मछली थी इसलिए उनको महीने भर तक चावल की भूसी पर ही जिंदा रहना पड़ा। इस दौरान उन्होंने कुछ लोगों की मदद से खाना बनाना सीख लिया। इतने सारे कड़वे अनुभव के बावजूद विजय अपनी पढ़ाई से विचलित नहीं हुए और दो साल के नैनों तकनीक कार्यक्रम के तहत उन्होंने 110 में से 108 अंक हासिल किए, लेकिन ज्ञान हासिल करने की प्यास विजय में अभी बुझी नहीं थी, इसलिए उन्होंने नैनो इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में पीएचडी करने का निर्णय लिया। उन्होंने कैमरा डिजाइन में थ्रीडी स्टैकिंग विशेषज्ञता हासिल करने का फैसला लिया। यह कार्यक्रम सरकार, उद्योगों और शिक्षाविदों के आपसी सहयोग से चलाया जा रहा था।

इसी दौरान CERN ने यूरोपियन कमीशन की मदद से उन्नत विकिरण का पता लगाने के लिए एक प्रोजेक्ट की घोषणा की। तभी उनकी आंटी का कैंसर की वजह से निधन हो गया। जिसने उन पर गहरा असर छोड़ा और विजय कैंसर से जुड़े मुद्दों में अपनी रुचि दिखाने लगे। जब CERN ने इस कार्यक्रम के लिए दुनिया-भर में 14 लोगों की तलाश की, तो विजय ने अपना नाम भी आगे बढ़ा दिया। उन्होंने इस कार्यक्रम में हिस्सा लिया, जो CERN और चेक रिपब्लिक की एक कंपनी मिलकर चला रही थी। इस दौरान विजय अपने विचारों को उत्पाद में बदलने के लिए उतावले हो गए। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य रिसर्च के साथ उद्यमिता को बढ़ावा देना था।

किसान का बेटा होने के नाते विजय खेती में आने वाली समस्याएं और उनसे जुड़े मुद्दों को अच्छी तरह जानते थे। CERN में काम करने के दौरान और विभिन्न तकनीकों की जानकारी जुटाने के बावजूद वह अकसर

यही सोचते कि वे समाज को क्या वापिस कर सकते हैं। चार साल बाद विजय जब राजपलायम लौटे, तो उन्होंने देखा कि जो इलाका पहले कभी मीठे पानी का भंडार था, वह आज पानी की कमी से जूझ रहा है। तब विजय ने सोचा कि अगर किसी के पास 100 लीटर पानी है, तो वह उसका कैसे बेहतर इस्तेमाल कर सकता है। विजय के मुताबिक 'हमारे पास हर चीज को मापने के लिए मशीन है, इसलिए मैंने एक ऐसा उपकरण बनाने का फैसला लिया, जिससे यह पता चल सके कि मिट्टी में कितनी नमी, खनिज, पीएच का स्तर और दूसरी चीजें हैं।'

विजय ने आसानी से इस्तेमाल किए जाने वाले एक उपकरण को डिजाइन किया, जो मिट्टी से जुड़े डाटा को मापने में ना सिर्फ मददगार था, बल्कि उसकी सारी जानकारी किसान को उसके मोबाइल में भी पहुंचाने में सक्षम था। इससे किसान को तुरंत अपनी मिट्टी से जुड़ी जानकारी मिल सकती थी। किसान को यह जानकारी रंगों के माध्यम से दी जाती थी। इसमें हरे और लाल रंग का इस्तेमाल होता था। हरे रंग का मतलब होता कि मिट्टी की हालत अच्छी है, जबकि लाल रंग का मतलब खराब होता। इसके अलावा उन्होंने फव्वारों का विकास किया। जमीन का डाटा पता करके उसी जगह पर पानी डालने को कहा जहां पर मिट्टी को सबसे ज्यादा पानी की जरूरत है। इससे ना सिर्फ 30 फीसदी तक बिजली की बचत होती, बल्कि पानी की खपत भी कम होने लगी।

विजय चाहते थे कि देश में इस प्रोजेक्ट में उनकी कोई मदद करे। इसके लिए उन्होंने एक बार फिर CERN की मदद ली। एक महीने के कार्यक्रम के दौरान उन्होंने सीखा कि वे अपने इस काम को कारोबार में कैसे बदल सकते हैं। उनको प्रोटोटाइप विकास के लिए निवेश मिला ताकि वह देश में अपनी तकनीक को लागू कर सकें। एक महीने की छुट्टियां बिताने के बाद विजय रिसर्च और जमीनी स्तर पर काम करने के लिए भारत वापस लौटे। इस दौरान उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के एक कार्यक्रम में हिस्सा लिया, जिसमें कृषि से जुड़े दुनिया-भर के 150 नवीन आविष्कारों की प्रौद्योगिकी को शामिल किया गया था। इस कार्यक्रम में अकेले विजय के सबसे ज्यादा 15 आविष्कार शामिल थे।

विजय के मुताबिक उनको कई जगह से मदद मिल रही है, जैसे- Climate And KIC, CERN, ARDENT, EPFL, PSG And STEP, सहयोगियों,

परिवार और दोस्तों से। मई, 2015 में 'स्मार्ट एग्री' का चयन जापान में आयोजित एशियाई उद्यमिता पुरस्कार के लिए किया गया। यही नहीं 'स्मार्ट एग्री' ने स्विट्जरलैंड में भी कृषि पुरस्कार हासिल किया। विजय को यूं तो विदेशों से भरपूर मदद और सहयोग मिल रहा है, लेकिन वे चाहते हैं कि उनके इस काम में भारत सरकार मदद करे, क्योंकि इनके उत्पाद भारत को ध्यान में रखकर तैयार किए गए हैं। विजय 'स्मार्ट एग्री' के लिए काम सप्ताहंत या रात के वक्त करते हैं। इसके अलावा वे रेडिएशन को लेकर अपने काम को जारी रखे हुए हैं। उनका विश्वास है कि आम आदमी विज्ञान की जरूरत व अनुसंधान को समझेगा और यह तभी होगा, जब उसको उचित परिणाम मिलेंगे।

सफल होने के लिए असफलता की कहानियां पढ़ें

'सफलता की कहानियां मत पढ़ो, उससे आपको केवल एक सन्देश मिलेगा। असफलता की कहानियां भी पढ़ो, उससे आपको सफल होने के कुछ विचार मिलेंगे।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

एक व्यक्ति के बारे में सभी लोगों का विचार था कि वे बहुत ही नकारात्मक किस्म के व्यक्ति हैं, क्योंकि वे हमेशा ऐसी किताबें पढ़ते थे, जो नकारात्मक किस्म की थीं। एक बार उनसे उनके बेटे ने कहा– 'आप 'द पावर ऑफ पॉजिटिव थिंकिंग' जैसी किताबें न पढ़ कर हमेशा नकारात्मक किताबें ही क्यों पढ़ते रहते हैं।' इस पर उनके एक जवाब ने सफलता के बारे में बेटे का पूरा विचार ही बदल कर रख दिया। उनका कहना था– 'मैं ऐसी किताबें पढ़ कर पहले अपना टैंक फुल कर लेना चाहता हूं कि कैसे लोगों ने अपनी असफलताओं से सही समय पर लड़ना और सीखना सीखा। यदि यह मैं जान गया तो सकारात्मक नजरिया तो अपने आप आ जायेगा।' ऐसी ही सोच थी अनिता सेंथिल की।

कुछ समय तक एक बीपीओ में नौकरी करने वाली अनीता सेंथिल इसी सोच के चलते केरल वापस आकर एक छोटे से गांव पलक्कड़ आ गई

जहां उनका घर था। वहीं से उन्होंने पेशेवर प्रशिक्षण और अध्ययन सामग्री उपलब्ध करवाने वाले ऑनलाइन माध्यम Coursegig.com की स्थापना की।

छात्रों को इंटरनेट इत्यादि की जानकारी देते हुए शिक्षा प्रदान करने हेतु Keyways Edu Service की स्थापना करने वाली अनिता कहती हैं, 'मुझे आजतक यह अहसास नहीं हुआ कि एक महिला होने के नाते मैं किसी काम को करने में अक्षम हूं। किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सपना देखिये, उसे प्यार कीजिये, उसको पाने के लिए कड़ा परिश्रम कीजिये और फिर सारा जहां आपका होगा।'

अनीता सेंथिल का हर शब्द उनकी कहानी की प्रतिध्वनि है। अनीता केरल के एक छोटे से गांव पलक्कड़ के एक निम्न मध्यम परिवार का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके माता–पिता ने उन्हें अपना करियर चुनने की आजादी दी और उसे हासिल करने के लिए पूरा समर्थन दिया।

अनीता अगर बचपन से किसी चीज को पाने का सपना देखते हुए बड़ी हुई हैं, तो वह दुनिया पर अपनी एक छाप छोड़ने की प्रबल उनकी इच्छा रही है। उन्होंने जो कुछ कर दिखाया, शायद ही उनके गांव की किसी और लड़की ने ऐसा करने का विचारों में भी सोचा हो। एक दिन अनिता ने डॉ. अब्दुल कलाम की पुस्तक 'विंग्स ऑफ फायर' पढ़ी और उससे प्रेरणा लेकर अपने मित्रों के प्रोत्साहन के बल पर उन्होंने उद्यमिता के क्षेत्र में कदम रखने का फैसला किया और वर्ष 2012 में Coursegig.com (कोर्सगिग.कॉम) की स्थापना की। कोर्सगिग पेशेवर प्रशिक्षण और एक बड़े स्तर पर अध्ययन सामग्री उपलब्ध करवाने वाला ऑनलाइन माध्यम है। इनके पास विभिन्न विषयों से संबंधित अध्ययन सामग्री का एक विशाल संग्रह मौजूद है और ये ऑनलाइन प्रशिक्षक भी उपलब्ध करवाते हैं।

पलक्कड़ में अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद अनीता स्नातक और स्नातकोत्तर करने के लिए कोयंबटूर आ गई। स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने वर्ष 2008 में चेन्नई में एक बीपीओ के साथ काम करना प्रारंभ कर दिया और यहां बिताया गया समय और मिला हुआ अनुभव

उनके आने वाले जीवन की केंद्रीय धुरी बना। अनीता कहती हैं- 'आज मैं अगर अपने जीवन में कुछ कर पाने में सक्षम हूं तो वह उस समय मिले अनुभव और बिताए गए समय की वजह से ही है।'

इतने वर्षों तक अपने घर-परिवार से दूर रहना भी उनके लिए काफी चुनौतीपूर्ण था। जब उन्हें अपने परिवार की याद अधिक सताने लगी और उनसे दूर रहना दुश्वार होने लगा, तो उन्होंने वर्ष 2009 में अपनी नौकरी को अलविदा कह दिया और अपने ही गृहनगर में कुछ करने के अवसरों को तलाशने लगीं। इस दौरान उन्हें जो काम मिला, वह उन्हें संतुष्टि देने वाला नहीं रहा, इसलिए उन्होंने एक फ्रीलांस कंटेट प्रोड्यूसर के रूप में काम करना प्रारंभ कर दिया और इसके बाद उन्होंने अकादमिक क्षेत्र का रुख किया। हालांकि वह बहुत कठिन समय था, लेकिन उन्होंने अनीता को और अधिक निडर बनाने में सहयोग दिया। अनीता कहती हैं- 'उस समय मुझे अपने जीवन को आगे बढ़ाने और किसी भी परिस्थिति का सामना करने का साहस दिया।'

अनिता का संपूर्ण जीवन उतार-चढ़ाव से भरा रहा है और वे अब तक अपनी गलतियों और संघर्ष से सीखती आई हैं।

एक फ्रीलांसर के तौर पर काम करते हुए उन्हें व्यापार की बारीकियों को जानने के अलावा व्यापार की रणनीतियों को समझने और बाजार के अध्ययन आदि को सीखने का मौका मिला। वे कहती हैं- 'बाजार के विश्लेषण से मुझे अपने मस्तिष्क में लगातार उठने वाले कई सवालों का उत्तर जानने का मौका मिला, जैसे मैं यह काम क्यों शुरू कर रही हूं और इसके अलावा मुझे अपने प्रतिस्पर्धियों के बारे में भी पता चला।'

अनीता को इस बात पर बेहद गर्व है कि विवाह और मातृत्व उनके इस उद्यम के रास्ते, जुनून और सपनों के बीच रोड़ा नहीं बन पाए और ना ही वे अपने मिशन से भटकीं। वे कहती हैं- 'मेरे अधिकतर मित्र मुझसे कहते हैं कि वे अपने परिवार के साथ व्यस्त हैं और उन्हें परिवार की जिम्मेदारियों से अलग कुछ और करने का समय ही नहीं मिलता है, लेकिन

मेरा अपना मानना है कि अगर कोई चाहे तो दोनों के बीच प्रबंधन करते हुए संतुलन बनाया जा सकता है। वास्तव में मैं हमेशा सपना देखती रहती हूं कि आगे क्या करना है और कैसे मैं अपने अगले लक्ष्य को प्राप्त कर सकती हूं। यह मुझे खुशी देता है और महत्त्वाकांक्षा व आशावाद के साथ वर्तमान जीवन जीने की ऊर्जा प्रदान करता है।'

अनीता अपनी टीम के बारे में बहुत खुशी-खुशी बात करती हैं- 'मेरी टीम बहुत अच्छी है और वे हर फैसले में मेरा समर्थन करते हैं। मेरे पास फिलहाल काम में सहायता करने के लिए तीन कर्मचारी हैं और बाकी सभी फ्रीलांसर हैं। यह मेरे लिए प्रबंधन के काम को आसान करने में मददगार साबित होता है, लेकिन मैं कई बार एक कार्यालय के माहौल की कमी को महसूस करती हूं।'

उन्होंने इस वर्ष के प्रारंभ में एक बड़ा फैसला लेते हुए कोचीन में Keyways Edu Service (कीवेज़ एजु सर्विस) की स्थापना की। वे कहती हैं- 'कीवेज एजु सर्विस के माध्यम से हम छात्रों को एक प्रभावी लागत में बिलकुल अलग तरीके की शैक्षणिक सहायता प्रदान करते हैं। हम यह सुनिश्चित करने के लिए कि छात्र लाभांवित हो रहे हैं और अपनी शिक्षा से संबंधित लक्ष्यों को पाने की दिशा में ठीक काम कर रहे हैं उन्हें इंटरनेट और अन्य तकनीकी संसाधन मुहैया करवाते हैं। हमारा मुख्य उद्देश्य छात्रों को अकादमिक प्रदर्शन के लिए ऑनलाइन सुविधाएं मुहैया करवाना है ताकि वे आने वाले समय के हिसाब से एक बेहतर भविष्य की ओर कदम बढ़ा सकें।' अब Coursegig.com और cademicpaperhub .com दोनों को कीवेज़ एजु सर्विस में समाहित कर दिया गया है। इनमें से एक अंतिम पेपर तैयार करने का काम करता है।

एक उद्यमी के तौर पर उन्होंने कभी नेटवर्किंग से गुरेज नहीं किया, वे विभिन्न कम्युनिटिज़ की सदस्य हैं। इसकी वजह से वे कई दूसरे लोगों के संपर्क में आने में कामयाब रही हैं और इनमें से कई लोगों ने उन्हें अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करने का काम किया है।

'अपने सपनों को पाने के क्रम में दूसरों की उनके सपने पूरे करने में मदद करो' उनके जीवन का मुख्य दर्शन है, जिसके सहारे वे आगे बढ़ती हैं। स्वयं को उत्प्रेरित रखने के लिए वे प्रतिदिन योगाभ्यास करने के अलावा ध्यान भी करती हैं। 'मैं सिर्फ अच्छी बातों पर अपना ध्यान केंद्रित करती हूं और जो कुछ भी करती हूं उस पर मुझे गर्व है।'

ब्लैक बोर्ड बनाए उजली जिंदगी

'ब्लैक कलर भावनात्मक रूप से बुरा होता है, लेकिन हर ब्लैक बोर्ड विद्यार्थियों की जिंदगी चमकदार बनाता है।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

डॉ. कलाम ने अपनी पुस्तक 'री-इग्नाइटेड : साइंटिफिक पाथवेज़ टू ए ब्राइटर फ्यूचर' में लिखा था, 'मेरे शिक्षक का नाम शिव सुब्रमण्यम अय्यर था। एक दिन 65 छात्रों की कक्षा में उन्होंने ब्लैक बोर्ड पर चित्र बना कर बताया कि पक्षी कैसे उड़ते हैं। उसी दिन वह हमें रामेश्वरम के समुद्र तट पर ले गए जहां समुद्री पक्षी उड़ रहे थे।' इस किताब में डॉ. कलाम ने लिखा था- 'हमारे शिक्षक ने बताया कि पक्षी कैसे अपने पंख फैलाते हैं, अपने पंखों और पूंछ का उपयोग कर दिशा बदलते हैं और उड़ान के पीछे क्या बल होता है।' इसी के बाद बदल गई थी कलाम की जिंदगी। उनके शिक्षक ने पक्षियों को दिखा कर बताया था कि विमान इसी सिद्धांत के आधार पर उड़ता है। एक घंटे के इस सबक के बाद कलाम को पक्षी की उड़ान का रहस्य समझ में आ गया। कलाम ने कहा कि एक लेक्चर ने उनकी जिंदगी की दिशा बदल दी। मेरे शिक्षक ने मुझे जीवन का उद्देश्य दे दिया। मुझे भौतिक विज्ञान के अध्ययन का महत्त्व समझ में आ गया। मैंने भौतिकी को चुना। मैंने एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग को प्राथमिकता दी और फिर रॉकेट इंजीनियर बना। उसके बाद अंतरिक्ष वैज्ञानिक।' कलाम के जीवन को बनाने वाले ब्लैक बोर्ड ने एक और व्यक्ति के जीवन को बदला, जिनका नाम है संतोष कर्णनंदा। 'मेरा इंग्लिश.कॉम' के संस्थापक

और निदेशक संतोष कर्णनंदा का तो यही कहना है। वह कहते हैं- 'आप जो भी कहें, लेकिन हकीकत यह है कि एक आकलन के मुताबिक, भारत में अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या 125 करोड़ की कुल आबादी की 10 फीसदी है और लोगों का अपनी शिक्षा को रोजगार में तब्दील न कर पाने का एक बड़ा कारण उनकी कमजोर अंग्रेजी है। असल में, यह हुनर एक डिग्री से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। खुद एक छोटे कस्बे से आने की वजह से मैं उन लोगों के इरादों को पढ़ सकता हूं, जब वे मुझसे कहते हैं कि वे धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलना चाहते हैं।'

तमिलनाडु में मदुरई के नजदीक एक छोटे से कस्बे डिंडीगुल में पले-बढ़े संतोष को अपनी जेब खर्च से 'द हिंदू' खरीदने 4 किलोमीटर रोज जाना पड़ता था, क्योंकि उनके माता-पिता को यह स्वीकार नहीं था। उनका मानना था कि अंग्रेजी अखबार पढ़ना पैसे और समय की बर्बादी है। संतोष बताते हैं कि- 'मैं अपने परिवार में अंग्रेजी बोलने वालों की पहली पीढ़ी से हूं। जब मैं डिंडीगुल में पढ़ रहा था, शायद ही कोई वहां हो, जो अपने पाठ्यक्रम के अलावा अंग्रेजी पढ़ता हो।'

27 साल के संतोष, जिन्होंने खुद बोलचाल की अंग्रेजी अखबारों के जरिए सीखी है, आज खुद को अपनी वेबसाइट 'मेरा इंग्लिश.कॉम' के जरिए एक प्रोफेशनल ट्रेनर और उद्यमी के रूप में स्थापित कर लिया है। यह वेबसाइट आपको अंग्रेजी सिखाने की बजाय शब्दों के सही इस्तेमाल पर जोर देती है। मसलन, या तो आप भारत में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव की आलोचना कीजिए या फिर अंग्रेजी सीखने की इच्छा को ही त्याग दीजिए। वेबसाइट इस तरह के (denounce, renounce) मिलते-जुलते शब्दों में अंतर को स्पष्ट करती है और लोगों को उनके बारीक भेद को समझने में मदद करती है।

संतोष ने तमिलनाडु में 44 संस्थानों में 40 हजार से ज्यादा लोगों को अंग्रेजी सिखाई है। अपनी फ्री वेबसाइट 'मेरा इंग्लिश.कॉम' के जरिए वे GRE, GMAT के छात्रों और कॉरपोरेट्स को अंग्रेजी सीखने में मदद करते हैं। उन्होंने एक किताब भी लिखी है, '6 घंटे में 1000 शब्द सीखें'।

लेकिन विडंबना यह थी कि डिंडीगुल में रहते हुए अंग्रेजी में बातचीत करने के लिए उनके पास कोई नहीं था। संतोष याद करते हुए बताते हैं-

'मैं नहीं जानता क्यों, लेकिन हमेशा अंग्रेजी भाषा के प्रति मेरे अंदर एक आकर्षण था। मैं जब अपने सहपाठियों से जान-पहचान करने के लिए अंग्रेजी में बात करने की कोशिश करता, तो वे मुझ पर हंसते थे।' अगर आप तमिलनाडु के छोटे कस्बों के वातावरण से परिचित हैं, तो आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि संतोष को अकसर पीटर कहकर मजाक उड़ाया जाता था। जब कोई अंग्रेजी बोलने की कोशिश करता था, तो उसे यही नाम दिया जाता था। उन्हें लगता था कि मैं उन्हें यह दिखा रहा हूं।

संतोष को क्विज प्रतियोगिताओं ने आगे बढ़ाया, अपने स्कूल के लिए उन्होंने ये प्रतियोगिताएं जीतनी शुरू कर दी थीं। उनके पास हमेशा अगली प्रतियोगिता तैयारी करने के लिए सामने होती थी, इसलिए लोगों के तिरस्कार और टिप्पणियों पर ज्यादा सोचने के लिए समय ही नहीं बचता था। 9वीं कक्षा में, उन्होंने अपने स्कूल और राज्य का अंतर्राज्यीय क्विज स्पर्धा में नेतृत्व किया। वह कहते हैं, 'जितना मैं जीतता गया, उतना ही मेरा आत्मविश्वास बढ़ता गया, लेकिन धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलना अब भी बड़ी समस्या थी।'

डिंडीगुल में, जो छात्र अंग्रेजी माध्यम के सीबीएसई स्कूलों में 10वीं की परीक्षा देते हैं, इसके बाद वे आगे की पढ़ाई के लिए स्टेट बोर्ड में चले जाते हैं, क्योंकि संतोष के मुताबिक जो इंजीनियरिंग और मेडिकल में दाखिला लेना चाहते हैं, उनके लिए अच्छे अंक लाना आसान है। यह एक अनकहा चलन है, इसलिए ऐसा हुआ कि मेरे सभी सहपाठी स्टेट बोर्ड के स्कूलों में चले गए और मैं 11वीं कक्षा में अपने स्कूल में अकेला बचा था।

यह संतोष की जिंदगी का सबसे कठिन हिस्सा था। मुझे अब भी उन दिनों को याद करके बुरे सपने आते हैं, लेकिन पीछे देखता हूं, तो लगता है कि आज मैं जो कुछ कर रहा हूं, वह जिंदगी के उन्हीं 2 सालों की बदौलत कर सका। मैं पूरी तरह अकेला था। शिक्षकों के अलावा ऐसा कोई नहीं था, जिससे मैं पढ़ाई के बारे में बात कर सकता या फिर अपनी शंकाओं को दूर कर सकता। इस दौर ने संतोष को आत्मनिर्भर होना सिखाया और यह उस वक्त काम आया, जब उसने गूगल को छोड़कर अकेले चलने का फैसला किया। जी हां, संतोष का यही कमाल है कि वे अकेलेपन से शुरू हुई अपनी यात्रा को जिंदगी में कुछ सार्थक करने की

ज्वलंत चाह और आत्मनिर्भरता के बूते दुनिया में सबसे ज्यादा जुड़ी हुई जगह गूगल तक ले गए।

लेकिन संतोष आज जहां हैं, वहां पहुंचने से पहले उन्हें कई तकलीफदेह रास्तों से गुजरना पड़ा। घर की तरफ से उन पर दूसरों की तरह ही स्टेट बोर्ड ज्वॉइन करने और इंजीनियरिंग या मेडिकल के लिए किस्मत आजमाने का दबाव था। यही वह समय था, जिसने खुद से अंग्रेजी पढ़ने का मेरा संकल्प मजबूत किया। इसी तरह, जब मैंने 'मेरा इंग्लिश.कॉम' लॉन्च करने का फैसला किया, मैंने अपनी वेबसाइट के लिए सारी चीजें खुद ही कीं, वेबसाइट की विषय वस्तु, लोगों को नौकरी पर रखना आदि सारे काम मेरे लिए आसान थे, क्योंकि वे 2 साल मैंने खुद पर खर्च किए थे।

2002-03 में, डिंडीगुल जैसी जगहों में इंटरनेट नहीं पहुंचा था और छात्रों को मनोरंजन के लिए या तो पढ़ाई करना या फिर खेलना होता था। उन्होंने खूब खेला और जमकर पढ़ाई की। उन्हीं दिनों 'इंडिया टुडे पत्रिका' में मैंने चेन्नई के लोयोला कॉलेज के बारे में पढ़ा था। मैंने हमेशा वहां जाने का ख्वाब सजाया था। मुझे वहां दाखिला पाने के लिए सिर्फ एक ही सलाह मिली थी- खूब पढ़ो। संतोष ने 85 फीसदी अंक हासिल किए और चेन्नई के लोयोला कॉलेज में जगह पा ली।

अगर आपने कभी कड़ाही से बाहर सीधे आग में जाने का अनुभव किया हो; तो आप जानेंगे कि संतोष पर क्या गुजरी, जब वह बड़े शहर के मशहूर कॉलेज के दरवाजे के अंदर पहुंचे। वह कहते हैं- 'मुझे लगता था कि डिंडीगुल में मैं अकेला था। चेन्नई आने पर मुझे और ज्यादा अलगाव का अनुभव हुआ। दोस्त बनाना मुश्किल हो गया। यहां स्वीकारे जाने के लिए आपको अंग्रेजी में अच्छा होना जरूरी था। मैंने उन लोगों के आसपास रहना शुरू कर दिया, जिनसे मुझे लगता कि मैं सीख सकता था। समसामयिक घटनाक्रम की अच्छी जानकारी होने के चलते मैं एक नजरिया पेश करने में सक्षम था, इसके चलते मुझे लोगों के बीच स्वीकार्यता मिलने लगी। धीरे-धीरे मेरी झिझक खोती गई और जैसे-जैसे लोग मुझे जानने लगे, मैं खुद को बेहतर तरीके से व्यक्त करने लगा। अगर कोई एक ही काम बार-बार करता है तो उसमें सुधार होता है और इसी चीज ने मुझे गूगल के कैंपस सेलेक्शन में मदद की।'

मैंने 2007 में एकाउंट एसोसिएट के तौर पर गूगल ज्वॉइन किया था। यह मेरे लिए सबसे बड़ी चीज थी। मैं गूगल के साथ काम करने जा रहा था, सिर्फ इतनी बात मेरे लिए पर्याप्त थी। मैंने अपनी भूमिका के बारे में ज्यादा ध्यान नहीं दिया।' इसलिए, दूसरे साल के अंत तक, संतोष अस्तित्व से संबंधित सबसे बड़े सवाल पर चिंतन करने लगे कि आखिर मैं जिंदगी से चाहता क्या हूं।

एक दिन सुबह जिम से लौटते समय संतोष सनक में एक ट्रेनिंग कक्षा में चले गए। यह कैंपस रिक्रूटमेंट ट्रेनिंग की कक्षा थी, जिसमें छात्रों को इंटरव्यू का सामना करने और एप्टीट्यूड टेस्ट में बैठने के तरीकों के बारे में तैयार किया जाता था। वह कहते हैं- 'मैं जीमैट-जीआरई परीक्षाएं दे चुका था और छात्रों को इस बारे में बता सकता था। संस्थान ने उन्हें कुछ कक्षाएं करने का मौका दे दिया। गूगल छोड़ने के बाद संतोष ने एक-डेढ़ साल फ्रीलांस ट्रेनर के तौर पर काम किया था। यद्यपि मैं लोगों को तर्कसंगत ढंग से सोचने का प्रशिक्षण देता हूं, लेकिन मेरे ज्यादातर फैसले अतार्किक रह चुके हैं।'

संतोष ने अपने जैसे लोगों को पेशेवर कामयाबी दिलाने में मदद करना शुरू कर दिया। 'मैंने पूरे तमिलनाडु में जगह-जगह यात्राएं कीं और हजारों लड़के-लड़कियों से मिला, जो प्रचलित तरीकों से बाहर आने के लिए संघर्ष कर रहे थे।' गूगल में रहते हुए की गई बचत के साथ संतोष मेरा इंग्लिश.कॉम वेबसाइट 2012 में स्थापित करने में सक्षम हो गया।

जब मैंने शुरुआत की थी, मैं पैसे बनाना नहीं जानता था। मैं सिर्फ विषय वस्तु लिखना ही जानता था। 2013 से मैंने पैसे कमाना भी शुरू कर दिया था। आज, 'मेरा अंग्रेजी टीम' के पास चेन्नई में अपना दफ्तर और कक्षाओं के साथ-साथ 11 प्रशिक्षक और लेखक भी हैं।

पारिवारिक दबावों के बावजूद संतोष ने व्यापार स्थायी होने तक शादी नहीं करने का फैसला किया है। मैंने अपनी पहली 3 दिन की छुट्टी 3 साल बाद उस वक्त ली जब मैं अपने दादा-दादी से मिलने डिंडीगुल गया था।

'मेरा दिमाग लगातार सोचता है कि अगला क्लाइंट कैसे मिले। उद्यमिता एक पूर्णकालिक पेशा है। आप बंद नहीं कर सकते। 2013 में, मेरा वजन बहुत बढ़ गया था, क्योंकि मैं अपने स्वास्थ्य और आहार-विहार पर ध्यान

नहीं देता था। यह अब अपेक्षाकृत आसान हो चुका है, और मैंने रोज जिम जाना शुरू कर दिया है।'

बहरहाल, संतोष की उद्यमिता ने उसे जल्द आने वाले गुस्से पर नियंत्रण पाना सिखाया है। वे कहते हैं- 'पहले मुझे गुस्सा जल्दी आता था। मैं अब ज्यादा सहनशील हूं। यह एक बड़ी सीख रही है। सभी अनिश्चितताओं के बावजूद, मैं इतना कुछ संभाल रहा हूं। रात में अच्छी नींद सोता हूं और अगली सुबह मुस्कराते चेहरे के साथ दफ्तर जाता हूं। फैसले लेना निश्चित रूप से बेहतर हो गया है। शुरू में, मैं थक जाता था। कुछ चीजों में फैसले लेने में बहुत सारी ऊर्जा लगती है।'

अपने प्रशिक्षण सत्र में, संतोष छात्रों को अपने जुनून पर चलना और साथ-साथ पैसे कमाना भी सिखाते हैं।

मैं उनसे अतार्किक फैसले लेने को कहता हूं। कई बार दिमाग का अतार्किक भाग, तार्किक भाग से ज्यादा जानता है, लेकिन आपको ये वहीं नहीं छोड़ देना चाहिए, कड़ी मेहनत के साथ लगे रहना बहुत जरूरी है। मैं नहीं जानता था कि मुझे यह करने में इतना लंबा वक्त लग जाएगा। आपको लगे रहना चाहिए, क्योंकि लोग आप पर थोड़ी देर बाद ही विश्वास करते हैं। जैसा कि सभी उद्यमी जानते हैं, वक्त के साथ यह आसान होता जाता है।

मदद की जरूरत सबको है

'मैं एक हैंडसम इंसान नहीं हूं लेकिन मैं अपना हैंड उस किसी भी व्यक्ति को दे सकता हूं जिसको मदद की जरूरत है। सुंदरता हृदय में होती है, चेहरे में नहीं।

–डॉ. अब्दुल कलाम

जीवन संग्राम है और यहां हर सम्बन्ध और परिस्थितियां आपको यही समझाती हैं कि मानवीय मूल्यों की रक्षा करते रहें तथा अपने आचार-विचार के बारे में सोच कर उसे परिष्कृत करते रहें। यह हमेशा देखने में आता है कि यदि किसी एक व्यक्ति पर कोई बड़ी समस्या आ जाती है, तो हम उसकी सहायता के बजाय उसका मजाक उड़ाने लगते हैं या पूरा जोर उसे दोषी बताने में लगा देते हैं, यह जीवन का पहला पक्ष है कि यातना झेल रहा व्यक्ति दोषी है और हम सब जितना सम्भव हो सके उसके कष्ट में सुख पाने की अनुभूति पैदा करने लगते हैं, क्योंकि जब हम हरेक इंसान से प्रतियोगिता करते हैं, तो हर समय यही सोचते हैं कि देखिये कैसे लोग हैं, अक्ल नहीं है, इनका तो ऐसा ही होना था, बहुत उड़ रहे थे ऐसे और भी अनेक वाक्य कहे जाते हैं। जो दूसरों को छोटा और अपने को श्रेष्ठ बताने के लिए जरूरी हों।

जबकि अपने लिए तो हर कोई जीता है, लेकिन जो व्यक्ति दूसरों की पीड़ा को समझे और उनकी जिंदगी में बदलाव लाने की दिशा में काम

करे, असली विजेता वही होता है। ऐसा व्यक्ति समाज के लिए एक ऐसा उदाहरण पेश करता है जिससे प्रेरित होकर कई लोग उसके पदचिन्हों पर चलने की कोशिश करते हैं। ऐसे ही एक विजेता हैं रुस्तम सेन गुप्ता।

यूं तो रुस्तम के माता-पिता बंगाल के हैं, लेकिन उनका जन्म दिल्ली में हुआ और वे यहीं पले-बढ़े। उनकी प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली के सेंट कोलंबस स्कूल से हुई। इसके बाद उन्होंने इंजीनियरिंग की और अमेरिका से मासकॉम करने वहां चले गए। फिर फ्रांस से एमबीए करने के बाद रुस्तम सेन गुप्ता विदेश में अच्छी तनख्वाह वाली नौकरी कर रहे थे। रुस्तम सिंगापुर में एक मल्टीनेशनल बैंक में ऊंचे पद पर थे, बहुत अच्छा कमा रहे थे।

ऐसा नहीं है कि 'बूंद' की शुरुआत करने का ख्याल उनको अचानक ही आया हो। जब वे दिल्ली में पढ़ रहे थे, तभी उनको लगता था कि वे कुछ ऐसा काम करें, जिससे देश और यहां के लोगों को कुछ फायदा हो, मगर उस वक्त पढ़ाई का सिलसिला आगे बढ़ता गया और वे दिल्ली से अमेरिका, अमेरिका से फ्रांस पहुंच गये। फ्रांस में एमबीए करने के दौरान उनको एक कोर्स के सिलसिले में एक गांव में डेढ़ महीने रहना पड़ा, तभी उन्होंने गांव में रहनेवाले लोगों के जीवन में आनेवाली समस्याओं को करीब से जाना। उन्होंने फैसला किया कि वे इन लोगों के जीवन में बिजली, पानी जैसी मूलभूत जरूरतों को दूर करने का प्रयास करेंगे। उसी वक्त उनके इरादों में 'बूंद' ने जन्म ले लिया। इसके बाद वे फ्रांस वापस लौट गये और एमबीए की पढ़ाई पूरी कर वहां नौकरी करने लगे। नौकरी के साथ-साथ ही उन्होंने अपने इरादे को हकीकत में बदलने के लिए रिसर्च वर्क करना शुरू कर दिया। कई तरह की रिसर्च करने के बाद जब उनका बिजनेस प्लान पूरी तरह से तैयार हो गया, तब उन्होंने नौकरी छोड़ी और भारत आकर 'बूंद' को स्वरूप में ढालना शुरू कर दिया। यहां पर उन्होंने एक सामाजिक संस्था 'बूंद' की शुरुआत की।

भारत आकर सबसे पहले रुस्तम ने भारत के गांव-देहातों का दौरा किया और पाया कि यहां पर ग्रामीणों को सबसे जरूरी चीज जैसे- बिजली,

साफ पानी नहीं मिल रहा था, साथ ही यहां पर काफी गंदगी थी। उन्होंने देखा कि शहरों में कई चीजें हैं जो वहां तो मिलती हैं, लेकिन गांवों तक नहीं पहुंच पा रहीं और यदि वे चीजें गांवों तक पहुंच जाएं तो यहां रह रहे लोगों की जिंदगी में काफी बदलाव लाया जा सकता है। उन्होंने इस खाई को भरने का प्रयास करने के बारे में सोचा। उसके बाद वे विभिन्न एनजीओ के साथ मिलकर काम करने लगे ताकि वे अपने प्रयासों से गांव के लोगों की जिंदगी में कुछ सकारात्मक परिवर्तन ला पाएं।

उन्होंने इस दौरान देखा कि गांव के लोगों को मूलभूत चीजें नहीं मिल रही थीं जिसके कारण उनकी जिंदगी काफी कष्टदायी हो गई थी। स्वच्छता न होने के कारण गांवों के बच्चे बीमार पड़ रहे थे, ये सब चीजें रुस्तम को बहुत पीड़ा दे रही थीं। रुस्तम ने तय किया कि उनको अब अपने प्रयासों में काफी तेजी लानी होगी, इसके लिए उन्होंने विभिन्न उत्पादों की सूची तैयार करनी शुरू की। वे इस बात का भी खास ख्याल रख रहे थे कि वह उत्पाद महंगा न हो, क्योंकि गांव के लोग काफी गरीब थे। उन्होंने अपने अभियान की शुरुआत झारखंड और पश्चिम बंगाल से की। बूंद की शुरुआत भले ही उन्होंने अकेले की, लेकिन तीन-चार महीनों में ही उनको लोगों का इतना सहयोग मिलने लगा कि आगे का रास्ता अपने आप ही बनता चला गया। अगर लोगों का साथ नहीं मिला होता, तो शायद आज बूंद अपनी पहचान नहीं बना पाया होता। बूंद के सफर को आसान बनाने में आइआइएम सेंटर फॉर इनोवेशन इनक्यूवेशन एंटरप्रेन्योरशिप, अहमदाबाद के कुछ प्रोफेसर्स और वहां के लड़कों ने रुस्तम की काफी मदद की। उन्होंने इस बात पर पूरा जोर दिया कि कैसे गांव में सोलर एनर्जी पहुंचाने के इस काम को व्यवसाय का रूप दिया जाये और यह काम एनजीओ में परिवर्तित न हो पाये, क्योंकि व्यवसाय के रूप में इस काम की शुरुआत करने का एक दूसरा मकसद गांव में रोशनी पहुंचाने के साथ वहां के युवाओं को रोजगार देना भी था। इस दौरान कई विशेषज्ञों ने रुस्तम के लोगों को इस काम का प्रशिक्षण देने में मदद की।

गांव में रहनेवाले अधिकतर लोगों के पास इतने पैसे नहीं होते कि वे उनके उत्पादों को पूरे पैसे देकर खरीद सकें। इसके लिए उन लोगों ने गांववालों को छोटे-छोटे ऋण दिलाने की सुविधा भी उपलब्ध करायी, ताकि वे हर महीने छोटी-छोटी किश्त चुका कर इन उत्पादों को खरीद सकें और रोजमर्रा के जीवन में बिजली, पानी की समस्या से छुटकारा पा सकें। यदि कोई अपने घर में दो बल्ब, एक पंखे की व्यवस्था के लिए 1,000 रुपये की लागतवाला सोलर यूनिट लगवाना चाहता है, तो वह लोन के माध्यम से एक वर्ष तक प्रतिमाह 120 रुपये की किश्त देकर अपने घर में रोशनी की व्यवस्था कर सकता है।

सेन गुप्ता ने सौर लालटेन, वॉटर फिल्टर, चूल्हे, डॉयनामो लैंप और मच्छरदानी जैसे उत्पादों को जुटाने, बेचने और उनका रखरखाव करने का एक मॉडल विकसित किया। यह इस तरह से काम करता है: जब कोई दानदाता कोई उत्पाद खरीद लेता है, तो उसे स्थानीय उद्यमियों अथवा गैर सरकारी संगठनों के जरिए वांछित ठिकाने पर भेज दिया जाता है।

फिर ग्रामीण इन उत्पादों को खरीदते हैं और उसका भुगतान किश्तों में करते हैं। सौदा कराने वाले स्थानीय एजेंट को उनकी सेवा के लिए कमीशन मिलता है। दान की रकम, जो आम तौर पर ऋण का काम करती है, दानदाता को लौटाई जा सकती है अथवा उसका पुनर्निवेश किसी और सौदे में किया जा सकता है।

लद्दाख में जब प्राकृतिक आपदा आई थी, तब 'बूंद' ने मुफ्त में उत्पाद वहां भेजे। दानदाताओं से पैसा जुटाने के लिए 'बूंद' को एक मुहिम भी चलानी पड़ी। सेन गुप्ता ने अब वित्तीय भागीदारों को शामिल कर लिया है, जो उस अवधि के लिए पैसों की व्यवस्था करेंगे, जब तक दानदाता उत्पादों का हिसाब चुकता नहीं कर देते।

एक परिवार का केरोसिन की लालटेन के बजाए सौर लैंप की रोशनी में भोजन करने का आनंद रुस्तम को यह दिलासा दिलाता है कि उनका प्रयास बढ़िया चल रहा है। जब भी वे गांव-देहात में जाते हैं और बच्चों

को सोलर लैंप से पढ़ते हुए देखते हैं, तो उन्हें सुकून मिलता है। सन 2010 से शुरू हुआ यह सफर आज सफलता की सीढ़ियां लगातार चढ़ रहा है सोलर लैंप या फिर सोलर एनर्जी से चलनेवाले अन्य उपकरणों को बनाने, उनकी सर्विसिंग करने के लिए उनके संस्थान को कई लोगों की जरूरत पड़ती है। ऐसे में उनका इस बात पर पूरा जोर होता है कि सुविधाओं के साथ वे गांव के लोगों को अपने काम से जोड़ कर उन्हें रोजगार भी दे सकें। उत्तर प्रदेश व राजस्थान के गांवों में उनके जितने भी दफ्तर हैं, वहां इन्होंने कर्मियों के रूप में वहीं के लोगों को रखा है। उनकी अपनी टीम में इस वक्त 22 लोग हैं। 50-60 लोग पार्टटाइम कमीशन पर काम करते हैं। वे गांवों में 7,000 से भी ज्यादा सिस्टम लगा चुके हैं। कई सोलर लाइटें लगायी हैं। इसके अलावा वे उन क्षेत्रों में काम करते हैं, जहां लोगों को मदद की जरूरत होती है? जैसे 2010 में जब लद्दाख में बाढ़ आयी थी, तब उनकी पूरी टीम ने वहां के 9 गांवों में बिजली और पीने के पानी की सुविधा उपलब्ध करायी थी। उत्तराखंड में हुई तबाही के बाद इस वक्त उनकी टीम वहां के गांवों में सुधार लाने का प्रयास कर रही है।

इसके अलावा 31 पार्टनर व कमीशन एजेंट्स हैं और 'बूंद' के माध्यम से वे 50 हजार लोगों की जिंदगी में बदलाव ला चुके हैं।

ताकत ही ताकत का सम्मान करती है

'जब तक भारत दुनिया में अपने कदमों पर खड़ा नहीं है, तब तक हमारा कोई आदर नहीं करेगा। इस दुनिया में डर के लिए कोई जगह नहीं है। केवल ताकत ही ताकत का सम्मान करती है।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

भारतीय विज्ञापन जगत की एक जानी-मानी हस्ती सुश्री तारा सिन्हा ने 2001 में किसी समय 'इकोनोमिक्स टाइम्स' के एक लेख में उन्होंने लिखा कि वे जब भी विदेशों में गईं। वह कभी भी होटलों में नहीं ठहरीं, बल्कि अपने मित्रों के घर रहीं। उन्होंने भारतीय लोगों के सामने विदेशियों द्वारा भारत को गाली देते हुए सुना था- 'भारत एक गंदा, तीसरे दर्जे का भ्रष्ट देश है।' कल्पना कीजिए, क्या स्थिति होगी जब ये विदेशी लोग भारत के खिलाफ ऐसा प्रचार कर रहे हों और केवल 150 भारतीय विदेश सेवा अधिकारी भारत के मान की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हों। भारत को 40 वर्षों तक इस तरह का सामूहिक अपमान, तिरस्कार सहना पड़ा। तारा सिन्हा कहती हैं कि भारत के खिलाफ यह भद्दा प्रचार एक ही दिन में रुक गया, जिस दिन भारत ने पोखरण में परमाणु बम का विस्फोट किया। उसी समय भारत का उठान शुरू हो गया। लोग कहने लगे कि प्रतिबंधों के बावजूद भारत के विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास और तेजी से होगा। उच्च अधिकारियों ने कहा- 'हमें विदेशी तकनीक की जरूरत नहीं। हम पूरी तरह समर्थ हैं। हम बहुत कम कीमत पर तकनीक विकसित कर सकते हैं। हम नहीं चाहते

कि प्रतिबंध हटाए जाएं।' डॉ. कलाम ने इस अवसर पर कहा था- 'यदि आप प्रतिबंध लगाएंगे तो हम और भी तेज रफ्तार से आगे बढ़ेंगे।' दुनिया ऐसी ही ताकत का सम्मान करती है।

अत: इस बात में कोई संदेह नहीं कि आर्थिक शक्ति किसी भी देश की शक्ति का महत्त्वपूर्ण घटक है। अन्य घटकों के बिना आर्थिक शक्ति विश्व का सामना करने के लिए पर्याप्त नहीं होती और उन अन्य घटकों में सबसे महत्त्वपूर्ण है हमारी युवा शक्ति। ऐसे ही एक युवा विनीत राय की जीवन यात्रा की झांकी आपको आगे पढ़ने को मिलेगी।

विनीत राय पढ़ाई में काफी औसत छात्र रहे, लेकिन मात्र 25 साल की उम्र में सीईओ बनकर उन्होंने दिखा दिया कि कक्षा में पहले स्थान पर आने पर ही कोई सफल नहीं हो सकता। सफल होने के लिए काम के प्रति लगन, ईमानदारी और दृढ़ इच्छाशक्ति की जरूरत होती है। ये सभी गुण विनीत में थे, इसलिए आज वे वह सब कर पा रहे हैं, जो वे सोचते हैं।

विनीत का जन्म जोधपुर में हुआ था। भारत-पाक सीमा के करीब स्थित होने के कारण वहां पर सेना की चहलकदमी काफी ज्यादा थी। देश के जवानों को देखकर विनीत के मन में भी सेना में भर्ती होने की इच्छा पैदा हुई। वे सेना में भर्ती होना चाहते थे लेकिन उनका चयन नहीं हो पाया। उन्होंने लिखित पेपर तो बड़ी आसानी से पास कर लिया, लेकिन एसएसबी इंटरव्यू में बाहर हो गए। वे चाहते थे कि उनको पहली ही बार में चुन लिया जाए, लेकिन जब उनको एनडीए में नहीं चुना गया तो उन्होंने सोचा, ठीक है मैं सीडीएस दूंगा। और फिर जब उसमें भी उनका नंबर नहीं आया तो उन्होंने एयरफोर्स के लिए आवेदन किया। वहां भी उनको न ही सुनने को मिला। इससे वे काफी मायूस और हताश हो गए। फिर उन्होंने सेल्स रिप्रेजेंटेटिव के तौर पर नौकरी की, जहां 1991 में 20 साल की उम्र में उनको 2000 रुपये मिलते थे, लेकिन जल्दी ही वे समझ गए कि यह क्षेत्र उनके लिए नहीं है। फिर एक मित्र ने मजाक में उनको कहा- 'अगर फौज में नहीं लिया तो कम-से-कम जंगल ही में चला जा वहां तुझे मजा आ जाएगा।' उनको यह आइडिया अच्छा लगा। तो उनका वह दोस्त जयेश भाटिया आईआईएम का फॉर्म ले आया और फीस जमा करवा दी गई। उसने विनीत से कहा- 'बस जीमैट की किताबें पढ़ और पेपर दे।' विनीत ने खुद को किताबों में झोंक दिया और फिर एक बार इम्तिहान व इंटरव्यू दिया।

जून, 1991 में उन्होंने इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फॉरेस्ट मैनेजमेंट ज्वॉइन कर लिया। उसी दौरान वे स्वाति से मिले, जो आज उनकी पत्नी हैं। स्वाति की वजह से उनको अपने बारे में काफी कुछ जानने को मिला, जैसे कि वे कौन सी चीज बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं। उनकी दिक्कत थी कि वे किसी एक काम में लंबे समय तक टिके नहीं रह पाते थे, लेकिन उन्होंने अपनी आदत में बदलाव किया। कोर्स खत्म होने के बाद उन्होंने 1994 में बल्लरपुर इंडस्ट्री ज्वॉइन कर ली। बल्लरपुर कागज के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध था। फॉरेस्ट डिपार्टमेंट प्राइवेट इंडस्ट्री को अपनी जगह इस्तेमाल करने देता था जिससे वे लोग बांस काटकर अपनी फैक्ट्री में ले जाते थे। यह काम बिलकुल नया था और जोखिम भरा भी। यह दुनिया का ऐसा हिस्सा है, जो उन्होंने कभी नहीं देखा था। एक साल विनीत ने इसी इलाके में बिताया, फिर उन्होंने खुद की पोस्टिंग और दूर के इलाके में करने का इंतजाम कर लिया। वे बताते हैं कि- 'मैंने कुछ ऐसे काम किए, जो कोई भी समझदार इंसान नहीं करता। दरअसल मैंने मीटिंग में हंसना शुरू कर दिया जिससे बॉस चिढ़ गए और मेरा तबादला बोइंदा जिले में हो गया, जहां परिस्थितियां काफी बुरी थीं, न बिजली थी न पानी।' यहां पर विनीत को दो फॉरेस्ट डिवीजन संभालने थे। विनीत की दिनचर्या सुबह चार बजे शुरू हो जाती। सुबह-सुबह जंगल जाना होता था। मात्र 24 वर्ष की आयु में ही उन्हें इतनी बड़ी जिम्मेदारी मिल गई थी, यह बहुत बड़ी बात थी। इसके अलावा उनके मातहत 2000 मजदूर तथा अधिकारी काम कर रहे थे। वहां समस्या यह थी कि वे सभी लोग विनीत को अपना सर्वेसर्वा समझते। इससे उनकी जिम्मेदारी और बढ़ जाती। जब वे सोकर उठते तो कम-से-कम बाहर 200 लोग इंतजार में बैठे होते। विनीत ने जगल के बीच भगवान के रूप में 20 महीने बिताए, लेकिन जैसे-जैसे समय बीत रहा था उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। उनके काम में एकरसता आने लगी थी। वे नौकरी छोड़ने की बात करने लगे। पत्नी ने समझाया, लेकिन सब व्यर्थ।

लगभग डेढ़ साल यहां नौकरी करने के बाद इस्तीफा देकर विनीत दिल्ली आ गए। थोड़े समय में वे समझ गए कि कोई भी ऐसे इंसान को काम नहीं देना चाहता, जो 3 सालों तक जंगल में रहा हो। जिसे यह पता ना हो कि इंटरनेट क्या है? वर्ड पर काम कैसे होता है? फिर भी उनको अपने को व्यवस्थित तो करना ही था। लगभग उसी समय विनीत को

आई.आई.एम. के प्रोफेसर अनिल गुप्ता के साथ काम करने का मौका मिला। वे एक रिसर्च एसोसिएट की तलाश में थे, जो वानिकी पृष्ठभूमि से हो। उन्होंने विनीत को 3000 रुपये महीना देने का प्रस्ताव दिया। विनीत ने कहा- 'इतने पैसे में कोई जंगल में रह सकता है, लेकिन अहमदाबाद जैसे शहर में मुमकिन नहीं है।' प्रोफेसर गुप्ता 5900 रुपए देने को तैयार हो गए। 8 महीने उनके साथ काम करने के बाद उनके अनुभव ने उन्हें बता दिया कि विनीत रिसर्च के लिए उपयुक्त नहीं है। वे केवल डूअर थे ना कि थिंकर।

उसके बाद गुजरात सरकार और प्रोफेसर अनिल एक इंस्टीट्यूट स्थापित कर रहे थे। जिसका नाम 'गेन' यानी ग्रासरूट्स इनोवेशन ऑग्मेंटेशन नेटवर्क था। प्रोंफेसर की सलाह पर विनीत ने उस प्रोजेक्ट में बतौर मैनेजर के लिए आवेदन किया, लेकिन उनका चयन बतौर सीईओ हो गया। वे कहते हैं- 'जहां तक मैं जानता हूं ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि किसी ने भी सीईओ के लिए आवेदन नहीं दिया था। उनको सीईओ बनने का विचार बहुत अच्छा लगा। हालांकि तब तक कोई ऑर्गेनाइजेशन नहीं बनी थी।'

काम संभालने के बाद विनीत को लगने लगा कि 'गेन' को फाइनेंस की जरूरत है और निवेशक तभी मिलेंगे, अगर 'गेन' उद्योग का रूप ले ले। उसके बाद विनीत ने रिसर्च की और पाया कि अगर 'गेन' ग्रामीण निवेशक बन जाए, तो उन्हें फंड मिल सकता है। उसके बाद सिडबी और नाबार्ड जैसे बैंकों से बात की गई, लेकिन बात नहीं बनी।

2001 की शुरुआत में विनीत के पास अनंत नागेश्वरन का सिंगापुर से फोन आया, फिर वे योजना पर चर्चा करने सिंगापुर गए। अंत में सिंगापुर में 40 एनआरआई के समूह ने उन पर विश्वास जताते हुए 5000 डॉलर की राशि दी। इस प्रोजेक्ट का नाम 'आविष्कार' रखा गया, लेकिन किसी को भी भरोसा नहीं था कि गांव का कोई भी व्यक्ति मशीन बना सकता है। 'गेन' ने दो इनोवेटर्स पर यह पूंजी लगाई, जिनमें से एक मनसुख भाई पटेल थे, उन्होंने रुई धुनने की मशीन का निर्माण किया और दूसरे कैलाश गज्जर ऑइल मशीन वाले, नतीजा काफी अच्छा रहा। मात्र एक वर्ष में ही लागत का 26 प्रतिशत रिटर्न मिल गया। निवेशक हैरान थे, क्योंकि पहले किसी को भी इसकी आशा नहीं थी लेकिन उसके बाद प्रोफेसर गुप्ता के साथ विनीत के कुछ मतभेद हुए और विनीत ने नौकरी छोड़ दी।

कुछ समय बाद विनीत की मुलाकात अरुण डियाज से हुई। अरुण से विनीत पहले सिंगापुर में मिल चुके थे। उन्होंने विनीत को पुनः आविष्कार के साथ जुड़ने का और उसे आगे बढ़ाने का न्योता दिया। उसी दौरान विनीत ने (टी एम वीसीएफ) तुंगरी मनोहर वेंचर कैपिटल फंड के साथ एक कॉन्ट्रेक्ट साइन किया। यह बिलकुल वैसा था, जैसा विनीत 'आविष्कार' में करना चाहते थे, फिर विनीत ने टीएण्डएम के साथ काम करने के लिए मुंबई का रुख किया। साथ ही आविष्कार को भी एक ट्रस्ट के रूप में रजिस्टर्ड करवाया। उसके बाद सेबी के पास रजिस्टर्ड करवाया गया। सेबी ने शर्त रखी कि जब तक उनके ट्रस्ट के पास एक मिलियन डॉलर जमा न हो जाएं, तब तक वह निवेश नहीं कर सकते। अगले कुछ महीने काफी निराशाजनक रहे। टीएण्डएम वीसीएल ने अपने सारे ऑपरेशन बंद कर दिए। काफी मेहनत के बाद एक करोड़ फंड जुटाया गया, फिर सेबी ने आविष्कार को कार्य करने के लिए हरी झंडी दिखा दी। इसके बाद खोज शुरू हुई ऐसे चलने वाले उद्यमों की जहां निवेश किया जा सके। चेन्नई में 'सर्वल' नाम की एक कंपनी थी, जो ऐसे स्टोव बर्नर बनाती थी, जो दूसरे बर्नरों के मुकाबले 30 प्रतिशत ज्यादा चलते थे, उसे 60 वर्षीय सज्जन मुकुंदन चला रहे थे। इसके दो फायदे हो रहे थे- एक तो केरोसीन की बचत और दूसरा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करके पर्यावरण की भी रक्षा हो रही थी। सन 2002 में आविष्कार ने अपना पहला निवेश किया। पहले दो साल बहुत बुरे रहे और उम्मीद से काफी कम बर्नर बिके। जब रिसर्च की गई तो पाया कि ग्रामीण इलाकों में लोग सस्ते बर्नर ज्यादा खरीदते हैं। फिर 'सर्वल' ने एक नई मिश्र धातु को निकाला जो काफी सस्ती थी। यहीं से मिलनी शुरू हुई आविष्कार को सफलता।

विनीत हमेशा यही साबित करना चाहते थे कि व्यापार के साथ भी समाज की भलाई का काम हो सकता है।

आविष्कार ने न सिर्फ दूसरी कंपनियों के लिए निवेश किया, बल्कि अपने लिए फंड बनाया। इसके बाद विनीत ने दुनिया-भर का दौरा किया और निवेशक जुटाने शुरू किए। कुछ ही समय में आविष्कार 23 कंपनियों पर 16 मिलियन डॉलर निवेश कर चुकी है।

आज आविष्कार ग्रामीण उद्यमियों को ऋण दे रहा है, ऐसे लोगों को जो कुछ नया करने की क्षमता रखते हैं। सन 2002 में विनीत ने 'इंट्लेक्चुअल

कैपिटल' नाम से एक कंपनी रजिस्टर्ड की थी। इंटलकैप एक अजीबोगरीब आइडिया था, जो विनीत को उनके मित्र पवन मेहरा ने बताया था। यह एक ऐसी कंपनी थी जो बौद्धिक पूंजी में व्यापार करती थी। इंटलकैप को जल्द ही वर्ल्ड बैंक से 1000 डॉलर प्रति महीने का करार मिल गया।

आविष्कार और इंटेलकैप का विस्तार तेजी से हुआ। कंपनी का फोकस सोशल इंवेस्टमेंट एडवाइजरी और सोशल कॉलेज मैनेजमेंट पर था। संक्षेप में कहा जाए तो आविष्कार का मकसद केवल मुनाफा अर्जित करना नहीं है, बल्कि आविष्कार का काम उन कंपनियों को खड़ा करना है, जो ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को रोजगार दें और देश की ताकत बन सकें। उनका दफ्तर सामाजिक के बजाए कॉरपोरेट ज्यादा लगता है। आविष्कार ने यह साबित कर दिया कि सामाजिक और व्यापारिक काम के बीच आप एक लाइन नहीं खींच सकते, न ही आपको खींचनी चाहिए। पैसे के जरिए समाज की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है। भले ही आपने अपना कैरियर किसी जंगल में शुरू किया हो या आलीशान दफ्तर में, आप सबके लीडर बन सकते हैं।

उच्चतम एवं श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त करो

'अपने जीवन में उच्चतम एवं श्रेष्ठ लक्ष्य रखो और उसे प्राप्त करो।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

बड़े सपने, बड़े विचार, बड़ा विश्वास, बड़ा लक्ष्य, बड़ा फैसला ही बड़ी कामयाबी का आकार तय करता है। सफल व्यक्ति सुपरमैन नहीं होता, न ही उसके पास कोई जादुई शक्ति होती है। सफल व्यक्ति आम व्यक्ति की तरह ही साधारण व्यक्ति होते हैं, परंतु फर्क अपने आप पर विश्वास और अपनी क्षमताओं पर विश्वास करने से होता है। अवसर घर का दरवाजा खटखटाने नहीं आयेगा, बल्कि सफलता के लिए अवसरों का दरवाजा खटखटाना होगा, जैसे दीनबंधु साहू ने अपने जीवन में खटखटाया।

दीनबंधु साहू वह नाम है, जिसने किताबी ज्ञान को हकीकत के धरातल में रखा और अपने इस प्रयास के बूते हजारों लोगों को रोजगार का एक नया विकल्प दिया। एक ऐसा विकल्प, जिसने न सिर्फ ग्रामीणों की जिंदगी सुधारी बल्कि उनका यह प्रयास पर्यावरण की दृष्टि से भी काफी उपयोगी साबित हुआ। साहू ने प्रोजेक्ट चिल्का के जरिए उड़ीसा में लोगों को समुद्री खेती करनी सिखाई, जिसके जरिए वे साल-भर पैसा कमा सकते हैं। यह एक ऐसा कार्य था, जिसके बारे में किसी ने भी नहीं सोचा था, लेकिन साहू ने अपने अथक प्रयास द्वारा इसे कर दिखाया।

दीनबंधु साहू एक समुद्रीय जीव वैज्ञानिक हैं। समुद्र में खेती और समुद्र के पानी द्वारा कौन-कौन से काम किए जा सकते हैं जिसके द्वारा धन अर्जन किया जा सके, साहू उसी क्षेत्र में काम करते हैं।

साहू मूलतः उड़ीसा के रहने वाले हैं। साहू के परिवार में कोई ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था, उन्होंने अपनी फीस के पैसों का इंतजाम ट्यूशन पढ़ाकर किया और काफी मुश्किल परिस्थितियों में पढ़ाई की तथा कॉलेज टॉप किया। उसके बाद मात्र 800 रुपए लेकर वे दिल्ली आ गए और दिल्ली विश्वविद्यालय से बॉटनी में एमएससी की। उसके बाद उन्होंने इसी विषय में रिसर्च करने की सोची, लेकिन तभी अंटार्टिका जाने वाले छात्र के रूप में उनका चयन हुआ और वे एक वैज्ञानिक दल के साथ अंटार्टिका चले गए। यह यात्रा उनके जीवन में मील का पत्थर साबित हुई। पहली बार वे किताबी और लैब की दुनिया से दूर कुछ नया और अविस्मरणीय अनुभव कर रहे थे। इसके बाद तो साहू ने विदेश की कई यात्राएं कीं और बहुत कुछ नया सीखा व समझा।

सन 1989 में दिल्ली विश्वविद्यालय से साहू ने बॉटनी में पीएचडी पूरी की और यूएस चले गए, लेकिन उनके मन में भारत के लिए कुछ करने की इच्छा थी। वे चाहते थे कि देश की प्रगति में अपना योगदान दें। यही वजह थी कि वे सब कुछ छोड़कर दिल्ली आ गए। बचपन से ही उन्होंने चिल्का लेक को काफी करीब से देखा था और एक शोधकर्ता के रूप में साहू की समुद्रीय शैवाल में खास रुचि थी। हालांकि भारत में इस पौधे के उपयोग के बारे में बहुत कम लोगों को पता था। जबकि दूसरे देशों में शैवाल की खेती हो रही थी और लोग अच्छा-खासा कमा रहे थे, तब साहू ने तय किया कि वे लोगों को पहले शैवाल के बारे में जानकारी देंगे और बताएंगे कि इसका प्रयोग टूथपेस्ट, टोमेटो कैचप, चॉकलेट, दवाइयां आदि बनाने में हो सकता है। लाल शैवाल व्यापारिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसी कड़ी में उन्होंने 'फार्मिंग द ओशियन' नाम की किताब भी लिखी।

भारत में मछली पालन पर हमेशा से ज्यादा ध्यान दिया जाता रहा है लेकिन शैवाल की खेती बहुत ही कम हो रही थी। साहू चाहते थे कि ज्यादा-से-ज्यादा शैवाल की खेती की जाए ताकि किसानों की अच्छी आय हो। अगर यह व्यवसाय अच्छी तरक्की करता है, तो इसे एक उद्योग की शक्ल भी दी जा सके।

इस योजना के क्रियान्वयन के लिए साहू कई मंत्रियों से भी मिले,

लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। अंत में डीएसटी के साइंस एंड सोसाइटी विभाग ने इस प्रोजेक्ट को 3 साल के लिए 20 लाख रुपए फंड दे दिया। बस फिर क्या था, साहू ने भारत के विभिन्न तटीय इलाकों का दौरा शुरू किया और ग्रामीणों को प्रशिक्षण देने के लिए चिल्का मॉडल बनाया। फिर लोगों को शैवाल की खासियतों तथा शैवाल की खेती से भविष्य में होने वाले फायदे के बारे में भी बताना शुरू किया। उन्होंने किसानों को बताया कि किस प्रकार बहुत कम दामों में मुनाफा कमाया जा सकता है। शैवाल की खेती की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके लिए जुताई, सिंचाई और उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना होता, बस बीज डालो और उसे छोड़ दो, फिर 45 दिन बाद उसे काट लो। इसमें निवेश भी काफी कम करना होता है और मुनाफा काफी ज्यादा मिलता है।

इसके बाद साहू ने 4 भिन्न प्रकार के शैवालों की पहचान की, जिनकी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में काफी मांग थी। फिर वहां उगने वाली वनस्पतियों की पहचान की गई और जलवायु के हिसाब से वनस्पतियां उगाई गईं। पहला प्रयोग 2009 में चिल्का लेक के सातपाड़ा किनारे पर किया गया। साहू खुद ही वहां प्रतिरक्षक के तौर पर मौजूद थे, परिणाम काफी अच्छे रहे। उसके बाद दूसरे किसानों ने भी शैवाल की खेती करनी शुरू कर दी। शैवाल की खेती काफी आसान होती है। अब किसानों को बारहमासी आय का एक बहुत ही अच्छा जरिया मिल गया था। किसान एक तरफ रोपाई करते, दूसरी तरफ 45 दिन पुरानी फसल की कटाई भी करते। इससे वे अच्छा खासा पैसा कमाने लगे।

चिल्का मात्र एक झील नहीं है, यह उड़ीसा के गौरवशाली इतिहास का प्रतीक है, हजारों लोगों की जीवनरेखा है। उम्मीद है, चिल्का प्रोजेक्ट उड़ीसा ही नहीं, भारत के बाकी तटीय राज्यों और विदेशों में भी अपना असर दिखाएगा। अब साहू विभिन्न मंचों में जाकर इस परियोजना के बारे में बताते हैं ताकि शैवाल की खेती को प्रोत्साहन मिले और तटीय क्षेत्रों में रहने वाले गरीब किसानों के लिए पैसा कमाने के विकल्प खुलें। साहू का मकसद पैसा कमाना नहीं है। वे बहुत ही सादगी भरी जिंदगी जीना पसंद करते हैं। गरीब लोगों से इस तकनीक को साझा करने का पैसा नहीं लेते। हरित और श्वेत क्रांति के बाद साहू का सपना है नीली क्रांति का। समुद्र में

अपार संभावनाएं हैं। उड़ीसा एक गरीब राज्य है, यहां कुपोषण की काफी समस्या है। ऐसी जगह में शैवाल की खेती काफी फायदेमंद है, क्योंकि मात्र 100 ग्राम शैवाल में एक किलो सब्जी जितने पोषक तत्व पाये जाते हैं।

दीनबंधु साहू एक मिसाल हैं। वे विदेश में रहकर काफी पैसा कमा सकते थे लेकिन उन्होंने अपनी मातृभूमि की सेवा करना अपना पहला कर्त्तव्य माना और देश के गरीब किसानों के लिए समुद्री खेती का एक नया विकल्प खोला।

देश के विकास के लिए स्वयं सशक्त बनें

> ***'भारत को अपनी ही छाया चाहिए और हमारे पास स्वयं के विकास का प्रतिरूप होना चाहिए।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

भारत कृषि प्रधान देश है, यहां की आबादी का हमेशा से एक बड़ा हिस्सा कृषि पर ही निर्भर रहा है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में भारत में कृषि की स्थिति ठीक नहीं रही है और धीरे-धीरे कृषि ने भारत में बैकसीट ले ली है। कई किसानों ने भी खेती को छोड़कर अन्य विकल्प तलाशने शुरू कर दिए हैं। ऐसे कई कारण हैं, जिनकी वजह से किसानों के लिए अब खेती करना मुश्किल हो रहा है। ऐसे समय में अगर कोई पढ़ा-लिखा युवा इस क्षेत्र में आए और अपने प्रयासों से किसानों की मदद करे तो सच में उसका यह प्रयास बहुत ही सराहनीय है। ऐसी ही एक युवा हैं देवी मूर्ति, जिन्होंने 'कमल किसान' नाम की एक कंपनी शुरू की और उस कंपनी के माध्यम से किसानों को छोटी मशीनें बना कर दीं, जोकि खेती के दौरान उन्हें काफी मदद दे रही हैं।

देवी मूर्ति ने इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई की और उसके बाद बतौर प्रोडक्ट मैनेजर मैटल शीट के निर्माण में लग गईं। बाद में देवी मूर्ति ने आईआईएम बैंगलूरु से मास्टर्स इन एंटरप्रन्योरशिप की पढ़ाई की।

देवी अपने प्रोजेक्ट मैनेजर के तौर पर अर्जित किए हुए अनुभव को व्यर्थ नहीं होने देना चाहती थीं। वे खुद कोई अपना काम शुरू करना चाहती थीं, इसी दौरान उनके एक मित्र ने उन्हें खेती के उपकरण बनाने की सलाह दी। देवी को यह सलाह पसंद भी आई, लेकिन वे किसी प्रकार

का जोखिम भी नहीं लेना चाहती थीं, इसलिए उन्होंने दो साल रिसर्च की। वे किसानों से मिलीं और कई स्थानों का दौरा किया। अपनी इस रिसर्च में देवी ने पाया कि किसानों को सच में खेती के लिए नए आधुनिक उपकरणों की जरूरत है।

खेती में लगे लोगों की संख्या लगातार कम हो रही थी, जिसका सीधा असर पैदावार पर हो रहा था। किसानों के पास बड़ी मशीनों को खरीदने के पैसे नहीं थे, इसलिए वे खुद ही मेहनत कर रहे थे। यह देख देवी ने महसूस किया कि यदि वे किसानों की इन उपकरणों के माध्यम से मदद कर पाईं तो किसानों की जिंदगी थोड़ी आसान हो सकती है, साथ ही पैदावार भी बढ़ेगी, जो किसानों और देश के लिए अच्छा संकेत होगा।

देवी ने सन 2012 में 'कमल किसान' की नींव रखी। कमल किसान छोटे किसानों के लिए खेती में प्रयोग होने वाले उपकरण बनाकर देता है। इन उपकरणों की मदद से किसानों का काम आसान हो गया। यह उपकरण इतने सरल हैं कि किसान आसानी से इनका इस्तेमाल कर अपनी मेहनत और समय बचा सकते हैं। साथ ही उत्पाद की लागत कीमत को भी कम कर सकते हैं।

बाजार में जो बड़ी मशीनें किसानों के लिए हैं, वे छोटे किसानों के लिए उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि इनके पास ज्यादा बड़े खेत नहीं होते, इसलिए छोटे किसानों के लिए उन मशीनों का प्रयोग करना बेहद महंगा सौदा भी है। छोटे किसानों को ऐसी मशीनों की जरूरत थी, जो उनके छोटे-छोटे कार्यों को करने में मददगार हों, प्रयोग में आसान हों और साथ ही महंगा सौदा भी न हों। देवी ने कमल किसान के जरिए ऐसी ही मशीनें किसानों को मुहैया कराईं। कमल किसान फ्रेंचाइजी बेस्ड मॉडल पर काम करता है। कमल किसान ने विभिन्न केन्द्र बनाए, एक्सटेंशन दफ्तर बनाए और विभिन्न ग्रुप्स का निर्माण किया ताकि हर किसान तक पहुंचा जा सके और उस तक सेवाएं पहुंच सकें। कमल किसान को आईआईटी मद्रास के रूलर टेक्नोलॉजी और बिजनेस सेंटर ने पांच लाख रुपए का सीड फंड दिया है।

कमल किसान चार लोगों की एक टीम है और उन्होंने सबसे पहले अपना उत्पाद 'राइस ट्रांसप्लांटर' लॉन्च किया, उसके बाद कई और मशीनों पर काम चल रहा है और कई लॉन्च हो चुकी हैं।

देवी बताती हैं कि किसानों को मशीनों के प्रयोग के लिए मनाना काफी

कठिन कार्य है, क्योंकि किसानों को मशीनों पर भरोसा नहीं होता। ऐसे में देवी को काफी दिक्कत आती है, लेकिन वे और उनकी टीम प्रयास में लगी रहती हैं। वे लोग किसानों की शंकाओं का समाधान करते हैं, उन्हें बताते हैं कि किस तरह इनके प्रयोग से वे लोग आसानी से अपनी पैदावार बढ़ा सकते हैं। देवी ज्यादातर समय दफ्तर से दूर किसानों के साथ खेतों में ही बिताती हैं। वे बताती हैं कि जो किसान उनकी मशीनों को एक बार इस्तेमाल कर लेता है, वह खुद ही लोगों को उस मशीन के फायदे के बारे में बताता है। कंपनी का लक्ष्य सन 2015 तक 50 हजार किसानों तक पहुंचना है।

आत्मसम्मान आत्मनिर्भरता के साथ आता है

'क्या हम यह नहीं जानते कि आत्मसम्मान आत्मनिर्भरता के साथ आता है?'

–डॉ. अब्दुल कलाम

'आज स्वाधीनता का इतना अहसास तो हुआ ही है कि भारतीय समाज में तथा भारत की युवा पीढ़ी में आत्मसम्मान दिखता है, साथ ही आत्मनिर्भरता और 'हम किसी से कम नहीं' वाला भाव भी पनपा है लेकिन अभी भी जिन्हें आत्म-सम्मान चाहिये, उन्हें पहले आत्म-ज्ञान की ओर जाना पड़ेगा, अपने आप को जानना पड़ेगा। उनको पहले ये खोजना होगा कि अपने आप को जानना क्या है? अपनी दिनचर्या को जानना, सुबह से शाम जो हम कर रहे हैं उसको जानना, क्या यही आत्मसम्मान है? जिनको आत्मसम्मान की तलाश हो, वे अपने ऊपर गौर करना शुरू करें। जो अपने आप को नहीं देखता, वह अपना सम्मान नहीं करता जो अपने आप को नहीं जानता, वह अपना सम्मान नहीं करता। और जब तक वह स्वयं का सम्मान नहीं करेगा, उसमें आत्मनिर्भरता नहीं आएगी।' यह कहना है डॉ. राजलक्ष्मी एस.जे. का।

वर्ष 2014 में मुंबई में आयोजित मिस व्हील चेयर प्रतियोगिता की विजेता, बेहद जिंदादिल और साहसी व्यक्तित्व की धनी 29 वर्षीय दंत चिकित्सक डॉ. राजलक्ष्मी एस.जे. कहती हैं- 'मैं अपने आप को बेहद धन्य मानती हूं कि मैं एक ही जीवनकाल में दो जीवन व्यतीत कर पा रही

हूं- एक सामान्य व्यक्ति का और दूसरा एक विकलांग का।' वे कहती हैं कि अगर उनका सामना इस विकलांगता से नहीं हुआ होता तो वे कभी भी एक विकलांग व्यक्ति के जीवन में आने वाली चुनौतियों के बारे में जान नहीं पातीं।

वे एक सामान्य व्यक्ति का जीवन जी रही थीं कि वर्ष 2007 में हुई एक कार दुर्घटना ने उनका जीवन ही बदल दिया। चेन्नई के रास्ते में उनकी कार दुर्घटनाग्रस्त हो गई, जिसके चलते उनकी रीढ़ की हड्डी क्षतिग्रस्त हो गई जिसके परिणामस्वरूप उनके दोनों पैर लकवाग्रस्त हो गए। बैंगलोर की रहने वाली डॉ. राजलक्ष्मी बीती बातों को याद करते हुए बताती हैं- 'बीडीएस की परीक्षा में टॉप करने और स्वर्ण पदक जीतने के बाद मैं अपने प्रोफेसरों के बताये अनुसार नेशनल कांफ्रेस के लिए कुछ कागज जमा करवाने जा रही थी, उसी दौरान मेरी कार दुर्घटनाग्रस्त हो गई।'

हालांकि यह एक अलग बात है कि उन्होंने इस विकलांगता को अपने रास्ते का रोड़ा नहीं बनने दिया है। इस दुर्घटना के छः महीने बाद तक भी वे अपने आप बैठने में सक्षम नहीं थीं और व्हीलचेयर का उपयोग करने मात्र के विचार से ही इस कदर चिढ़ जाती थीं कि उन्होंने इस पर बैठने से ही मना कर दिया। राजलक्ष्मी कहती हैं- 'कुछ समय बाद मुझे अहसास हुआ कि अगर मैं इसी प्रकार व्हीलचेयर को मना करती रहूंगी, तो मैं एक ही जगह पर बंधकर रह जाऊंगी और यह एक ऐसी स्थिति होती, जिसे मैं किसी भी सूरत में सहन और वहन नहीं कर सकती थी। आज वही व्हीलचेयर मेरी सबसे अच्छी दोस्त है।'

इस दुर्घटना ने उन्हें झकझोर कर रख दिया, लेकिन वे कहती हैं- 'अगर यह दुर्घटना नहीं हुई होती, तो निश्चित रूप से मैं इतनी सफल और दृढ़-निश्चयी नहीं होती।' उनका पूरा परिवार उनके समर्थन में खड़ा था लेकिन उन्हें इस बात का अब भी दुःख होता है कि उनके आसपास के कई लोगों ने उनकी मदद करने की जगह उनसे मुंह मोड़ लिया। वे आते और बस यही कहते 'ओफओ! तुम्हारा तो एक्सीडेंट हो गया,' और औपचारिकता निभाकर चलते बनते। इस दुर्घटना के बाद भी उन्होंने अपना हौसला नहीं खोया और एमडी में 73 प्रतिशत अंकों के साथ कर्नाटक की टॉपर बनने में सफल रहीं। राजलक्ष्मी कहती हैं, 'मैं इस तरह की बातों से बहुत चिढ़ जाती थी। किसी भी विकलांग व्यक्ति को आपकी सहानुभूति

या हमदर्दी की दरकार नहीं होती है, बल्कि वह सिर्फ आपका समर्थन होता है, जो उनके लिए बेहद आवश्यक होता है और अगर आप ऐसे में उन्हें समर्थन नहीं दे सकते, तो कम-से-कम उन्हें हतोत्साहित तो मत करिये।'

इसके बाद भी उनके लिए राह इतनी आसान नहीं थी। भारत के संविधान में शिक्षण संस्थानों में विकलांगों के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है, लेकिन कोई इसका पालन नहीं करता है। वर्ष 2010 में उन्हें एक शिक्षण संस्थान से परास्नातक की डिग्री हासिल करने के लिए एक लंबी कानूनी लड़ाई लड़नी पड़ी। वे एक सरकारी कॉलेज में दंत चिकित्साधिकारी के पद पर कार्यरत होना चाहती थीं, लेकिन उन्हें ऐसा करने से रोक दिया गया और इसके बाद दो वर्ष पूर्व उन्होंने अपना एक दंत चिकित्सालय (डेंटल क्लीनिक) प्रारंभ किया।

राजलक्ष्मी बहुत छोटी उम्र से ही डॉक्टर बनने के सपने देखा करती थीं, चूंकि उन्होंने बचपन से ही अपने माता-पिता दोनों को घर की इमारत से क्लीनिक संचालित करते हुए देखा था, इसलिए राजलक्ष्मी खुद भी उनके जैसा ही करना चाहती थीं। 'स्थानीय लोग मेरे पिताजी को 'देवारु' कहते थे, जिसका मतलब कन्नड़ में भगवान होता है, क्योंकि वे उनका जीवन बचाते थे।' जब वे 10वीं कक्षा में पढ़ रही थीं, तभी उनके पिता की आकस्मिक मृत्यु हो गई।

एक डॉक्टर बनने के अलावा वह एक सफल मॉडल बनने के सपने भी देखती थीं और इसी क्रम में उन्होंने एक बार अपनी पढ़ाई से ब्रेक लेकर फैशन डिजाइनिंग करने की ठानी। ऐसे में जब उनके सामने एक सौंदर्य प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर आया तो उन्होंने बिना सोचे उसमें भाग लेने के लिए हामी भर दी। इस प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए राजलक्ष्मी ने व्हीलचेयर पर बैठे-बैठे ही खुद को जिम करने से लेकर बालों की देखभाल और डायटिंग इत्यादि करने के लिए तैयार और प्रेरित किया।

'मिस व्हीलचेयर' दांतों की डॉक्टर के लिए एक बहुत ही रोमांचक अनुभव साबित हुआ कार्यक्रम में शामिल हुए 250 प्रतिभागियों के बीच वे इस खिताब को जीतने में सफल रहीं।

शायद उनसे पूछे गए एक सवाल के जवाब में उनकी जो प्रतिक्रिया दिखाई दी, उसने जजों और दर्शकों सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। जब उनसे पूछा गया कि अगर उन्हें दोबारा जीवन जीने का अवसर मिले तो वे

किसका जीवन चुनेंगी राजलक्ष्मी ने तुरंत जवाब दिया- 'मेरी अपनी जिंदगी।' बहुआयामी व्यक्तित्व की स्वामिनी राजलक्ष्मी ने आगे कहा- 'तब मैंने एक सामान्य व्यक्ति के रूप में स्वयं द्वारा की गई गलतियों को सुधारारूंगी और भारत में विकलांगों की स्थिति में सुधार लाने के लिए और अधिक प्रयत्न करूंगी।' इस बार उन्हें मिस व्हीलचेयर प्रतियोगिता के आयोजन की जिम्मेदारी दी गई है, जिसके दिसंबर 2015 में बैंगलोर में आयोजित होने की संभावना है।

वे इस सच्चाई को जानती हैं कि उनकी इस विकलांगता का कोई असरदार इलाज नहीं है और उन्हें अपनी बाकी की बची हुई जिंदगी दोनों लकवाग्रस्त पांवों के साथ ही गुजारनी है। राजलक्ष्मी कहती हैं- 'मौजूदा संसाधन मेरा इलाज करने में नाकाम है और इन स्थितियों का इलाज करने में सक्षम स्टेम सेल शोध पर अभी काम चल रहा है, जिसमें समय लगने की उम्मीद है। अगर आप मुझसे पूछें तो मैं आपसे सिर्फ यही कहूंगी कि इसका कोई इलाज नहीं है।'

इस दुर्घटना के बाद हुए कई दौरों के फिजियोथेरेपी सत्रों के बाद अंततः राजलक्ष्मी अब स्वतंत्र हैं। वे खुद अपनी कार चलाती हैं, उनमें बेहद दृढ़ इच्छाशक्ति है, व्हीलचेयर पर होने के बावजूद यात्रा करने की बेहद शौकीन हैं और खूब यात्राएं करती हैं। यह युवा डॉक्टर देश के अधिकांश भागों के अलावा कई अन्य देशों की यात्रा का भी लुत्फ उठा चुकी हैं, लेकिन आखिर में वे भारत को ही सबसे खूबसूरत देश के रूप में पाती हैं। वास्तव में घर वहीं, जहां आपका दिल है।

युवा पीढ़ी को एक समृद्ध और सुरक्षित भारत दें

'हम केवल तभी याद किए जाएंगे, यदि हम अपनी युवा पीढ़ी को एक समृद्ध और सुरक्षित भारत दे सके, जो सांस्कृतिक विरासत के साथ-साथ आर्थिक समृद्धि के परिणामस्वरूप प्राप्त हो।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

वर्तमान समय में सामाजिक और पर्यावरण से संबंधित मुद्दे हमारे जीवन को बहुत हद तक प्रभावित कर रहे हैं और इस ओर ध्यान देने की बहुत आवश्यकता है। ऐसे में इन मुद्दों को सकारात्मक रूप से सामने लाते हुए समाज में जागरुकता पैदा करने और इस काम के लिए धन की व्यवस्था करने वाले बहुत से संगठन आज हमारे सामने हैं। इस विशेष सबब को सामने रखकर खड़े हुए फंडरेजिंग मंच इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं और बीते कुछ दशकों में भारत ने ऐसे कई मंचों को पनपते हुए देखा है।

यह बात पूरी तरह सच है कि हर व्यक्ति की सोच व समझ दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। तभी तो कई लोगों के लिए नौकरी केवल पैसे कमाने का एक जरिया मात्र होती है तो कई लोग नौकरी को केवल नौकरी नहीं समझते बल्कि अपना काम व अपनी जिम्मेदारी समझ कर करते हैं और उसमें पूरी तरह डूब जाते हैं। जो लोग केवल पैसे के लिए काम करते हैं, उन्हें भले ही शुरुआत में सफलता जल्दी मिल जाए, लेकिन वे अधिक समय तक एक ही स्थान पर टिक कर काम नहीं कर सकते। जो

लोग अपने काम को मिशन मानकर पूरी शिद्दत से करते हैं, वे लोग अपने काम से सबका दिल जीत लेते हैं। ऐसे लोग अपने आस-पास के लोगों के लिए ही नहीं, बल्कि समाज के लिए भी उदाहरण पेश करते हैं। ऐसी ही हैं शाहीन मिस्त्री, जो कि 'टीच फॉर इंडिया' कार्यक्रम की संस्थापक हैं।

कनेक्टिकट के ही एक बोर्डिंग स्कूल में पढ़ी-लिखी और अमेरिका की पोस्ट ग्रेजुएट 18 वर्षीय शाहीन मिस्त्री भी एक दिन ऐसे ही पश्चिम की चकाचौंध वाली जिंदगी छोड़ कर अपने पैतृक महानगर मुंबई आ गई थीं। मुंबई की उमस भरी गर्मी में एक दिन शाहीन ने देखा कि 5 वर्षीय परशुराम आइसक्रीम ठेले के पास खड़ा है। उसने पूछा, तो बोला- 'आइसक्रीम अपनी बहन के साथ खाना चाहता हूं।' उसे यह बात समझ ही नहीं आ रही थी कि जब तक वह घर पहुंचेगा, आइसक्रीम पानी हो जाएगी। इसी तरह एक और घटना ने शाहीन का मन विचलित कर दिया। बेटी सामरा तब 8 वर्ष की रही होगी। वह स्पोर्ट्स डे पर तीन टांगों वाली रेस की तैयारी में जुटी थी। घर आते ही बोली- 'मां, मेरी पार्टनर पृथ्वी होगी।' सामरा और पृथ्वी पहले से गहरी दोस्त थीं। उसकी बात सुनकर एकाएक मुंह से निकल पड़ा- 'बेहतर होगा कि अपनी पार्टनर बराबर कद वाली को बनाओ। तीन टांगों वाली रेस में दो अलग-अलग कद वाले लोगों के लिए दौड़ जीत पाना मुश्किल हो जाता है।' लेकिन जवाब में वह अपनी बेटी के चहरे को देखकर ठगी सी रह गई। सामरा ने सहज ही सवाल किया- 'मम्मा! रेस में जीतना महत्त्वपूर्ण है या अपनी फ्रेंड को न भूलना?'

15 वर्षीय रघु पोलियो ग्रस्त था। अपनी दोनों टांगों की ताकत गंवा चुका था। वह मुंबई की ही एक गरीब बस्ती में रहता था। एक दिन वह पेरेंट्स के पास गया और बोला- 'अब मैं आप पर और बोझ नहीं बने रहना चाहता।' बस उसी दिन भूखा-प्यासा, खाली जेब ट्रेन से अहमदाबाद चला आया, शुरू में गुरुद्वारे में सेवा करने का मौका मिल गया। एक दिन उसने एक एनजीओ बना ली। आज वह गांव की महिलाओं के साथ हैंडीक्राफ्ट की चीजें बनाने लगा है। एक दिन मिला तो पूछ ही लिया- 'तुझमें इतनी हिम्मत कैसे आई?' बोला- 'वह तो हम सब के अंदर होती है। बस उसे देखने और पहचानने की जरूरत है।'

शाहीन पूछती हैं- 'मेरी तरह आप सब भी सोचते होंगे कि परशुराम, सामरा और रघु ने उस समय देने की बजाय लेने का मार्ग क्यों नहीं चुना?

5 वर्षीय परशुराम ने अपनी बहन के साथ आइसक्रीम खाने या 8 वर्षीय सामरा ने दोस्ती के लिए रेस में पराजय का मार्ग क्यों चुना? 15 वर्षीय विकलांग रघु ने अपनी जिंदगी खुद संवारने के लिए गरीब मां-बाप पर बोझ बने रहने की जगह अपने पांव पर खड़े होने का रास्ता कैसे चुना?' ऐसे ही किसी क्षण में शाहीन ने भी अपना निर्णय लिया होगा। बहरहाल, अब शाहीन मिस्त्री 'टीच फॉर इंडिया' की सीईओ हैं। यह संस्था देश-भर में जानी जाती है।

शाहीन का जन्म मुंबई में हुआ; लेकिन जब वे मात्र 2 साल की थीं, तब उनके पिता का तबादला पहले लेबनान और उसके बाद ग्रीस में हो गया। इस प्रकार शाहीन ने अपना बचपन लेबनान और ग्रीस में बिताया। जब वे आठवीं कक्षा में पढ़ती थीं, तब परिवार अमेरिका आ गया और फिर आगे की पढ़ाई उन्होंने अमेरिका से की।

शाहीन के दादा-दादी और बाकी सभी रिश्तेदार मुंबई में रहते थे, इसलिए शाहीन का मुंबई आना-जाना लगा रहता था।

वर्ष 1989 में 18 वर्षीय भारतीय अमेरिकी शाहीन मिस्त्री बोस्टन की टफ्ट्स यूनिवर्सिटी में पहले वर्ष की छात्रा थीं और गर्मियों की छुट्टियों में मुंबई आई हुई थीं। उन्होंने देखा, भारत में रह रहे ज्यादातर लोग गरीबी में जी रहे हैं। बच्चों को देखकर जहां लोग दु:ख से सिर हिलाते हुए दान-पात्र में कुछ पैसे डालते हैं, वहीं शाहीन ने कुछ करने का फैसला ले लिया। उन्होंने टफ्ट्स यूनिवर्सिटी छोड़कर मुंबई के सेंट जेवियर्स कॉलेज में दाखिला ले लिया और स्कूल की छुट्टी के बाद साधनविहीन बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से अपना अ-लाभसर्जक संगठन स्थापित करने के प्रयास में जुट गईं। तब तक उन्हें हिंदी या मराठी बिलकुल नहीं आती थी।

शाहीन ने अपने एक दोस्त के साथ मिलकर मुंबई की झोपड़पट्टी के आसपास घूमकर वहां का सर्वे किया। इस दौरान वे वहां रहने वाले काफी परिवारों से भी मिलीं। काफी सोचने के बाद शाहीन ने तय किया कि वे झोपड़पट्टी में रहने वाले गरीब बच्चों को शिक्षा देंगी। इसी सोच के साथ उन्होंने अपना कार्य शुरू कर दिया। शाहीन ने जिन बच्चों को पढ़ाना शुरू किया, उनमें से ज्यादातर बच्चे ऐसे थे, जो कभी स्कूल नहीं गए थे। उसके बाद शाहीन ने अपने कॉलेज के दोस्तों से आग्रह किया कि वह इस काम में उनकी सहायता करें और हफ्ते में थोड़ा-सा समय

निकालकर बच्चों को पढ़ाएं। शाहीन ने 'आकांक्षा' नाम की एक संस्था बनाई और कार्य आरंभ कर दिया। शाहीन को अब एक ऐसी जगह चाहिए थी, जहां वे बच्चों को पढ़ा सकें। शाहीन ने जगह के लिए कई सरकारी स्कूलों में बात भी की, लेकिन बात बनी नहीं। आखिरकार एक स्कूल ने बड़ी मुश्किल से जगह दे दी।

शाहीन ने बताया- 'मैंने सरकारी स्कूलों से बात की, लेकिन यह प्रयास असफल रहा। सभी ने सिरे से मना कर दिया। मैंने करीब 20 स्कूलों से संपर्क किया, लेकिन उन्होंने काफी हल्के आधारों पर मेरी पेशकश ठुकरा दी। मुझे लगता है कि वे एकदम ही अलग पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों के अपने यहां आने के विचार से परेशान थे। आखिर जब एक स्कूल उन्हें जगह देने को तैयार हो गया, तो शाहीन ने एक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार किया, जो बच्चों को सीखने के लिए उत्साहित करता था। इस पाठ्यक्रम में खेल, निजी अभिव्यक्ति और सामाजिक कौशल पर जोर देते हुए धीरे-धीरे गणित और अंग्रेजी का प्रशिक्षण दिया जाता है।'

शुरुआत में पैसे की जरूरत नहीं थी, क्योंकि सब स्वयंसेवक थे और जो थोड़ा बहुत स्टेशनरी का खर्च था, वह सभी लोग मिलकर वहन कर लेते थे। शाहीन जानती थीं कि अगर उन्हें इस प्रयास को और आगे ले जाना है, तो उन्हें पैसे की जरूरत पड़ेगी। फिर शाहीन ने 'स्पॉन्सर ए सेंटर' नाम से एक स्कीम शुरू की। इसके बाद आकांक्षा ने कई सेंटर खोले। सन 2002 में आकांक्षा ने पहली बार मुंबई से बाहर पुणे में अपना सेंटर खोला। धीरे-धीरे लोग 'आकांक्षा' से जुड़ने लगे और सहायता देने लगे।

'आकांक्षा' में बच्चों को केवल पढ़ाया ही नहीं जाता, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर भी बनाने का प्रयास किया जाता है। यहां अंग्रेजी और गणित मुख्य विषय रखे गए। 'आकांक्षा' के सारे कार्यक्रम गतिविधियों से जुड़े हैं ताकि आसानी से छात्र उसे ग्रहण कर लें।

उसके बाद तय हुआ कि कुछ ऐसा भी किया जाए ताकि बच्चों को यहां से निकलने के बाद नौकरी मिल सके। फिर शाहीन ने इस दिशा में कार्य करना शुरू कर दिया। 'आकांक्षा' एक औपचारिक विद्यालय नहीं था। यह बच्चों को शिक्षा के साथ उनका चरित्र निर्माण भी कर रहा था ताकि आगे चलकर उन्हें जिंदगी में कठिनाई ना आए।

आज भी 'आकांक्षा' बच्चों को मुख्यत: मुफ्त ही शिक्षा देता है और

ज्यादातर यहां स्वयंसेवक ही हैं, जो बच्चों को पढ़ाते हैं। यहां बच्चों को यह बताया जाता है कि गलतियां करना बुरी बात नहीं है, बल्कि गलतियों से सीखकर ही आप आगे बढ़ते हैं। आज 'आकांक्षा' के बच्चे 'विप्रो', 'वेस्टसाइड' जैसी कंपनियों और 'मैजिक बस' जैसी एनजीओ में कार्य कर रहे हैं।

शाहीन के संगठन 'आकांक्षा' द्वारा अपनाया गया यह नया तरीका सामाजिक उद्यमशीलता का मूल तत्व है। 'आकांक्षा' गरीब बच्चों को शिक्षा देकर उन्हें समाज में खड़ा कर रहा है। एक केंद्र और 15 बच्चों के साथ शुरू हुए इस अभियान के आज मुंबई और पुणे में 50 से अधिक केंद्र हैं। जहां 4000 से अधिक बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

शाहीन 'टीच फॉर इंडिया' कार्यक्रम के जरिए ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को साथ जोड़कर पूरे भारत में यह अभियान चलाना चाहती हैं ताकि शिक्षा के माध्यम से बाकी राज्यों के गरीब बच्चे भी आत्मनिर्भर हो सकें।

2009-10 में वाशिंगटन, डी.सी. में हुए राष्ट्रपति उद्यमिता शिखर सम्मेलन में उद्यमशीलता के महत्त्व को रेखांकित किया गया। 'उद्यमशीलता' के बारे में सोचने पर अकसर कम्प्यूटर कम्पनियों की शुरुआत करने या सार्वजनिक कल्याण कार्यों की छवियां उभरती हैं, और सच भी है कि सामाजिक उद्यमी कुछ ऐसे ही होते हैं। वे एक ऐसा उत्पाद या सेवा तैयार करते हैं, जो पूरे समाज के लिए सामाजिक लाभ उपलब्ध करवाते हैं।

शिखर सम्मेलन को संबोधित करते हुए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट हिलेरी क्लिंटन ने कहा- 'उद्यमी का कार्यक्षेत्र व्यवसाय से परे तक फैला है। शाहीन मिस्त्री जैसी उद्यमी गरीबी और असमानता की समस्या से निपट रहे हैं, उनकी अ-लाभसर्जक संस्था भारत की मलिन बस्तियों में बच्चों को स्कूल के बाद पढ़ाई में अतिरिक्त सहायता उपलब्ध करवाती हैं।' हिलेरी क्लिंटन को शाहीन के काम के बारे में जुलाई 2009 में अपनी भारत यात्रा के दौरान 2008 में शाहीन द्वारा स्थापित एक और संगठन 'टीच फॉर इंडिया' के स्वयंसेवकों से बात करते हुए पता चला। उस समय उन्होंने कहा था कि उनके मन में आकांक्षा और शिक्षा के लिए काम कर रहे अन्य संगठनों के लिए 'सबसे अधिक सम्मान है और वह इस क्षेत्र को संसार में 'सर्वोच्च प्राथमिकता' पाते देखना चाहेंगी।

दो गरीब बच्चों को सहारा दें

> ***'कम-से-कम दो गरीब बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनकी शिक्षा में मदद करो।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

अपने और माता-पिता के सपनों को तो लगभग हर इंसान साकार करने की इच्छा रखता है। यह अच्छा भी है, लेकिन ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, जो गरीब और अभावहीन बच्चों के सपनों को पूरा करना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। पटना में जन्मे, पले और शिक्षित हुए आनंद कुमार ऐसे ही व्यक्ति हैं। आज दुनिया आनंद कुमार को सुपर-30 संस्था के संस्थापक के रूप में जानती है। स्पेन में चर्चित अखबार 'अल मंडो' ने जहां सुपर-30 पर दो पृष्ठों का विशेष लेख प्रकाशित किया है, जिसमें संस्थान के संस्थापक आनंद कुमार को शिक्षा जगत में 'साइलेंट रिवोल्यूशनरी' (मौन क्रांतिकारी) बताया गया है। जिनका मानना है- 'मानवीय मूल्यों ने अनेक जिंदगियां बदली हैं और इसका उदाहरण सुपर-30 है। मूल्य आधारित शिक्षा ने ही सुपर-30 को सफल बनाया है। आई.आई.टी. जैसी प्रतिष्ठित परीक्षा में अब तक 360 बच्चों में से 308 बच्चों ने आई.आई.टी. की परीक्षा में क्वालीफाई किया। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे संस्थान में जीवन मूल्यों को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान की जाती है। शिक्षक किसी बड़े राजनेता से बड़ा परिवर्तन ला सकता है।'

हर साल आईआईटी रिजल्ट्स के दौरान उनके सुपर-30 की चर्चा अखबारों में खूब सुर्खियां बटोरती हैं। 2014 में भी सुपर-30 के 30 बच्चों में से 27 बच्चों को आईआईटी में प्रवेश मिला है। सन 2003 से हर साल

आईआईटी में सुपर-30 से आए बच्चे सफलता हासिल कर रहे हैं। इतनी बड़ी कामयाबी आनंद कुमार को यूं ही नहीं मिली। इसके पीछे उनकी जिंदगी का लंबा संघर्ष और मजबूत इरादों की बहुत भावुक और संघर्षमयी प्रेरक कहानी है।

आनंद कुमार का परिवार बहुत साधारण मध्यमवर्गीय परिवार था। पिता पोस्टल विभाग में क्लर्क थे। बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाने का खर्च निकालना उनके लिए मुश्किल था। इसलिए बच्चों को हिंदी माध्यम के सरकारी स्कूल में ही पढ़ाया। बच्चों की शिक्षा के प्रति वे बहुत जागरूक थे। आनंद भी जानते थे कि उन्हें मौजूदा सीमित साधनों से ही जितना बेहतर हो सकता है, वह करना है। गणित में आनंद की विशेष रुचि थी और वे बड़े होकर इंजीनियर या वैज्ञानिक बनना चाहते थे। सभी ने कहा- 'यदि इंजीनियर या वैज्ञानिक बनना चाहते हो तो विज्ञान विषय को ध्यान से पढ़ो।' आनंद ने पटना विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। जहां उन्होंने गणित के कुछ फॉर्मूले इजाद किए। इन फॉर्मूलों को देखने के बाद आनंद के अध्यापक देवीप्रसाद वर्मा जी ने उन्हें इन फॉर्मूलों को इंग्लैंड भेजने और वहां प्रकाशित कराने की सलाह दी। गुरुजी के कहे अनुसार आनंद ने अपने पेपर्स इंग्लैंड भेजे और पेपर्स प्रकाशित भी हो गए, फिर कैम्ब्रिज से आनंद को बुलावा आ गया। गुरुजी ने कहा- 'बेटा कैम्ब्रिज जाओ और अपना नाम रोशन करो।' आनंद के घर में भी खुशी का माहौल था। हर कोई आनंद को बधाइयां दे रहा था। आनंद के कैम्ब्रिज जाने के लिए सबसे बड़ी समस्या पैसे की आ रही थी। कॉलेज ने कहा कि हम सिर्फ ट्यूशन फीस माफ कर सकते हैं। कैम्ब्रिज जाने और रहने के लिए लगभग 50,000 रुपयों की जरूरत थी। आनंद के पिताजी ने अपने दफ्तर में बेटे की आगे की पढ़ाई के लिए पैसों की मदद की मांग रखी और दिल्ली कार्यालय तक पत्राचार हुआ। आनंद की काबिलीयत को देखते हुए दिल्ली दफ्तर से मदद का भरोसा दिया गया। 1 अक्टूबर, 1994 को आनंद को कैम्ब्रिज जाना था, लेकिन कहते हैं ना, होता वही है जो नियति को मंजूर होता है। 23 अगस्त, 1994 को आनंद के पिताजी का देहांत हो गया। इस घटना ने न केवल आनंद की जिंदगी बदल दी, बल्कि पूरे परिवार को घोर आर्थिक संकट में भी डाल दिया। घर में पिताजी ही अकेले कमाने वाले थे। अपाहिज चाचा और पूरे संयुक्त परिवार की जिम्मेदारी अब आनंद के

कंधों पर आ गई। ऐसे में आनंद ने कैम्ब्रिज जाने का विचार छोड़ दिया और पटना में रहकर ही परिवार के भरण-पोषण में लग गए। पिता की मौत के साथ ही जैसे आनंद का कैरियर भी समाप्त हो गया था। अच्छा यह था कि अब तक आनंद की ग्रेजुएशन पूरी हो चुकी थी।

बेशक हालात नाजुक थे, लेकिन आनंद जिंदगी-भर क्लर्क की नौकरी नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पिता की अनुकंपा से प्राप्त नौकरी नहीं करने का निश्चय किया। अब आनंद अपने प्रिय विषय गणित पढ़ाकर ही थोड़ा बहुत पैसा कमाने लगे, लेकिन जितना वे कमा रहे थे उससे घर का खर्च पूरा नहीं हो पा रहा था, इसलिए आनंद की माताजी ने घर में पापड़ बनाने का काम शुरू किया और आनंद रोज शाम को 4 घंटे माँ के बनाए पापड़ों को साइकिल पर घूम-घूम कर बेचते। ट्यूशन और पापड़ से हुई कमाई से घर चलता। आखिर ऐसा कब तक चलेगा, आनंद यही सोचते रहते। फिर आनंद ने गणित को आधार बनाया और रामानुजम स्कूल ऑफ मैथेमेटिक्स खोला। इस स्कूल में हर तरह की प्रवेश परीक्षा की तैयारी करने वाले छात्रों को कोचिंग कराई जाने लगी। कोई छात्र 100 रुपए देता, कोई 200 तो कोई 300 रुपए! आनंद रख लेते, किसी से पैसे को लेकर बहस नहीं करते। आनंद ने इस कोचिंग सेंटर में दो बच्चों को पढ़ाने से शुरुआत की और देखते-ही-देखते बच्चों की संख्या तेजी से बढ़ती चली गई और जगह कम पड़ने लगी। फिर आनंद ने एक बड़े हॉल की व्यवस्था की और 500 रुपए की सालाना फीस निश्चित कर दी।

एक बार आनंद के पास अभिषेक नाम का एक बच्चा आया और बोला- 'सर हम गरीब हैं, मैं पांच सौ रुपए आपको एक साथ नहीं दे पाऊंगा। किश्तों में दे सकूंगा, जब मेरे पिताजी खेत से आलू निकालेंगे और वे आलू बिक जाएंगे, तब।' अब सवाल पटना में रहने और खाने का खड़ा हुआ। उस बच्चे ने बताया कि वह एक नामी वकील के घर की सीढ़ियों के नीचे रहता है। इस घटना के 2-3 दिन के बाद जब आनंद वहां गए, तो देखा वह लड़का भरी दोपहरी में सीढ़ियों के नीचे पसीने से भीगा हुआ बैठा था और गणित की किताब पढ़ रहा था। इस घटना ने आनंद को झकझोर दिया। घर आकर आनंद ने अपनी माँ और भाई को उस बच्चे के बारे में बताया और कहा कि हमें ऐसे बच्चों के लिए भी कुछ करना चाहिए जिनमें पढ़ने की लगन है, लेकिन आर्थिक अभाव के चलते वे पढ़

नहीं पाते। माँ ने भी इस विचार में अपनी सहमति जताई। फिर प्रश्न यह खड़ा हुआ कि अगर साल में 30 ऐसे गरीब बच्चों को चुना भी जाए तो वे रहेंगे कहां, खाएंगे क्या? फिर आनंद ने एक मकान लेने की योजना बनाई ताकि सभी बच्चे वहां रह सकें। 30 बच्चों के लिए भोजन पकाने का काम आनंद की माँ ने अपने हाथ में ले लिया। इस प्रकार आनंद का सुपर-30 इंस्टीट्यूट खोलने का सपना पूरा हो गया।

सन 2002 में आनंद ने सुपर-30 की शुरुआत की और 30 बच्चों को नि:शुल्क आईआईटी की कोचिंग देना शुरू किया। पहले ही साल यानी 2003 की आईआईटी प्रवेश परीक्षाओं में सुपर-30 के 30 में से 18 बच्चों को सफलता हासिल हो गई। उसके बाद 2004 में 30 में से 22 बच्चे और 2005 में 26 बच्चों को सफलता मिली। इस प्रकार सफलता का ग्राफ लगातार बढ़ता गया। सन 2008 से 2010 तक सुपर-30 का परिणाम 100 प्रतिशत रहा।

सुपर-30 को मिल रही अपार सफलता से वहां के कोचिंग माफिया परेशान हो गए। उन्होंने आनंद पर मुफ्त में न पढ़ाने का दबाव डालना शुरू कर दिया। आनंद नहीं माने तो उन पर हमले किए गए, बम फेंके, गोलियां चलाईं और एक बार तो चाकू से हमला भी किया, लेकिन चाकू आनंद के शिष्य को लग गया। तीन महीने तक वह अस्पताल में रहा और इस दौरान सभी बच्चों ने उसकी खूब सेवा की और वह स्वस्थ हो गया।

आनंद कुमार के सुपर-30 को मिली अपार सफलता के बाद कई लोग सहयोग के लिए आगे आए। बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने आनंद को मदद की पेशकश की। प्रधानमंत्री तक की ओर से आनंद को मदद की पेशकश की गई लेकिन आनंद कुमार ने सुपर-30 के संचालन के लिए किसी से भी आर्थिक मदद लेने से इनकार कर दिया क्योंकि यह काम वे बिना किसी की मदद के खुद करना चाहते हैं। सुपर-30 का खर्च उनके कोचिंग सेंटर रामानुजम स्टडी सेंटर से चलता है।

आज आनंद राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंचों को संबोधित करते हैं। उनके सुपर-30 की चर्चा विदेशों तक फैल चुकी है। कई विदेशी विद्वान उनका इंस्टीट्यूट देखने आते हैं और आनंद कुमार की कार्यशैली को समझने की कोशिश करते हैं।

आनंद मानते हैं कि उन्हें जो भी सफलता मिली, उसका पूरा श्रेय

उनके छात्रों को जाता है। छात्रों की मेहनत और लगन को जाता है। जबकि आईआईटी में हर साल पास होने वाले उनके सभी शिष्य अपनी सफलता का पूरा श्रेय अपने गुरु आनंद कुमार को देते हैं। सुपर-30 आनंद कुमार जैसे गुरु व शिष्यों की लगन और कठोर परिश्रम का नतीजा है। आनंद कुमार को कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया जा चुका है।

आनंद कुमार मानते हैं कि सफल होने के लिए प्रबल प्रयास, सकारात्मक सोच, कठोर परिश्रम और धैर्य की जरूरत होती है।

सन 2003-2014 तक सुपर-30 के 360 बच्चे आईआईटी की प्रवेश परीक्षा में बैठे, जिसमें से 308 को सफलता मिली। यह आंकड़ा किसी भी कोचिंग सेंटर के लिए मिसाल है। न जाने कितने ही बच्चों के सपनों को साकार करने वाले आनंद कुमार का सपना है कि एक ऐसा स्कूल खोला जाए, जहां छठी कक्षा से छात्रों को गणित, भौतिकी और रसायन की शिक्षा दी जाए। यकीनन आनंद कुमार अपने इस सपने को भी जल्द पूरा कर लेंगे, क्योंकि आनंद जो सोचते हैं, उसे करने का सामर्थ्य भी रखते हैं।

बैक बेंचर में भी प्रतिभा होती है

'देश का सबसे अच्छा दिमाग, क्लास रूम की आखिरी बेंचों पर भी मिल सकता है।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

आम तौर पर विश्वविद्यालय में जाने को समय की बर्बादी मानने वाले लोग विरले ही होते हैं। अक्टूबर, 2011 में अपनी अकाल मृत्यु से पहले 'एप्पल' को दुनिया की 10 खरब डॉलर की पहली कंपनी बनाने वाले उत्कृष्ट सीईओ स्टीव जॉब्स ग्रेजुएशन की पढ़ाई के लिए सिर्फ छह महीने तक ही कॉलेज गए थे। दुनिया के दूसरे सबसे अमीर और माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स ने हार्वर्ड में इससे थोड़ा-सा ज्यादा वक्त गुजारा था।

अपने देश में देखें तो दिग्गज कारोबारी धीरूभाई अंबानी को किसी विश्वविद्यालय में दाखिले का मौका तक नहीं मिला। वे भारत के सबसे अमीर शख्स बने। गौतम अडाणी ने भी बीच में ही कॉलेज छोड़ दिया और अंबानी की तरह अरबपति बने। बेहद कामयाब उद्यमियों के ऐसे कई और भी उदाहरण हैं जिन्होंने विश्वविद्यालय की पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी थी।

ऐसे में अगर एम.सी. जयकांत की बात की जाए, तो वे भी उसी श्रेणी के छात्र थे, जिनको कमजोर कहा जाता है। वे औसत से भी कम के विद्यार्थी थे और प्राय: सभी विषयों में अनुत्तीर्ण हो जाया करते थे। फिर किसी प्रकार से उन्हें बोर्ड परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त हुए और वे एक निजी इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिला पाने में सफल रहे। अपनी पढ़ाई के तीसरे साल में जब छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे

डिजायन और फैब्रिकेशन की परियोजनाओं पर काम करेंगे, तो वे हमेशा कुछ अलग करना चाहते थे। उन्होंने अपनी पहली डिजायन और फैब्रिकेशन परियोजना के तहत पंखविहीन विंड टर्बाइन की अवधारणा प्रस्तुत की। कुछ दिनों बाद अपने एक मित्र एस. हरीश के साथ उन्होंने कॉलेज के सभा कक्ष में होने वाले एक प्रस्तुतिकरण को देखा। 'हम अंदर गए और वक़्त गुज़ारने के ख्याल से उस वातानुकूलित कक्ष की सबसे आखिरी कतार में बैठ गए। उसी दौरान हमारे विभाग के एक कर्मचारी ने हमें वहां बैठे हुए पकड़ लिया। उसे समझाने की कोशिश करते हुए हमने उससे यूं ही पूछ लिया कि क्या हम भी अपनी परियोजना यहां प्रस्तुत कर सकते हैं? 10 मिनट बाद वह व्यक्ति वापस आया और हमें मंच पर प्रस्तुतिकरण के लिए कहा। बहुत हिम्मत जुटा कर मैं मंच पर गया, 5 मिनट में अपना प्रस्तुतीकरण पूरा किया और वहां से भाग लिया। एक सप्ताह के बाद हमें पता चला कि हमारे प्रदर्शन को सबसे ज्यादा अंक और पूरी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।'

जयकांत बताते हैं जीवन में उनको यह पहली जीत मिली थी। इस ख़ुशी के मानस से उबरने और सामान्य होने में उनको लगभग एक सप्ताह लगा। इससे उनको सिर्फ इतना अहसास हुआ कि यह उनके जीवन में एक नए अध्याय की शुरुआत है। इस घटना ने जयकांत को आत्म-परीक्षण करने का रास्ता दिखा दिया और उन्होंने विभिन्न कॉलेजों द्वारा आयोजित इस प्रकार की सभी प्रतियोगिताओं में हिस्सा लिया। गोवा से वापस आते हुए अपनी एक यात्रा के दौरान जयकांत के मन में भविष्य को लेकर कई विचार आने लगे। चेन्नई पहुंच कर उन्होंने अपने विचारों को कागज पर उतारना प्रारम्भ कर दिया, फिर उन्होने अपनी दो परियोजनाओं के पेटेंट के लिए आवेदन किया। इससे लोगों का उनके प्रति नजरिया ही बदल गया। उन दो पेटेंट्स ने उनका पूरा जीवन ही बदल दिया।

पेटेंट प्राप्त करने के बाद जयकांत ने विचार करना शुरू किया कि अन्य विद्यार्थी अपने आप को सीमित क्यों रखते हैं और कुछ अभिनव क्यों नहीं सोचते हैं? कारणों का विश्लेषण करते हुए उन्हें यह अहसास हुआ कि इस का मूल कारण विद्यालय हैं। सभी विद्यालयों में हमें केवल पढ़ना सिखाया जाता है ना कि सीखना और कार्यान्वित करना। परीक्षाओं तथा अन्य दबावों के कारण हम सीखना भूल जाते हैं और परीक्षाओं और

अंकों के लिए केवल पढ़ाई करते हैं, जिससे हम सीखने का आनंद ही नहीं उठा पाते। इस सोच ने जयकांत को युवा पीढ़ी के लिए कुछ करने प्रेरित किया और उन्होंने निर्णय लिया कि वे युवाओं को सिद्धान्त रूप से सीखी गयी चीजों का प्रत्यक्ष अनुभव कराएंगे।

उन्होंने अपना यह विचार अपने कुछ मित्रों को बताया और वे लोग इसमें शामिल होने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। जयकांत बताते हैं- 'आगे चल कर हरीश के साथ उन्होंने 15 सितम्बर, 2013 को इंजीनयर दिवस के अवसर पर 'Infinite Engineers' की शुरुआत की। 'Infinite Engineers' व्यावहारिक विज्ञान की जानकारियों को रूट स्तर पर अनुभव आधारित सीख के तहत छात्रों को देता है, जिससे उन्हें अपना नवाचार और रचनात्मक कौशल बढ़ाने में मदद मिलती है। यह विद्यर्थियों को विद्युत, इलेक्ट्रॉनिक्स, रोबोटिक्स, मैकेनिकल, ऐरो मॉडलिंग, कम्प्यूटर साइंस और जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रशिक्षित करता है।

जयकांत और हरीश के अतिरिक्त एस. जयविघ्नेश, ए. किशोर बालगुरु और एन. अमरीश 'Infinite Engineers' के सह-संस्थापक हैं। वर्तमान में कई प्रशिक्षण केंद्र स्कूली छात्रों को रोबोटिक्स और ऐरो मॉडलिंग का प्रशिक्षण दे रहे हैं। 'लेकिन हमारा उद्देश्य विद्यालयी पाठ्यक्रम में अग्रणी रूप से व्यावहारिक प्रशिक्षण को समाहित कराना है, जिससे उनकी शिक्षा सम्पूर्ण हो सके। शिक्षा किताबों और श्यामपट के रूप में मात्र द्विआयामी बनकर ना रह जाए बल्कि शिक्षा को अनुभव किया जाना चाहिए।' जयकांत कहते हैं।

अभी तक कंपनी ने चेन्नई में 70-80 स्कूलों का दौरा किया है। इन में से 2 स्कूलों में 'Infinite Engineers' ने अपना प्रशिक्षण प्रारम्भ कर दिया है. जल्द ही ये अपना 'प्रयुक्त विज्ञान अनुसन्धान संस्थान' शुरू करने वाले हैं, जहां किसी भी स्कूल के विद्यार्थी इस प्रकार का प्रशिक्षण ले सकते हैं और उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से अपनी अवधारणाओं को व्यवहार में लाने का प्रयास भी कर सकते हैं, जो उन्हें अभिनव और रचनात्मक बनाने में सहायक होगा।

कोई भी नकारात्मक प्रतिक्रिया आपके जुनून को और मजबूत करती है। हम नकारात्मक टिप्पणियों से प्रेरणा लेते हैं। वे बीच में अपना अनुभव बताते हुए कहते हैं कि- 'हमारे एक साथी प्रोफेसर ने हमसे कहा कि

हमारा यह उद्यम एकदम अस्थायी होगा। बेहतर होगा आप कोई आईटी की नौकरी ढूंढ लो।' इन शब्दों ने हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए और मजबूत बनाया तो हमारी सफलता का कुछ श्रेय उन प्रोफेसर महोदय को भी मिलना चाहिए। कुछ ने तो मुझसे सवाल भी किया कि मेरे पास पढ़ाने के लिए क्या योग्यता है? लेकिन शायद उन्हें नहीं पता कि आखिरी बेंच पर बैठने वाला विद्यार्थी ही बेहतर जानता है कि विद्यार्थियों को बिना सुलाये कैसे पढ़ाया जाता है।' विज्ञान को आसान और व्यावहारिक बनाने का उनका यह प्रयास बहुत से 'बैक बेन्चर्स' की तकदीर बदल सकता है।

सफलता की निशानी आपका ऑटोग्राफ

> ***'जब हमारे सिग्नेचर (हस्ताक्षर), ऑटोग्राफ में बदल जाएं तो यह सफलता की निशानी है।'***
>
> **–डॉ. अब्दुल कलाम**

परिस्थितियां किसी के भी साथ न तो सदा अनुकूल रहती हैं न प्रतिकूल और न ही किसी एक वर्ग या व्यक्ति के किए बनती हैं। इसलिए सदा अनुकूलता की उम्मीद करना न केवल व्यर्थ है, अनावश्यक, अनुचित व हानिकारक भी है। उचित होगा कि अपनी साहसिकता, आत्मविश्वास और सहनशक्ति बढ़ाई जाए, जो अनिवार्य हो उसे धैर्यपूर्वक सहन करते हुए बुद्धिमत्तापूर्ण सोच-विचार कर निर्णय लेते हुए संकट का उचित व परिस्थितियों के अनुरूप संकट व समस्या का हल ढूंढा जाए, जो उचित हों वे उपाय सोचने और प्रयास करने में कोई कमी न रहने दी जाए, हर स्थिति में संतुलन बनाये रखा जाए, कठिनाइयों व मुसीबतों से डर कर नहीं, बल्कि अपनी प्रतिभा से हर हाल में बिना समय गंवाये उपाय निकालने में लग जाना ही साहस कहलाता है। साहस वह हथियार है, जो प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलना संभव बनाता है। सामान्यत: यही साहसी व्यक्ति का साथ देता है और लोग उसी के नेतृत्व में नये चुनौतीपूर्ण व गैर-पारम्परिक तरीके से कार्य को करने और सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। तब वह सभी लोगों की जीवनचर्या में किए जाने वाले कार्यों में सर्वाधिक महत्त्व पाता है और कई महत्त्वपूर्ण निर्णयों की शक्ति का केंद्रबिन्दु होता है।

जैसे जीवन के 84 बसंत देख चुके कैप्टन मोहन सिंह कोहली बने। कैप्टन मोहन सिंह मूलत: हरिपुर नामक एक पहाड़ी जगह के रहने वाले हैं।

खैबर पख्तूनख्वा के हजारा इलाके में बसा हरिपुर तरह-तरह के फलों के लिए विश्वप्रसिद्ध है। वर्ष 1931 में कैप्टन कोहली के जन्म के समय यह इलाका उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत के नाम से जाना जाता था। हरिपुर सिंधु नदी के मुहाने पर बना हुआ एक समृद्ध इलाका है। हरिपुर हिमालयन और काराकोरम पर्वतमाला से घिरा हुआ एक पहाड़ी शहर है, जहां की आबादी मुख्यत: ईसापूर्व 327 में सिकंदर की विजय के बाद उसके पीछे यहां रह गये ग्रीक सैनिकों के वंशजों से भरी हुई है। हालांकि आधुनिक हरिनगर की स्थापना 19वीं शताब्दी में हजारा के दूसरे निजाम महाराज रणजीत सिंह के बाशिंदे जनरल हरि सिंह नलवा के द्वारा की गई थी। कैप्टन कोहली बताते हैं- 'मेरे पूर्वज हरिपुर के सामने वाले पहाड़ की चोटी पर मारे गए थे और उसके बाद से वह जगह हमारे परिवार के लिए एक तीर्थ स्थान का दर्जा रखती है। जब मैं करीब साढ़े सात वर्ष का था, तब से मैं इंडस की सहायक नदियों को पार करते हुए इस पहाड़ी की चोटियों पर पहुंच जाता था और 16 वर्ष की उम्र का होने तक मैं बिना नागा ऐसा करता रहा।' अतीत के इतिहास से अपरिचित लोग हरिनगर को कुछ और वजहों से अधिक जानते हैं। दुनिया को दहलाने वाला आतंकी ओसामा बिन लादेन वर्ष 2004 में एबटाबाद, जो यहां से सिर्फ 35 किलोमीटर दूर है, जाने से पहले यहां पर एक अस्थायी निवास बनाकर रहता था। मजाकिया लहजे में वे कहते हैं- 'यह शहर चारों तरफ से पहाड़ियों से घिरा हुआ है। मात्र 15 मिनट के छोटे से अंतराल में आप कभी एक पहाड़ी के पीछे गुम हो सकते हैं फिर दूसरी और फिर तीसरी। मैं वर्ष 2004 में हरिपुर में ही था, लेकिन ओसामा से कभी मुलाकात नहीं हुई।'

हालांकि कैप्टन कोहली अपने जन्मस्थान पर अधिक समय तक नहीं रह पाए और 1947 में हुए विभाजन के फलस्वरूप उन्हें भी कई अन्य लोगों की तरह अपना घर छोड़ना पड़ा। उन दिनों की याद करते हुए कैप्टन मोहन सिंह कहते हैं- 'पाकिस्तान में रहने वाले कई लोगों को अपने पैतृक इलाकों को छोड़ना पड़ा। कई लोग तो भूल चुके हैं और कुछ के जेहन में धुंधली यादें अभी भी जिंदा हैं लेकिन मैं हरिपुर के साथ दिल से जुड़ा हुआ हूं, क्योंकि मेरे जीवन की तमाम उपलब्धियां हरिपुर की ही देन हैं।'

वर्ष 1947 में विभाजन के समय कैप्टन कोहली मात्र 16 वर्ष के नौजवान थे और हरिपुर भी दंगों की आग में झुलसने से नहीं बचा था।

उस समय तक मुस्लिम लीग बेहद मजबूत हो गई थी और साथ ही पाकिस्तान की मांग भी जोर पकड़ चुकी थी। उस दौरान इस उपमहाद्वीप में बगावत के सुर बढ़ते ही जा रहे थे। 'लगभग रोजाना ही सैकड़ों लोग मारे जा रहे थे। मैं उस समय पढ़ रहा था और मेरे परिवार में इस बात को लेकर बहस चल रही थी कि हमें तुरंत सबकुछ छोड़कर भाग जाना चाहिए या मेरी मैट्रिक की पढ़ाई पूरी होने का इंतजार करना चाहिए।' आखिरकार कैप्टन कोहली ने मार्च में अपनी पढ़ाई पूरी की और उनका परिवार भारत आ गया और तीन महीनों तक वे नौकरी की तलाश में भटकते रहे। 'मैंने नौकरी की तलाश में 500 से भी अधिक कारखानों और दुकानों के चक्कर काटे, लेकिन सबने नौकरी के लिए इनकार कर दिया।' ऐसे में उनकी इस झल्लाहट को और हवा मिली, जब 2 जून को ऑल इंडिया रेडियो ने घोषणा की कि मोहम्मद अली जिन्ना, जवाहर लाल नेहरु और सरदार बलदेव सिंह ने भारत के विभाजन की घोषणा कर दी है। यह सुनते ही कैप्टन कोहली और उनके पिता सरदार सुजान सिंह कोहली हरिपुर लौट गए। उस समय तक मैट्रिक का नतीजा भी आ गया था और कैप्टन कोहली ने 750 में से 600 अंक प्राप्त कर अपने जिले में पहला स्थान पाया था। अब एक नए देश के उद्गम के साथ ही एक युवा और साहसी नौजवान के लिए भविष्य के नए रास्ते खुल रहे थे। उन्हें लाहौर के प्रसिद्ध सरकारी कॉलेज, जिसे अब गर्वनमेंट कॉलेज यूनिवर्सिटी के नाम से जाना जाता है, में दाखिला मिल गया। 'लेकिन यह खुशी सिर्फ एक सप्ताह तक ही रही।' अचानक बिना किसी वजह के आसपास के गांवों के लोगों ने हरिपुर पर हमला कर दिया। पूर्व में एक बार महान सिकंदर इस सभ्यता को जलाकर राख कर चुका था, यहां के निवासियों को मरने के लिए छोड़ चुका था और हरिपुर के लोग अपने लोगों के द्वारा दोबारा मारे जाने का दंश झेलने को तैयार नहीं थे। 'हम एक छत से दूसरी छत पर भागते रहे। हम पूरी रात छतों-से-छतों पर कूदते रहे और किसी तरह थाने तक पहुंचे। लोगों को मौके पर ही मारकर उनके सिर उनके घरों के बाहर लटका दिये गए।' कैप्टन कोहली और उनके पिता एक खानाबदोश की तरह एक कैंप से दूसरे कैंप में भटकते रहे और आखिकार वे हसन अब्दल में स्थित सिक्खों के पवित्र धर्मस्थान पंजाब साहिब में पहुंचे। वहां पर एक महीना बिताने के बाद उन्हें भारत जा रहे सैकड़ों शरणार्थियों के

साथ एक मालगाड़ी में लाद दिया गया। 'हमारे ऊपर स्थानीय पुलिस द्वारा हमला किया गया। ट्रेन में मौजूद 3000 लोगों में से लगभग 1 हजार की साजिशन हत्या कर दी गई।' इस खूनी माहौल के बीच अचानक एक और ट्रेन आकर रुकी, जिसमें बलूच रेजीमेंट के जवान भरे हुए थे और तभी उस ट्रेन से कुछ समय पहले ही पाकिस्तान सेना में शामिल हुआ मोहम्मद अयूब खान धड़धड़ाता हुआ बाहर निकला।

आगे चलकर पाकिस्तान का राष्ट्रपति बनने वाला अयूब खान प्रारंभिक दिनों में हरिपुर में कोहली परिवार का पड़ोसी हुआ करता था। उसे पहचानते ही सरदार सुजान सिंह जोर से चिल्लाए- 'अयूब, हमें बचाओ!' कैप्टन कोहली याद करते हुए कहते हैं कि खान ने तुरंत जवाब दिया- 'डरो मत सुजान सिंह। मैं आ गया हूं।' इसके लगभग एक दशक बाद पाकिस्तान में तख्ता पलटकर तकदीर बदलने वाले इस इंसान ने उन्हें गुजरांवालां तक का सुरक्षित रास्ता दिखाया और कई अन्य हमलों से बचते-बचाते आखिरकार वे लोग अक्टूबर में मध्य तक दिल्ली पहुंचने में सफल रहे। 'हमने अपने जीवन को दोबारा एक नए सिरे से शुरू किया। हमारी जेब में एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी और हम वास्तव में नंगे पांव और चिथड़ों में लिपटे हुए थे।'

कैप्टन कोहली कहते हैं- 'मैं 6 बार हरिपुर की यात्रा कर चुका हूं।' आखिरी बार मैं वहां अयूब खान के बेटे के अतिथि के रूप में गया था और मैं उनके स्मारक पर श्रद्धांजलि देने भी गया। मैंने उनके समारक पर बुदबुदाया, 'आपने मेरी जिंदगी बचाई है। यह हरिपुर की मेरी अंतिम यात्रा है।'

हालांकि आज भी हरिपुर कैप्टन कोहली को बेशुमार स्नेह और प्रेम करता है। वे कहते हैं- 'मेरे ख्याल से गांवों में रहने वाले लोग अभी भी मानते हैं कि भारत और पाकिस्तान को अलग नहीं होना चाहिये था। ये नेता थे, जिनकी वजह से ऐसा हुआ।' हालांकि इस बात को आधी सदी से भी अधिक का समय हो चुका है, जब कैप्टन कोहली ने अपने मूल स्थान हिमावत के इलाके को छोड़ा था, लेकिन उनका सबसे अधिक लगाव अभी भी भारत, पाकिस्तान और नेपाल के ताज हिमालय में ही बसा हुआ है। भारतीय नौसेना में शामिल होते समय उन्हें बताया गया कि वे प्रत्येक दो वर्षों में भारत में घोषित किए हुए अपने गृहनगर में जा सकते हैं। 'मैंने कश्मीर घाटी में स्थित पहलगांव को अपना गृहनगर घोषित किया और

पहली बार वर्ष 1955 में वहां गया।' इस तरह से हिमालय दोबारा मेरे जीवन में वापस आ गया था।

फिर एक दिन कैप्टन कोहली ने जमीन से लगभग 12 हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित प्राचीन अमरनाथ की गुफा के दर्शन करने का फैसला किया और सिर्फ एक सूट और टाई पहने बिना गर्म कपड़ों के एक नौसैनिक गुफा तक पहुंचने में कामयाब रहा। 'इस तरह से मैं एक पर्वतारोही बन गया।'

इसके बाद कैप्टन कोहली को कभी पीछे मुड़कर देखने की नौबत नहीं आई। वर्ष 1956 में उन्होंने नंदा कोट की चढ़ाई की। 17287 फीट पर स्थित प्राचीन दरारों, दर्रों और पानी के चश्मों के बीच से बहती जानलेवा तूफानी हवाओं से गुजरते हुए एक दुर्गम शिखर पर विजय पाना 50 के दशक में एक रहस्यमय आकर्षण के साथ दु:साहस था। ईश्वर का घर माने जाने वाले स्थान से दुनिया देखने वाले प्रारंभिक कुछ लोगों में से एक के लिए यह मौत को चुनौती देते हुए इतिहास बनाने वाला पल था।

वर्ष 1963 में अन्नपूर्णा 3 की यात्रा का अनुभव कैप्टन कोहली की यादों में सबसे खतरनाक है। वे बताते हैं- 'स्थानीय लोगों ने हमें लूटने के अलावा हमारे दो साथियों को बंधक बना लिया था, लेकिन आखिरकार हम वापस आने में कामयाब रहे।' कुछ अभियानों को सफलतापूर्वक अंजाम देने के बाद कैप्टन कोहली को महसूस हुआ कि अब वे एवरेस्ट की चढ़ाई के लिए तैयार हैं।

वर्ष 1965 में अपने सफल अभियान से पहले कैप्टन कोहली दो बार इस शिखर तक पहुंचने की नाकामयाब कोशिशें कर चुके थे। एक बार सिर्फ 200 मीटर से और दूसरी बार वर्ष 1962 में सिर्फ 100 मीटर से चूक गए। एक क्षण तो ऐसा आया था, जब बेहद भयानक बर्फीले तूफान में दूसरे शिविरों के साथ संचार टूटने के बाद उनकी टीम को मृत घोषित कर दिया गया था, पर वे पूरे पांच दिन बाद जीवित वापस लौटने में सफल रहे।

आखिरकार वर्ष 1965 में कैप्टन कोहली ने एवरेस्ट फतह करने की दिशा में एक ऐतिहासिक अभियान का नेतृत्व किया। उनका यह अभियान भारत को इस बेहद दुर्गम चोटी को जीतने वाला चौथा देश बना देता। 'हमारे पास 800 कुली और 50 शेरपा थे। शिखर पर हम कुल 9 लोग पहुंचे और यह एक नया विश्व रिकॉर्ड था।' बीते पांच वर्षों में यह भारत

द्वारा एवरेस्ट फतह के लिए किया गया पहला प्रयास था। इससे पहले वर्ष 1963 में आंग शेरिंग ने एक अमेरिकी अभियान के दौरान शेरपाओं का नेतृत्व किया था। आखिरकार वर्ष 1965 में उस विशेष दिन देश भर के विभिन्न हिस्सों से लाए गए 25 टन सामान के साथ कैप्टन कोहली एवरेस्ट के शिखर पर पहुंचने में कामयाब रहे।

कोहली इस जीत का श्रेय सभी को देते हुए बताते हैं- 'यह टीम सिर्फ अपनी साहस और धैर्य के चलते इस सफलता को हासिल कर पाई और हर कोई पूरे श्रेय का हकदार था। इसी वजह से जब भारत सरकार ने हमें अर्जुन पुरस्कार देने की घोषणा की तो हमने मना कर दिया। या तो यह पुरस्कार पूरी टीम को दिया जाए, वर्ना किसी को भी नहीं।'

आज के समय में अगर आप एवरेस्ट फतह करके लौटें तो सिर्फ आपके मिलने वाले और परिवारजन ही आपका स्वागत करते हैं लेकिन कैप्टन कोहली के समय में एवरेस्ट की चोटी पर देश का झंडा फहराना ऐतिहासिक क्षण था। इसलिए एयरपोर्ट पर उन सभी का स्वागत विशाल जनसमूह द्वारा किया गया था और उनको संसद के दोनों सदनों को संबोधित करने के लिए कहा गया था। कैप्टन कोहली का यह अभियान कई मायनों में ऐतिहासिक था। इस अभियान में एवरेस्ट पर चढ़ने वाले सबसे उम्रदराज व्यक्ति 42 वर्षीय सोनम ग्यात्सो और सबसे कम उम्र में व्यक्ति 23 वर्षीय सोनम वाग्याल भी शामिल थे। इनकी टीम के एक और सदस्य शेरपा नवांग गोम्बु इस दु:साध्य शिखर को दूसरी बार सफलतापूर्वक जीत रहे थे। उनकी यह यात्रा 25 फरवरी से लेकर मई के आखिर तक यानी तीन कठिन महीनों तक लंबी रही थी।

इस टीम के सदस्यों के रूप में कैप्टन एम.एस. कोहली, लेफ्टिनेंट कर्नल एन. कुमार, गुरदयाल सिंह, कैप्टन ए.एस. चीमा, सी.पी. वोहरा, दावा नोरबू प्रथम, हवलदार बालकृणन, लेफ्टिनेंट बी.एन. राणा, आंग शेरिंग, जनरल थोंडुप, धानु, डॉ. डीवी तेलंग, कैप्टन एके चक्रवर्ती, मेजर एच.पी.एस. आहलूवालिया, सोनम वांग्याल, सोनम ग्यात्सो, कैप्टन जेसी जोशी, नवांग गोम्बू, आंग कामी, मेजर बी.पी. सिंह, जीएस भंगू, लेफ्टिनेंट बी.एन. राणा, मेजर एचवी बहुगुणा और रावत एच.सी.एस. ने इतिहास बना दिया था।

अपनी इस उपलब्धि से उत्साहित कैप्टन कोहली ने बड़े स्तर पर हिमालय में ट्रेकिंग को बढ़ावा दिया। हालांकि कुछ दशकों के बाद कैप्टन कोहली

को बताया गया कि इस क्षेत्र में उनके द्वारा दर्शाया गये अति उत्साह नतीजा बहुत भयावह रहा। कैप्टन कोहली इस पर अफसोस करते हुए कहते हैं- 'हिमालय आज कचरे के ढेर से भर गया है। यह पतन की पराकाष्ठा है, वनावरण घटकर लगभग आधा रह गया और अधिकतर पहाड़ पूरी तरह से शवों से अटे पड़े हैं। कई बार मैं खुद को इन सबका दोषी मानता हूं।'

देश और दुनिया में हुए अभूतपूर्व व्यावसायीकरण के चलते हिमालय की समूची पर्वतश्रृंखला आज किसी पर्यटन स्थल से अधिक कुछ नहीं रह गई है। कैप्टन कोहली कहते हैं- 'हिमालय को बचाने के लिए मैंने हिमालय की यात्रा का हिस्सा रहे स्व. सर एडमंड हिलेरी, हरजोग, जुंकों सहित कई अन्य से संपर्क साधा।' इन सबसे मिलकर हिमालय की चोटियों को और विनाश से बचाने के दिशा में पहल करते हुए हिमालयन एनवायरमेंट ट्रस्ट की स्थापना की। ये पर्वतारोही अपनी राय देते हुए बताते हैं- 'उस जमाने में बहुत कम अभियान हुआ करते थे। वर्तमान में आपको मानसून से पहले और बाद में 30 के करीब अभियान देखने को मिलते हैं। यह अब पैसे कमाने का साधन बन गया। आप लोगों को हिमायल की चोटियों पर पहुंचने के लिए कतारों में लगा हुआ देख सकते हैं। यहां तक कि अगर आप शारीरिक रूप से भी सक्षम नहीं हैं, तो भी आप 20-25 लाख रुपये खर्च करके वहां पहुंचकर कुछ शेरपाओं को अपने साथ मिलाकर और उपकरण खरीदकर यात्रा पूरी कर सकते हैं।'

'माउंट एवरेस्ट पर लगातार हो रहे इन अभियानों के मद्देनजर मैं और सर एडमंड हिलेरी बीते कई वर्षों से सिर्फ एक ही बात दोहराते आ रहे हैं कि एवरेस्ट को कुछ आराम दो लेकिन गरीब देशों के लिए पैसा आखिरकार पैसा ही है। उन्हें लगता है कि हम सिर्फ भौंक रहे हैं और इसी वजह से समस्या लगातार विकराल होती जा रही है। आप कुछ नहीं कर सकते।'

कैप्टन कोहली के लिए हिमालय को इस दुर्दशा की ओर धकेले जाते देखना बेहद दर्दनाक है। उनके लिए कभी यह जगह एक बेहद शांत और उग्र दोनों तरह का स्थान होता था, जिसने उन्हें 18 बार मौत का सामना करने के लिए मजबूर किया था।

वे कहते हैं- 'आपको उस समय डर नहीं लगता, जब आप ऊंची पहाड़ियों पर पहुंच जाते हैं, तो आपको ऐसा लगता है कि आप आसमान को छू रहे हैं। आपको महसूस होता है कि आप ईश्वर के बिलकुल नजदीक

हैं और आप भौतिकवादी दुनिया से बिलकुल कट गये हैं।'

कैप्टन कोहली यादों में खोते हुए एक बार फिर बताते हैं- 'वर्ष 1962 में, हमने तीन बार अपनी अंतिम प्रार्थना कर ली थी और हम अपनी स्थाई कब्रों को देख पा रहे थे लेकिन किसी को कोई चिंता नहीं थी। यह सब जीवन का एक हिस्सा है और जब आप ऐसी ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ते हो तो आप भी इन प्राकृतिक ताकत का एक हिस्सा हो जाते हो।'

उम्र के इस पड़ाव पर आकर अब उनका खुद का पोता उन्हें एवरेस्ट पर जाने की इजाजत के लिए मनाने के प्रयास करता रहता है। हालांकि इस पर्वतारोही के अपने कुछ कारण और शर्त हैं। 'मैं कहता हूं कि अगर आपको जाना ही है तो उचित तरीके से जाओ। भारत में पांच पर्वतारोही संस्थान हैं। आप पहले वहां जाकर पूर्ण रूप से प्रशिक्षित बनिए और फिर समय मिलते ही कम-से-कम एक अभियान का तो हिस्सा बनिए। इसके बाद उच्च प्रशिक्षण का रुख करते हुए फिर एवरेस्ट के अभियान के बारे में विचारिये।' अंत में कैप्टन कोहली कहते हैं, 'मैं यह मानता हूं कि जो देश अपने नागरिकों को साहसिक कामों के प्रति उत्साहित नहीं कर पाता, वह कभी तरक्की नहीं कर सकता। इसलिए अगर किसी मुल्क को तरक्की की राह पर आगे बढ़ना है, तो उसे अपने नागरिकों को साहसिक कामों के प्रति जागरूक करना होगा। साहसिक कार्यों की तलाश में लोग एक स्थान से दूसरे को ट्रेकिंग, वाइट वाटर राफ्टिंग या चढ़ाई करने जाते हैं। यह सदा से ही होता आया है लेकिन जो लोग इनका हिस्सा नहीं बने हैं, उनके लिए तो हम बुरे लोग हैं और हम एक बेकार के काम में लगे हुए हैं। मेरी देश को सलाह है कि आप स्कूली बच्चों को भ्रमण के लिए हिमालय पर जरूर भेजें। एक बार साहसिक कार्यों से सामना होने के बाद आप उनके जीवन में सकारात्मक बदलाव देखने में सफल होंगे।

आंतरिक शक्ति को याद रखें

'जब हम दैनिक समस्याओं से घिरे रहते हैं तो हम उन अच्छी चीजों को भूल जाते हैं जो कि हम में हैं।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

स्वयं से स्वयं की पहचान यानी आंतरिक शक्ति का साक्षात्कार। आंतरिक शक्ति मनुष्य की जीवंत शक्ति होती है, जिसके बल पर वह ऐसे कार्य कर लेता है, जो आश्चर्यजनक होते हैं। यदि मनुष्य दृढ़ निश्चय कर ले तो वह किसी भी काम को आसानी से कर सकता है। सर्वप्रथम आवश्यकता स्वयं को पहचानने की है। मनुष्य जीवन में दो सीढ़ियों में से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। वे दो सीढ़ियां हैं-सफलता और असफलता। कुछ मनुष्य जो प्रारंभ से ही जीवन को सफल बनाने के कार्य में जुट जाते हैं, वे अपने गुणों में वृद्धि करते हुए सफलता की सीढ़ी पर चढ़ते चले जाते हैं। उनमें जीवनपथ में आने वाली बाधाओं को पार करने की क्षमता होती है। वे बड़ी-से-बड़ी बाधा को आसानी से पार कर जाते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि यही बाधाएं उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। असफलता भी मनुष्य को सफलता के लिए प्रेरित करती है। ठोकर लगने पर मनुष्य संभलकर चलता है, ठीक उसी प्रकार जब किसी मनुष्य को किसी कार्य में असफलता मिलती है, तो वह उसे और सही ढंग व उत्साह से कार्य करने की प्रेरणा देती है, लेकिन केवल उन लोगों को जो सफलता प्राप्त करना चाहते हैं।

नए सिरे से शुरू होने वाला समय कोई तय समय नहीं है और डिबॉक्स की संस्थापक चीलू चंद्रन का मानना है कि अगर आप में अपनी परिस्थिति

का सामना करने की इच्छा और साहस हो, अपने-आप को आप स्वीकार करते हैं, तो आप जीवन की किसी भी चीज से पार पा सकते हैं लेकिन एक समय ऐसा था, जब चीलू में ऐसा साहस नहीं के बराबर था।

वे अपने उन दिनों की याद करते हुए बताती हैं- 'मैंने कभी भी अच्छी तरह आइना नहीं देखा। मैं उस पूरी जमीन से घृणा करती थी, जिस पर मैं चलती थी और मैं सोचती थी कि मैं धरती माँ पर सबसे बड़ी बोझ हूं, क्योंकि मैं अनुपयोगी और कोई अच्छा काम कर सकने में असमर्थ हूं। मैं अपने साथ घटने वाली हर बुरी चीज के लिए खुद को दोष देती थी और सोचती थी कि मैं इसी लायक हूं और जीवन में जो अच्छी चीजें घटती थीं, उनके लिए मैं या तो किसी दूसरे को श्रेय देती थी या फिर महज भाग्य को।'

चीलू की कहानी पूरी दुनिया में ऐसी अधिक-से-अधिक महिलाओं से कहने की जरूरत है, जिन्हें लगता हो कि यह उन्हीं के जीवन को व्यक्त कर रही हैं।

उनका जन्म दिसंबर 1963 में एक सामान्य औसत मध्यमवर्गीय तमिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था और उनके जन्म के समय लड़की के जन्म लेने की ही कामना की गई थी, क्योंकि वह अपने भाई से साढ़े-तीन साल छोटी थीं। जिस दिन उनका जन्म हुआ था, उस दिन उनके पिताजी मदुरई के मीनाक्षी मंदिर में एक बेटी के लिए सच्चे दिल से प्रार्थना कर रहे थे।

उनके माता-पिता परंपरावादी, लेकिन अपने समय से आगे देखने वाले लोग थे। उनकी माँ एक गृहिणी थीं, जो बाद में अल्टरनेटिव हीलिंग के क्षेत्र में अग्रणी बन गई थीं। उनके पिता की स्थानांतरण वाली नौकरी थी, इसलिए उनकी शिक्षा-दीक्षा बंगलौर और चेन्नई में हुई। बाद में, 1985 में वे लोग मुंबई आ गए, फिर चीलू का पहला विवाह हुआ। चीलू ऑफ बीट कैरियर की राह पर जाना चाहती थीं, लेकिन स्नातक के बाद माता-पिता की विवाह कर देने की इच्छा के आगे उन्हें झुकना पड़ा। उनके टीटोटलर पति ने विवाह के 4 वर्षों तक उनके साथ शारीरिक हिंसा ही नहीं की, बल्कि कार्यस्थल पर भी उनकी प्रतिष्ठा को आंच पहुंचाई।

उसी स्थिति में उन्होंने एक बेटी को जन्म दिया, जो 72 घंटे के बाद चल बसी। जब दूसरी बार वह गर्भवती हुई तो पति ने गर्भपात नहीं कराने पर उनकी हत्या कर देने की धमकी दी। चीलू अपनी दुर्दशा किसी को

बताने से डरती थीं; इसलिए चीजें उसी तरह चलती रहीं जब तक कि एक रात को वह भाग नहीं खड़ी हुई। अंततः उन्होंने तलाक ले लिया। वे अब मुक्त थीं, लेकिन अंदर से उनका अस्तित्व हिल गया था।

पहला विवाह असफल होने के बाद चीलू ने दूसरा विवाह किया, लेकिन वह भी पहले से भी अधिक दुखदायी रहा।, वहीं दूसरा विवाह सेक्सुअल दृष्टि से ही अपमानजनक नहीं था, भावनात्मक और मानसिक दृष्टि से भी अशक्त बना देने वाला था।'

शारीरिक हिंसा शरीर पर अस्थायी या स्थायी निशान छोड़ती है, लेकिन भावनात्मक और मानसिक हिंसा तो आपको अकिंचन स्थिति में, एक बड़े शून्य की स्थिति में धकेल देती है। चतुराई से की गई मानसिक हिंसा की पहचान भी करना मुश्किल है। इसे पहचानने में उनको वर्षों लग गए और कठिन आत्मानुसंधान करना पड़ा।

तलाक के एक वर्ष के बाद एक मित्र के जरिए उनकी मुलाकात एक अन्य व्यक्ति से हुई, जिसमें उन्हें वह सब दिखा, जो उनके पहले पति में नहीं था। वह उसके प्यार में पड़ गई और उससे उन्होंने विवाह कर लिया।

इस बारे में वह कहती हैं- 'मैं इस बार विवाह के लिए उत्सुक थी, क्योंकि मैं अपनी सफलता और योग्यता की अनुभूति को पति का साथ होने के जरिए मापती थी। ऊपर से, मेरे ऊपर तलाकशुदा का ठप्पा लगा था। मेरे बारे में दुनिया क्या सोचती?'

इस बार उनका पति एक कंट्रोल फ्रीक में बदल गया, जो उनकी जिंदगी का सारा कुछ तय किया करता था - क्या पहनना है, किससे बोलना है और कैसे रहना है। वह चाहता था कि वह सलीके से कपड़े नहीं पहनें ताकि पुरुष उनकी ओर आकर्षित नहीं हों।

चीलू ने उसके साथ भारी भय की मानसिकता में 10 वर्ष गुजारे। पहले तलाक हो चुका था, इसलिए वह अपने पक्ष में कुछ बोलने का साहस ही नहीं कर पाती थीं। वह संतुलन बनाकर चलने और विवाहिता बने रहने के लिए बाध्यता महसूस करती थीं।

जब उनका तीसरा बच्चा अर्थात् दूसरी बेटी गर्भ में थी, उनकी रीढ़ के निचले हिस्से की एक हड्डी खिसक गई और उनका कमर से नीचे का संवदेनहीन हो गया। एकमात्र विकल्प सर्जरी था, जिससे उनके पूरी तरह ठीक होने की 50 प्रतिशत संभावना थी, लेकिन गर्भस्थ शिशु को

जोखिम था। चीलू ने जोखिम उठाया। सौभाग्यवश, बच्चा बच गया, लेकिन फिर से चलना शुरू करने के लिए उन्हें डेढ़ वर्षों तक पूरा प्रयास करना पड़ा। उसके बाद उनके मुंह और गर्दन को लकवा मार गया और वह दो सप्ताह तक पड़ी रहीं।

ठीक होने में लंबा समय लगने वाला था। चीलू शारीरिक तौर पर सक्रिय थीं, लेकिन उनकी रीढ़ अभी भी कमजोर थी और वे कभी भी बिस्तर पर पड़ जाती थीं, लेकिन उन्होंने पड़े रहना नामंजूर कर दिया और धीरे-धीरे व्यायाम करने लगीं।

उस घने अंधेरे में आशा की किरण उनके बच्चे ही थे, लेकिन एक दिन अपने बच्चों के लिए शक्ति का स्रोत साबित होने वाले अपने बचे-खुचे विवेक को बचाने के लिहाज से उन्होंने उन्हें साथ लिया और घर छोड़ दिया। चीलू अपने द्वारा उठाए इस कदम के लिए बताती हैं- 'वे अपने बच्चों को उदाहरण देकर सिखाना चाहती थीं कि उन्हें अपनी क्षमताओं के लिए अपने बूते खड़ा होना चाहिए और अपने ऊपर विश्वास करना चाहिए। साथ ही, वे ऐसी माँ नहीं बनना चाहती थीं, जो अपना सब कुछ कुर्बान कर दे और उसके बाद उसके लिए बच्चों को भविष्य में सताए।'

इस अलगाव के बाद चीलू फिर से अपने प्रारंभिक नामराशि को स्वीकार कर उसके अनोखेपन को सेलिब्रेट कर सकीं। अन्यथा पहले विवाह के दौरान उनके सास-ससुर उनके चीलू नाम को पचा नहीं पा रहे थे, इसलिए उन लोगों ने उनका नाम बदलकर 'राजलक्ष्मी' कर दिया, जो संक्षिप्त होकर 'लक्ष्मी' हो गया। दूसरे विवाह के दौरान उनके नाम को लेकर नाक-भौं सिकोड़ी गई और उत्तर भारत की वैवाहिक परंपरा के अनुसार उनका नाम बदलकर 'शालिनी' कर दिया गया। हालांकि यह बेकार की कवायद थी, क्योंकि हर कोई उनको चीलू ही कहकर बुलाया करता था।

जब चीलू ने दूसरे पति का घर छोड़ा, तो उनके पास न पैसा था, न उचित काम और न ही उनके परिवार का समर्थन। उन्हें तो यह भी पता नहीं था कि अगली बार भोजन कैसे होगा। उन्होंने शांति की खातिर नाम मात्र के निर्वाह भत्ते पर मामला तय कर लिया, क्योंकि उनके पास मुकदमा लड़ने की क्षमता नहीं थीं। वह गहरे अवसाद (डिप्रेशन) में चली गई, सिगरेट और शराब की बुरी लत में पड़ गई और आत्महत्या की मानसिकता

में पहुंच गई। उन्होंने बच्चों को बोर्डिंग स्कूल में भेज दिया, जिससे कि वह खुद की तलाश कर सकें।

एक दिन वह आत्महत्या की नीयत से अपने भवन के 19वें तल्ले पर चढ़ गई, वह सदमे में थीं। जैसे ही वह कूदने के लिए मुंडेर पर चढ़ीं, वैसे ही किसी ने उनको धक्का देकर पीछे गिरा दिया। वह अचानक 'जाग गई' और उनको महसूस हुआ कि इतनी मजबूत होकर भी वह ऐसी कायराना हरकत क्यों कर रही हैं। तभी अच्छी हो या बुरी, कारगर हो या नाकारा, उन्होंने अपनी जिंदगी को बदलने और अपने बच्चों के साथ रहने का फैसला लिया।

उसी समय से चीलू के लिए चीजें बदलने लगीं। वह किताबें पढ़ने और शोध करने लगीं, आध्यात्मिक आयोजनों में शामिल होने लगीं और उपचार के सत्रों में भाग लेने लगीं। उन्होंने अपने दर्द को समझने का प्रयास किया। यहां तक कि उन्होंने खुद को पत्र लिखना शुरू कर दिया।

धीरे-धीरे चीलू ने अपने जीवन कौशलों को विकसित किया और हम लोग जिसके जरिए जीते हैं, उस पर सवाल करने और उसे अनुकूलित करने लगीं।

वे कहती हैं कि जिन बातों को हम प्यार करते हैं, उनको चुनौती देने से मुझे अवसाद से बाहर आने में मदद मिली। मैंने महसूस किया कि मैं बुरी व्यक्ति नहीं हूं और जीवन में अच्छी चीजें हासिल करना मेरे लिए लाजिमी है। मैंने खुद को पूर्णतः व्यर्थ समझना बंद कर दिया। अपने बच्चों के निःशर्त प्यार और विश्वास ने मुझमें आत्ममूल्य की भावना को बढ़ा दिया।

हालांकि ऐसे भी दिन आए, जब चीजों में गिरावट आई। एक दिन उन्होंने अपने कष्टों का अंत शराब में करना चाहा और यह सब खत्म करने के लिए खिड़की का सहारा लेना चाहा, लेकिन किसी तरह वह चिल्लाई, हंसीं तथा खुद से बातचीत करती सो गई। दूसरी सुबह जब उनकी नींद खुली, तो उन्हें महसूस हुआ कि जिन सवालों के जवाब वह चाह रही थीं, वे तो उनके अंदर ही मौजूद हैं। इस अनुभूति ने उनको अपने अंदर से ताकत पाने और प्रेरणा प्रदान करते रहने में मदद की।

इस दौरान कुछ वर्षों के अंदर ही उन्होंने कई प्रकार के नृत्य सीखे और एक शो में उन्होंने 8 तरह के नृत्य किए।

बाद के वर्षों में वह दौड़ वाले एक समूह में शामिल हो गई और उन्होंने पहले मुंबई हाफ मैराथन में भाग लिया। सब कुछ अच्छा चलता लग रहा था, तभी 2013 में उनके शरीर के दायें हिस्से को लकवा मार गया।

अब तक उन्होंने जिन मुसीबतों का सामना किया था, उनमें यह सबसे बुरा था। उनका दिमाग भी इससे प्रभावित हुआ था। उनके दाहिने हाथ का हिलना-डुलना रुक गया और दायीं आंख से दिखना बंद हो गया। उनका चलना घिसटने में बदल गया और उनकी आवाज बंद हो गई। उन्हें किसी बच्चे की तरह जिंदगी की फिर से शुरुआत करनी पड़ी, लेकिन आज कठिन परिश्रम के जरिए चीलू के शरीर के अधिकांश अंग हरकत करने लगे हैं।

वे मुस्करा कर कहती हैं- 'आपको एक ही व्यक्ति बदल सकता है और उसे बदलना भी चाहिए- वह खुद आप हैं। आपको सिर्फ एक व्यक्ति को बदलना है और वह आप खुद हैं, क्योंकि आपके बदलने पर आपके आसपास की भी हर चीज बदलने लगेगी। हम लोगों को महसूस करने की जरूरत है कि हमारे पास हमेशा विकल्प होते हैं और इस नियम का कोई अपवाद नहीं है।'

'डिबॉक्स' की शुरुआत दुनिया में अंतर लाने के लिहाज से की गई थी। बीमारी के कारण चीलू की याददाश्त बहुत कमजोर हो गई थी और अपने आसपास की हर चीज उन्हें विचित्र और नई लगती थी। अपने तीक्ष्ण भावनात्मक क्षणों में वे पूछा करती थी कि इस पूरे प्रकरण का मेरे लिए क्या संदेश है? और पहली बात जो दिमाग में कौंधी, वह एक पुस्तक के रूप में आई, जिसे उन्होंने लिखा है। हालांकि वह किताब अभी प्रकाशित नहीं हुई है।

उनके दिमाग में दूसरी बात एक वेंचर शुरू करने के बारे में कौंधी जो लोगों को उनकी सोच की सीमाओं से आगे जाकर सोचने और कुछ करने में उनकी मदद करे। प्यार के बजाय डर में जीने के लिए अनावश्यक रूप से अनुकूलित दिमागों के पूर्वकल्पित विचारों के दायरे को तोड़ने में लोगों की मदद करना भी एक जरिया था। इस संबंध में वे कहती हैं कि हमें चाहिए कि हम गढ़े सांचे के अंदर ही सोचते और जीवन जीते नहीं रहें वरन उस सांचे को तोड़ डालें। इसी कारण उसे 'डिबॉक्स' नाम दिया गया। इसका श्रेय वह अपने एक मित्र को देती हैं, जिनके दिमाग में लंच सेशन के दौरान सोच-विचार के क्रम में यह नाम आया था।

'डिबॉक्स' के प्रशिक्षण का लक्ष्य व्यक्तिगत संकट से गुजर रहे लोगों को स्वास्थ्यप्रद बातचीत, परिचर्चा और भोजन उपलब्ध कराकर उनकी जिंदगी आसान बनाना है। इनकी कार्यशालाएं और परिचर्चाएं प्रचुरता के सिद्धांत पर आधारित होती हैं, जिनका मकसद इस बात की समझ विकसित करना होता है कि प्रचुरता का वास्तविक आशय क्या है। आत्मप्रेम, स्वार्थ, आत्मकेंद्रण आदि अच्छे गुण क्यों हैं, जैसे विषयों पर भी चर्चा की जाती है।

'डिबॉक्स' द्वारा किसी की कहानी कहने के जरिए भी अपना दृष्टिकोण रखा जाता है। छोटे समूहों में व्यक्तिगत कहानियों के बारे में बातें करना, भावों को प्रकट कराने वाला हो सकता है और बड़ा बदलाव ला सकता है। तीसरा पक्ष है उनके द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली अनेक प्रकार की खाने की चीजें, जो लोगों का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रखती हैं। चीलू ने अनेक प्रकार के मेवे, सीड बटर तथा ऑर्गेनिक मुसली विकसित किए हैं। उनकी योजना धीरे-धीरे उनके पूरे रेंज के विकास की है।

'यह तो महज शुरुआत है,' चीलू कहती हैं। 'यह ऐसा समय है कि हम रोग के बजाय स्वास्थ्य पर, उदासी के बजाय आनंद पर और डर की बजाय प्यार पर अपना ध्यान केंद्रित करें। जो हम देते हैं, वही हमें वापस मिलेगा। जो हम सोचते हैं, वही हमारी सच्चाई बन जाएगी। हम अपनी जिंदगी बदल सकते हैं, संतुष्टि भरा जीवन जी सकते हैं और दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बन सकते हैं। हमें सिर्फ खुद पर विश्वास करना है और अपने अंदर परिवर्तन लाने की चाहत पैदा करनी है।'

स्वदेशी अपनाएं

'हम एक राष्ट्र के रूप में विदेशी चीजों से लगाव क्यों कर रहे हैं? क्या यह हमारे औपनिवेशिक युग की एक विरासत है। हम विदेशी टीवी सेट खरीदना चाहते हैं। हम विदेशी शर्ट पहनना चाहते हैं। हम विदेशी प्रौद्योगिकी खरीदना चाहते हैं, सब कुछ आयात करने का यह कैसा जुनून है?'

–डॉ. अब्दुल कलाम

विश्व की 5 महाशक्ति जापान, अमेरिका, फ्रांस, रूस और चीन ने विदेशी गुलामी से निजात पाने और अपने देश को शक्तिशाली बनाने में मात्र इस कारण से सफल रहे कि उनके देश के लोगों ने प्रण किया कि वह जो भी वस्तु प्रयोग करेंगे, वह स्वदेशी ही होगी।

स्वदेशी वस्तु का प्रयोग करने से सबसे बड़ा लाभ यह है कि जो बड़ी-बड़ी विदेशी कंपनियां देशवासियों को लूट रही हैं, उनकी आर्थिक मदद कम होते-होते बंद हो जाती है और उनका उस देश में व्यापार चलाने में कोई लाभ नहीं रहता, जिससे वह अपना कारोबार समेट लेती हैं और लूट बंद हो जाती है। विदेशी कंपनियां तब तक ही टिकी रहती है, जब तक उन्हें लाभ प्राप्त होता रहे। जबकि हमारे देश में एक-से-एक हुनरमंद हैं, जो स्वदेशी वस्तुओं में ही ऐसे-ऐसे उत्पाद खरीददारों के सामने लाते हैं कि दांतों तले उंगलियां अपने आप दब जाती हैं। गुजरात के एक छोटे से शहर वांकानेर के रहने वाले मनसुख लाल प्रजापति ने भी कुछ ऐसा किया कि आप भी उनके हुनर के प्रशंसक हो जाएंगे, लेकिन अपने हुनर

को साबित करने के लिए मनसुख को क्या-क्या पापड़ बेलने पड़े, यह जानने के लिए आगे पढ़िए।

एक जमाना था, जब मनसुख लाल प्रजापति अपनी ससुराल वालों को आता देख राजमार्ग के किनारे स्थित अपनी चाय की दुकान के कोने में सिमटकर खुद को छिपाने की नाकाम कोशिश करते थे। जीवन के 48 बसंत पार कर चुके मनसुख जिंदगी के कई इम्तिहानों में शिकस्त खा चुके थे। छात्र जीवन में 10वीं की परीक्षा पास न कर पाने के बाद उन्होंने मजदूरी करनी शुरू की। इसके बाद उन्होंने अपने परिवार का पेट पालने के लिए एक छोटी-सी चाय की दुकान खोल ली।

लेकिन अपने ससुराल वालों के सामने सड़क के किनारे चाय बेचने का काम करना उन्हें अपमानजनक लगता। 'मेरे ससुराल वाले मुझसे बहुत बेहतर स्थिति में थे। उनका खिलौने बनाने का खुद का व्यवसाय था और मैं यहां चाय बेच रहा था। उनके सामने मैं बहुत शर्मिंदगी महसूस करता था।' मनसुख बताते हैं।

शर्मिंदगी की इसी भावना ने उन्हें जीवन में कुछ करने के लिए प्रेरित किया और आज वे एक सफल व नामचीन उद्यमी हैं।

उनके पूर्वज कुम्हार थे और उन्होंने मिट्टी के बने उत्पादों के महत्त्व को प्लास्टिक के बने सामान के सामने ढेर होते बहुत नजदीकी से देखा है। भारत में बढ़ते भूमंडलीकरण के चलते कई कारीगरों को अपना पुश्तैनी काम छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। प्रजापति के पिता भी उनमें से एक थे। 'मेरे पिता ने भी कुम्हार का पुश्तैनी काम छोड़कर घर का खर्चा उठाने के लिए मजदूरी करनी शुरू कर दी थी।' प्रजापति कहते हैं।

बदलते समय के साथ प्रजापति ने न केवल अपने पुश्तैनी हुनर को पुनर्जीवित किया है, बल्कि यह भी साबित कर दिया है कि हाथ के कारीगरों के लिए अभी आशा की किरण बाकी है। करीब एक साल तक चाय की दुकान चलाने के बाद प्रजापति ने एक टाइल बनाने के कारखाने में एक पर्यवेक्षक के रूप में काम किया, जहां उनकी अचेतन पड़ी कुम्हार की प्रवृत्ति दोबारा जागी। 'वहां काम करते समय मुझे महसूस हुआ कि मैं पुश्तैनी रूप से तो कुम्हार हूं और अगर मिट्टी से सफलतापूर्वक टाइलें बन सकती हैं तो अन्य उत्पाद क्यों नहीं बन सकते?'

1989 में 24 साल की उम्र में उन्होंने मिट्टी के साथ अपने प्रयोगों

को करना शुरू किया। प्रारंभ में उन्होंने मिट्टी से नॉन-स्टिक पैन बनाने की कोशिश की और धीरे-धीरे वे कई तरह की मिट्टी के साथ प्रयोग करने लगे, लेकिन शीर्ष तक का इनका सफर इतना आसान नहीं था। इस काम को शुरू करने के लिए उन्हें 19 लाख रुपये का कर्ज लेना पड़ा था। प्रारंभिक असफलताओं से घबराए बिना उन्होंने अपना सफर जारी रखा और लोगों के प्रोत्साहन के बाद वे एक के बाद एक सफल उत्पाद बनाते गए।

वर्तमान में उनके बनाए उत्पाद इतने सफल हैं कि ग्राहकों की बढ़ती मांग को पूरा करने और मिट्टी के असंख्य उत्पाद तैयार करने के लिए इन्हें कई कारखाने खोलने पड़े हैं। प्रजापति द्वारा खुद तैयार की गई बड़ी मशीनें कुछ ही पलों में मिट्टी को सैकड़ों की संख्या में उत्पादों में ढाल देती हैं, जिससे वे बढ़ती हुई मांग को समय से पूरा कर सकें। वर्तमान में इनका कारोबार 45 लाख रुपये सालाना से अधिक का है और इनके यहां 35 से अधिक लोग काम कर रहे हैं।

प्रजापति ने कुछ नया करने की ठानी थी, इसलिए वर्तमान में वे रेफ्रिजरेटर, प्रेशर कुकर, नॉन-स्टिक पैन सहित रोजमर्रा के कामकाज के कई घरेलू उपकरणों को बनाने के कारोबार में हैं। रोचक बात यह है कि वे इन सब चीजों को मिट्टी से तैयार करते हैं। 'मिट्टीकूल' के नाम से तैयार होकर बिकने वाले ये उपकरण पर्यावरण के अनुकूल, टिकाऊ और प्रभावी होने के साथ बहुत सस्ते भी हैं।

2002 में इन्होंने मिट्टी का फ्रिज बनाया जो बिना गैस और बिजली के चलता है। 2004 में मिट्टीकूल (नॉन-स्टिक तवा) बनाया, उसके लिए 2005 में 'राष्ट्रीय और राज्य ग्रामीण विकास' से पुरस्कार मिला था। अब इन्हें इनके विभिन्न कलात्मक उत्पादों के लिए विदेश से ऑर्डर मिलते हैं और लोग इनके प्राकृतिक रेफ्रिजरेटर/फिल्टर का उपयोग करना पसंद करते हैं।

उनका मुख्य और सबसे प्रसिद्ध उत्पाद है मिट्टी का फ्रिज जिसके अब तक 9000 से अधिक पीस देश-भर में वे बेच चुके हैं। 3000 रुपये से कुछ अधिक के दाम वाला यह उत्पाद सही मायनों में गरीब के घर का फ्रिज है। ऐसा फ्रिज बनाने के पीछे उनका सोचना था कि पैसे वाला तो कुछ भी खरीद सकता है, लेकिन गरीब के लिए एक फ्रिज खरीदना बहुत टेढ़ी

खीर है। इसलिए क्यों न एक ऐसी चीज तैयार करूं, जो गरीब-से-गरीब व्यक्ति की पहुंच में हो और वह खरीदकर उसका उपयोग कर सके।

मिट्टी के इस फ्रिज के अंदर का तापमान कमरे के तापमान की तुलना में लगभग 8 डिग्री कम रहता है। इसमें सब्जियां 4 दिन और दूध 2 दिन तक ताजा रहते हैं। यह 15 इंच चौड़ा, 12 इंच गहरा और 26 इंच लंबा है, जिसे आराम से रसोईघर में या घर के किसी भी कोने में आराम से रखा जा सकता है। अधिकतर खरीददार इसे रसोईघर में स्लैब पर रखना पसंद करते हैं।

यह फ्रिज एक साधारण वैज्ञानिक सिद्धांत पर काम करता है, जिसमें पानी का वाष्पीकरण ठंडा करने का कारण बनता है। मिट्टी के इस फ्रिज की छत, दीवार और तल में भरा पानी वाष्पीकृत होकर इसे ठंडा रखने में मदद करता है। इस तरह से इस दो भागों में बंटे फ्रिज में रखी सब्जियां और खाने का सामान लंबे समय तक ताजा और ठंडा बना रहता है।

प्रजापति फ्रिज और अन्य घरेलू उपकरणों को सिर्फ साधारण मिट्टी से बनाते हैं। इनके उत्पाद पूरे भारतवर्ष के अलावा विदेश में भी अपना डंका बजा रहे हैं। इस वर्ष प्रजापति के बनाए उत्पाद अफ्रीका के लिए निर्यात हुए हैं और इन्होंने दुबई के लिए मिट्टी के बने 100 फ्रिजों की पहली खेप भी भेजी है। मनसुख के इस प्रयास की सराहना डॉ. कलाम ने भी की थी।

घरेलू उत्पादों की सफलता के बाद अब प्रजापति मिट्टी से बने एक घर का निर्माण करने की दिशा में मेहनत कर रहे हैं, जिसे वे 'मिट्टीकूल' घर के नाम से दुनिया के सामने लाना चाहते हैं। यह मिट्टी का बना एक ऐसा घर होगा, जो प्राकृतिक रूप से गर्मियों में ठंडा और सर्दियों में गर्म रहेगा। जहां तक उनके ससुराल वालों की बात है, तो आज वे प्रजापति की सफलता से बहुत खुश हैं और उन पर गर्व करते हैं।

जन्मसिद्ध अधिकार

'जीवन एक कठिन खेल है। आप इस जन्मसिद्ध अधिकार को केवल एक व्यक्ति बनकर ही जीत सकते हैं।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

जीवन में किसी को भी अगर किसी भी क्षेत्र में सफल होना है, तो हमें पता होना चाहिए कि मुझे कहां जाना है, हमें पता होना चाहिए कि किस रास्ते जाना तय है, हमें पता होना चाहिए कैसे जाना है, हमें पता होना चाहिए कब तक जाना है। अगर इन बातों में हमारी सोच एकदम स्पष्ट होगी तो विफलताएं आएंगी या रुकावटें आएंगी, फिर भी आपका लक्ष्य कभी ओझल नहीं होगा। ज्यादातर लोगों को क्या होता है अगर आज कोई अच्छी फिल्म देखकर आ गए, तो आप पूछोगे कि आप क्या बनना चाहते हो तो शाम को कह देगा, मैं अभिनेता बनना चाहता हूं।

आज कहीं वर्ल्ड कप मैच देखकर आया किसी ने पूछ लिया कि क्या बनना चाहते हो, तो बोले मुझे क्रिकेटर बनना है। युद्ध चल रहा है, सेना के जवान शहीद हो रहे हैं, खबरें आ रही हैं, तो मन करता है नहीं-नहीं अब तो बस सेना में जाना है और देश के लिए मर-मिटना है। ये जो रोज नए-नए विचार मन में आते हैं, उनसे जीवन में कभी भी सफलता नहीं आती और इसलिए हमारी मन की जो इच्छा है वह दृढ़ होनी चाहिए। अगर आज एक इच्छा, कल दूसरी इच्छा, परसों तीसरी इच्छा की जाती है, तो फिर लोग कहते हैं- ये सोचता था, ये तो बेकार है, आज कुछ सोचता है, कल कुछ और सोच रहा था। इच्छा दृढ़ होनी चाहिए और जब इच्छा दृढ़ हो जाती है, तो अपने आप में संकल्प बन जाती है और एक बार संकल्प

बन गया तो फिर पीछे मुड़कर देखना नहीं चाहिए। बाधाएं हो, कठिनाइयां हो, तकलीफें हो, हमें लगे रहना है। सफलता आपके कदम चूमती हुई चली आएंगी, जैसे कि भवेश भाटिया के जीवन में आई।

भवेश भाटिया जन्म से अंधे नहीं थे, बड़ा होने तक उनकी आंखों में थोड़ी रोशनी थी। रेटिना मस्कुलर डिटेरियरेशन नामक रोग से ग्रस्त भवेश को हमेशा पता था कि उनकी नजर समय के साथ कमजोर पड़ती जाएगी। जब वह 23 वर्ष के थे, तो उनकी आंखों की रोशनी पूरी तरह चली गई और आने वाले बुरे दिनों के लिए कोई तैयारी भी नहीं की जा सकी।

वह उस समय होटल मैनेजर के रूप में काम कर रहे थे और अपनी कैंसर से पीड़ित माँ के इलाज के लिए पैसे बचाने का प्रयास कर रहे थे। अपनी माँ को बचाने की उनकी अधीरता महज संतानोचित प्रेम नहीं थी, वह उसके अस्तित्व की रीढ़ थीं और उनके जीवन को आगे बढ़ाने के लिए उनका होना बहुत जरूरी था।

45 वर्षीय भवेश याद करते हैं- 'स्कूल में मुझे बुरी तरह तंग किया जाता था। एक दिन घर लौटने के बाद मैंने माँ से कहा कि मैं अगले दिन से स्कूल नहीं जाऊंगा। सब मिलकर मेरे ऊपर 'अंधा लड़का, अंधा लड़का' चिल्लाकर फब्तियां कसते हैं।'

मुझ पर दबाव देने या मेरी मांग मान लेने के बजाय मेरी माँ ने मेरा सिर सहलाते हुए कहा कि लड़के निर्दयी नहीं हैं। वे तुम्हारा मित्र बनना चाहते हैं, लेकिन तुम उनसे इतने भिन्न हो इसलिए वे तुमसे अलग रहते हैं। उन्होंने मुझे बताया कि तंग करना, तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने का उनका तरीका है। मैं बहुत मुश्किल से उनकी बात का विश्वास कर पाया। अगले दिन, तंग करने की कोशिशों के बावजूद भवेश ने उनसे दोस्ती की पेशकश की, फिर वे लोग जिंदगी-भर के लिए दोस्त बन गए।

वह बताते हैं- 'जीवन का यह शुरुआती सबक मेरे व्यवसाय का भी निर्देशक सिद्धांत है। मेरी गरीबी और नि:शक्तता ने मेरे सामने अपार चुनौतियां प्रस्तुत की, लेकिन उनके विवेक के कारण ही मैं सही निर्णय कर पाता हूं।'

इसलिए माँ को खोने की आशंका के बीच आंखों की रोशनी का चला जाना उनके लिए संघातक आघात था। उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। उनके पिताजी उनकी माँ के इलाज पर अपनी सारी बचत पहले ही फूंक

चुके थे। बिना नौकरी और नौकरी की संभावना के बिना वे उनकी देखरेख नहीं कर सकते थे, अत: शीघ्र ही वह चल बसीं।

मां के चले जाने के बाद भवेश नि:सहाय महसूस करने लगे थे, क्योंकि उनकी माँ ने खुद को काफी शिक्षित ही नहीं किया था, बल्कि उनके अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए अथक परिश्रम भी किया था। भवेश ब्लैक बोर्ड नहीं पढ़ पाते तो वह उनके पाठों को याद कराने के लिए घंटों जूझा करतीं। उनका यह व्यवहार भवेश के पोस्ट ग्रेजुएशन करने तक जारी रहा था। भवेश उनके लिए खुद को कुछ सार्थक बनना चाहते थे। उनके आरंभ करते ही माँ का चला जाना, उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा अन्याय महसूस हुआ।

अपनी मां, अपनी नजर और अपनी नौकरी के चले जाने के दु:ख से वह टूट गए थे, लेकिन जिस चीज ने उन्हें सांत्वना दी, वह अपनी माँ द्वारा मिली सर्वोत्तम सलाह थी। उनकी माँ ने उनसे कहा था- 'अगर दुनिया नहीं भी देख पाओगे तो क्या हुआ? कुछ ऐसा करो कि दुनिया तुम्हें देखे।' इसलिए आत्मदया में डूबने-उतराने के बजाय भवेश उस मोहक 'कुछ' की तलाश में लग गए, जो उन्हें दुनिया की नजरों में देखने के काबिल बना देती।

उस चीज को खोजना मुश्किल नहीं था। बचपन से ही भवेश की रुचि अपने हाथों से चीजें बनाने में थी। वह पतंगें बनाया करते थे, मिट्टी के साथ प्रयोग किया करते थे, खिलौने और छोटी मूर्तियां आदि गढ़ा करते थे। उन्होंने मोमबत्ती निर्माण में हाथ आजमाने का फैसला किया, क्योंकि उसमें उनके लिए आकार और गंध की संवेदना का उपयोग करने की गुंजाइश थी, लेकिन मुख्यत: इसलिए भी कि वे प्रकाश के प्रति हमेशा से आकर्षित थे।

पास में और कोई संसाधन नहीं होने के कारण भवेश समझ नहीं पा रहे थे कि शुरुआत कैसे की जाए? फिर किसी की सलाह पर उन्होंने 1999 में मुंबई के 'नेशनल एसोसिएशन ऑफ ब्लाइंड' से प्रशिक्षण लिया। वहां उन लोगों ने सिखाया कि सादा मोमबत्ती कैसे बनाई जाती है। वह याद करते हैं- 'मैं रंगों, सुगंधों और आकारों से खेलना चाहता था, लेकिन रंग और सुगंध मेरे बजट से बाहर थे।' इसलिए रात-भर जागकर वे मोमबत्तियां बनाते थे और दिन में उन्हें महाबलेश्वर के स्थानीय बाजार के एक कोने में ठेले पर बेचते थे। ठेला एक मित्र का था और उसने भवेश को 50 रुपए रोज पर उपयोग करने के लिए दिया था। हर दिन वे अगले दिन के

लिए सामानों की खरीद के वास्ते 25 रुपए अलग रख दिया करते थे। यह जीवित रहने का एकमात्र और कमरतोड़ जरिया था, लेकिन वह यह सोच कर संतुष्ट थे कि कम-से-कम वह तो कर पा रहे थे, जो करना चाहते थे।

तभी एक दिन अप्रत्याशित रूप से चीजें बदलने लगीं। इसकी शुरुआत तब हुई, जब एक महिला उनके ठेले के सामने मोमबत्तियां खरीदने के लिए रुकी। वह उनके सौम्य व्यवहार और जीवंत हंसी से प्रभावित हुई। वे लोग तत्काल मित्र बन गए और घंटों बातें करते रहे। इसे पहली नजर का प्रेम कहा जा सकता है, लेकिन यह दो आत्माओं के बीच संपर्क से बढ़कर भी कुछ था।

उनका नाम नीता था। भवेश ने उनसे विवाह करने का इरादा कर लिया था। वह भी उनसे मिलकर लौटते समय हर रोज उनसे बात करने और साथ जिंदगी बिताने के लिए सोचा करती थीं। नीता को गरीब और अंधे मोमबत्ती बनाने वाले से शादी के फैसले के कारण घरवालों के विरोध का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था और जल्द ही महाबलेश्वर के खूबसूरत हिल स्टेशन में छोटे से मकान में उनके साथ जीवन जिंदगी जीने की राह पर बढ़ गईं।

नीता जबर्दस्त आशावादी थीं। भवेश नया बर्तन नहीं खरीद सकते थे, इसलिए उन्हीं बर्तनों में वह मोम पिघलाते थे जिनमें नीता खाना पकाती थीं। उन्हें चिंता होती थी कि इससे शायद पत्नी के दिल को चोट पहुंचती होगी, लेकिन वह उनकी चिंता पर हंसती थीं। उन्होंने एक दोपहिया खरीदा, जिससे वह अपने पति को मोमबत्तियां बेचने के लिए शहर ले जा सकें। बाद में परिस्थितियों में सुधार हुआ तो उन्होंने वैन चलाना भी सीखा ताकि बड़ी मात्रा में मोमबत्तियों को ले जाया जा सके। 'वह मेरी जिंदगी की रोशनी है।' भवेश मुस्कराते हुए कहते हैं।

कहने की बात नहीं है कि नीता के जिंदगी में आने के बाद उनके लिए संघर्ष आसान हो गया था। बोझ उठाने के लिए एक संगिनी थी, इसलिए बोझ अब उतना भारी नहीं लगता था।

आंख वाले लोग स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे कि कोई अंधा आदमी अपने पांव पर खड़ा हो सकता है। एक बार कुछ उपद्रवी लोगों ने भवेश की सारी मोमबत्तियां ठेले से उठाकर नाली में फेंक दीं। जहां भी वे मदद के लिए गये, उनसे कहा गया- 'तुम अंधे हो। तुम भला क्या कर

सकते हो?' उन्होंने प्रोफेशनल मोमबत्ती निर्माताओं और अन्य संस्थाओं से मार्गदर्शन पाने की कोशिश की लेकिन किसी ने मदद नहीं की।

ऋण संबंधी आवेदनों को तो सिरे से नकार ही दिया जाता था, दूसरे अनुरोधों पर भी आक्रामक प्रतिक्रिया मिलती थी। वह मोमबत्ती निर्माण पर विशेषज्ञों की सलाह लेना चाहते थे, लेकिन उन्हें डांट-फटकार और अपमान मिलता था।

इसलिए वे अपनी पत्नी के साथ मॉल में जाते और वहां रखी गई विभिन्न प्रकार की कीमती मोमबत्तियों को छूते और महसूस करते। वह जो भी महसूस करते थे, उसको अपनी प्रतिभा और सृजनात्मकता से संवारकर उसी प्रकार की मोमबत्तियां बनाने लगे। टर्निंग प्वाइंट तब आया जब उन्हें सतारा बैंक से पंद्रह हजार रुपए का लोन स्वीकृत हुआ, जहां अंधे लोगों के लिए एक विशेष योजना चल रही थी। उससे उन पति-पत्नी ने 15 किलो मोम, 2 डाई और 50 रुपए में एक ठेला लिया। उसी के सहारे उन्होंने कई करोड़ रु. का कारोबार खड़ा कर लिया जिसके देश-दुनिया में प्रतिष्ठित कॉर्पोरेट ग्राहक हैं और 200 कर्मचारियों की समर्पित टीम भी, जिसमें सारे-के-सारे दृष्टिबाधित हैं।

अब, जब पीछे वे मुड़कर देखते हैं, तो महसूस करते हैं कि उनके ऋण मांगने पर इतने सारे लोगों ने उनको इस कारण दुत्कार दिया कि दुनिया में निर्मम तरीके से कारोबार चलता है। हर कोई अपने दिमाग से सोचता है, दिल से नहीं। इसलिए उन्होंने महसूस किया कि सफल व्यापार चलाने का एकमात्र तरीका दिल से सोचना है। इसमें काफी समय लगेगा लेकिन अगर आप अपने दिल के कहे के अनुसार कर रहे हैं, तो आपने जो लक्ष्य तय किया है, उसे हासिल करके रहेंगे।

एक समय ऐसा भी था जब भवेश अगले दिन के मोमबत्ती के लिए मोम खरीदने के लिए 25 रुपए अलग रख दिया करते थे। आज 'सनराइज कैंडल्स' 9000 डिजाइन वाली सादा, सुगंधित और सुगंध चिकित्सा की मोमबत्तियां बनाने के लिए 25 टन मोम का उपयोग रोज करता है। वे अपना मोम यू.के. से खरीदते हैं। उनके ग्राहकों में रिलायंस इंडस्ट्रीज, रैनबैक्सी, बिग बाजार, नरोदा इंडस्ट्रीज और रोटरी क्लब आदि कुछ प्रमुख नाम हैं।

सनराइज कैंडल्स चलाने के लिए दृष्टिबाधित लोगों को काम में लगाने के बारे में भवेश कहते हैं- 'हम लोग दृष्टिबाधित लोगों को सिखाते हैं

जिससे कि वे हमारी इकाई को महज सहायता न करके काम समझ सकें, जिससे किसी दिन लौटकर अपना कारोबार भी खड़ा कर सकें।' जहां वह कंपनी के सृजनात्मक पक्षों पर ध्यान केंद्रित करना पसंद करते हैं, वहीं नीता उद्यम की प्रशासनिक जिम्मेवारियों की देखरेख करती हैं। वह स्वावलंबी बनने के लिए दृष्टिबाधित लड़कियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण भी देती हैं।

कोई भी सोचेगा कि खाक से कई करोड़ का कारोबार खड़ा करने में, खासकर भवेश को जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ा, उसे देखते हुए, उनका पूरा समय लग जाता होगा। लेकिन वह एक नैसर्गिक खिलाड़ी हैं और अपनी क्षमताओं को पेशेवराना ढंग से तराशने के लिए पर्याप्त समय देते हैं।

भवेश कहते हैं- 'मैं बचपन से ही खेलकूद में सक्रिय रहता था। लोगों की धारणाओं के विपरीत, अंधापन का मतलब शरीर से कमजोर होना नहीं है। मुझे अपने खिलाड़ीपन पर गर्व है।' सनराइज कैंडल्स खड़ा करने के दौरान लंबे समय तक वह खेलकूद से दूर रहे; लेकिन अब, जब कारोबार अपने पूरे उत्कर्ष पर है, वह अपने दैनिक प्रशिक्षण के मामले में कठोर हैं।

मोमबत्ती का कारोबार जमा लेने के बाद उन्होंने फिर से खेलों (शॉर्टपुट, डिस्कस और जेवलिन थ्रो) का अभ्यास शुरू कर दिया। 'पारालिंपिक स्पोर्ट्स' में मिले कुल 109 मेडल उनके पास हैं। अपने अभ्यास के दौरान वे रोज 500 दंड बैठक करते हैं, 8 किलोमीटर दौड़ते हैं और अपने कारखाने में स्थापित जिम का उपयोग करते हैं। दौड़ने के अभ्यास के लिए नीता ने 15 फीट लंबी नाइलोन की रस्सी का एक सिरा अपनी वैन से बांध देती हैं और दूसरा सिरा भवेश को पकड़ा देती हैं। फिर वह उनकी गति से वैन चलाती हैं और वे साथ-साथ दौड़ते हैं।

अभी भवेश की ब्राजील में होने वाले 'पारालिंपिक 2016' में भाग लेने के लिए तैयारी चल रही है। वह एक और विश्व रिकॉर्ड बनाने के लिए कृतसंकल्प हैं।

'दुनिया में 21 मीटर की सबसे ऊंची मोमबत्ती बनाने का रिकॉर्ड जर्मनी के नाम है। उनकी योजना उससे ऊंची मोमबत्ती बनाने की है। पिछले अप्रैल में दोनों पति-पत्नी ने एक नया कौशल शुरू किया है- प्रधानमंत्री नरेंद्र

मोदीजी, महानायक अमिताभ बच्चन, क्रिकेटर सचिन तेंदुलकर और 25 अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों की मोम की आदमकद मूर्तियां बनाने का।

भवेश कहते हैं कि उन्होंने जो लक्ष्य तय किए हैं, उनको हासिल कर लेने पर उन्हें अत्यंत संतुष्टि मिलेगी।

'मेरे कई सपने हैं और अनेक लक्ष्य भी हैं। मैं माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने वाला दुनिया का पहला अंधा आदमी बनना चाहता हूं। मैं अपने देश के लिए ब्राजील में होने वाले पारालिंपिक 2016 में स्वर्णपदक जीतना चाहता हूं लेकिन सबसे बढ़कर, मैं सुनिश्चित करना चाहता हूं कि हर अंधा भारतीय अपने पांवों पर खड़ा हो।'

प्रकृति ही सब कुछ है

'प्रकृति से सीखो, जहां सब कुछ छिपा है।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

पत्थर हों या मनुष्य, सृष्टि में हर वस्तु या जीव का अस्तित्व कुछ समय के लिए ही होता है। यदि दशकों या युगों-युगों का जीवनकाल हमें क्षणभंगुर नहीं भी लगे तो भी अरबों वर्ष से मौजूद ब्रह्माण्ड के सामने तो यह क्षणभंगुर ही कहलायेगा।

प्रकृति हमें बूढ़ा कर देती है। सभी प्राणी जन्म लेने की कीमत अपनी मृत्यु से चुकाते हैं। पूरे जीवनकाल में हम जो कुछ भी संचय करते हैं, वह भी चिरस्थाई नहीं होता। बच्चों के खिलौने टूटते हैं, शादी के जोड़े भी कभी तार-तार हो जाते हैं, राजप्रासादों की अट्टालिकाएं भग्नावशेष में बदल जाती हैं। फिर भी मानव-मन बूढ़े होते संबंधों और पुरानी पड़ती वस्तुओं से ऊबता रहता है और सदैव नवीनता की आकांक्षा करता है। यह प्रकृति ही है जो सहजता से पुराने के बाद नए को ग्रहण करती है।

और इसी प्रकृति को बचाने की हर छोटी कोशिश मायने रखती है, क्योंकि हम जो भी करते हैं उसका अच्छा या बुरा असर पर्यावरण पर पड़ता है। क्या आपने कभी सोचा है कि घरों-मंदिरों में भगवान पर चढ़ते फूल भी इस बर्बादी में शामिल हैं।

यमुना किनारे पड़े फूल लोगों की आस्था का प्रतीक हैं। यमुना किनारे ही दिल्ली में होती है फूलों की खेती। यमुना की बदकिस्मती देखिये जिन फूलों को सींच कर वह उसे बेहद खूबसूरत और खुशबूदार बनाती है, वही फूल इस नदी को बदसूरत करके उसके बर्बाद होने की वजह

बनते हैं लेकिन दिल्ली की मधुमिता पुरी ने फूलों से हो रहे इस प्रदूषण के खिलाफ झंडा ऊंचा किया तो मानो वह रंगों की लड़ाई थी। जिसका नतीजा था, बिखरे पड़े पीले रंग के गेंदे और गुलाबी गुलाब यमुना का पानी प्रदूषित करने के बदले, होली में रंगों की बौछार बनकर लोगों को भिगोने के काम में आने लगे।

सबसे बड़ी बात यह थी कि त्योहारों के मौसम में इन्हें बिखेर रहे लोग खुद इन रंगों को देख नहीं सकते थे, क्योंकि उनको बनाने वाले सभी नेत्रहीन थे।

मधुमिता ने दिल्ली के होटलों और मंदिरों से टनों की मात्रा में फेंक दिए गए फूलों को कुदरती रंग बनाने के लिए चुना था। ये रंग हमारी त्वचा को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं और इनका इस्तेमाल हिंदुओं के पर्व-त्योहारों में होता है।

मधुमिता ने जिस कार्यक्रम को चलाया, उसे चलाने वाली गैर सरकारी संस्था का नाम है आवचयम्। आवचयम् एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है फूलों को इकट्ठा करना। 2008 में मधुमिता पुरी ने 'आवचयम्' की शुरुआत की। उनका कहना है- 'इस तरह से उन्होंने न केवल शहर के कचरे का बोझ कम किया, बल्कि अपने लिए और दूसरों के लिए जीविका भी उपलब्ध करवाई है।

आवचयम् की स्थापना से पहले मधुमिता पुरी उन बच्चों के लिए काम करती रही थीं, जो शारीरिक रूप से अक्षम हैं। इनके संस्थान के सामने एक मंदिर है। मधुमिता बताती हैं कि मंदिर में हर दिन काफी फूलों की जरूरत होती है और अगले दिन वे फूल पुराने हो जाते हैं, फिर किसी काम के नहीं रहते। उस मंदिर में भी हर दिन काफी फूल आते; मंदिर प्रशासन ने एक लड़के को रखा जो प्रतिदिन उन फूलों को यमुना नदी में बहा आता, लेकिन कुछ समय बाद वह काम में सुस्ती दिखाने लगा और कई-कई दिन के फूल इकट्ठा करके एक साथ डालने जाता, जिससे काफी बदबू आने लगती। अब वहां पर काम कर रहे लोगों के पास दो ही विकल्प थे या तो वे उन फूलों को सड़ने दें और बदबू झेलें या फिर खुद साफ करें और उन्होंने खुद ही उन्हें साफ करना उचित समझा। उस दौरान मधुमिता को एक आइडिया आया कि क्यों न वे उन पुराने फूलों का कुछ उपयोग करें, जिससे इस समस्या का हमेशा के लिए निपटारा हो सके और फिर

शुरू हुआ 'आवचयम्'। मधुमिता ने सोचा, 'क्यों ना इन फूलों का दोबारा इस्तेमाल किया जाए, उन्होंने फैसला किया कि अगर इन फूलों से होली के रंग बनाए जाएं तो पर्यावरण को भी नुकसान नहीं होगा और फूलों का भी अच्छी तरह इस्तेमाल हो जाएगा, साथ ही शारीरिक रूप से असक्षम इन बच्चों को भी रोजगार का अवसर मिल जाएगा।

फूलों के लिए जब इन लोगों ने मंदिर के पुजारी से बात की तो वे नहीं माने, आखिर आस्था का सवाल था, लेकिन बाद में काफी समझाने पर वे मंदिर में चढ़ाए फूलों को देने के लिए राजी हो गए। बच्चे रोज मंदिरों से फूल इकट्ठा करने जाते हैं ताकि उनसे रंग बनाए जा सकें।

पुराने फूल किसी काम के नहीं होते और धीरे-धीरे उनकी खुशबू खत्म हो जाती है, लेकिन 'आवचयम्' में पुराने फूलों से डाई, विभिन्न रंग और अगरबत्तियां बनाई जाने लगीं। ये रंग प्राकृतिक व ऑर्गेनिक थे, जो किसी भी तरह से पर्यावरण के लिए हानिकारक नहीं थे, बल्कि पहले जहां उन फूलों को पानी में डालने से जल प्रदूषण हो रहा था, अब 'आवचयम्' के बाद नहीं हो रहा था, साथ ही कई लोगों को रोजगार मिल रहा था और बाजार में इस तरह के ऑर्गेनिक रंगों के आने से लोगों को सस्ता और बेहतरीन विकल्प भी मिला।

मधुमिता ने बच्चों को फूलों से रंग बनाने का प्रशिक्षण दिया। फूलों से रंग बनाने के लिए इन्हें साल में करीब एक टन फूलों की जरूरत थी। इसके लिए इन लोगों ने अलग-अलग टेंट हाउस और होटलों में बात की। आज दिल्ली के 12 फाइव स्टार होटल इन्हें फूल भेजते हैं। रॉ मेटीरियल के लिए इन लोगों को ज्यादा दिक्कत नहीं होती और आसानी से मिल जाता है। दिल्ली के विभिन्न मंदिरों और होटल्स से फूल लाये जाते हैं। त्योहारों के समय में ये काफी ज्यादा मात्रा में मिल जाते हैं। पर्यावरण मंत्रालय से भी इन्हें काफी मदद मिल रही है और दिल्ली हाट तथा विभिन्न जगहों पर सरकारी आउटलेट्स में इनके उत्पाद बेचे जा रहे हैं।

इन लोगों ने इस काम को केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखा, दिल्ली के तकरीबन 45 स्पेशल स्कूलों में मधुमिता ने इसका प्रशिक्षण दिया है। ये लोग सबसे पहले पुराने फूल को सुखाते हैं, फिर उनको अलग-अलग करते हैं, काटते हैं और फिर पीसते हैं। इन लोगों ने 2004 से इस कार्य की शुरुआत की, लेकिन पहले ये हर तरह से जांच लेना चाहते थे कि

पूरी प्रक्रिया पैसा कमाने लायक है और क्या इसे लंबे समय तक चलाया जा सकता है। वे काम में कूदने से पहले हर छोटे- बड़े पहलू को जांचना चाहते थे। लोगों को प्रशिक्षण दिया गया, पूरा खांचा तैयार किया गया, विभिन्न जांच की गई, जब सब कुछ सकारात्मक आया तो सन 2008 में 'आवचयम्' को औपचारिक रूप से शुरू कर दिया गया। प्रोडक्शन इस तरह से किया जाता है जिससे ये काफी सस्ता रहे, मुनाफा हो और साथ ही रंगों को सस्ते में बेचा जा सके। मधुमिता चाहती हैं कि उनके इस काम से पर्यावरण तो सुरक्षित हो ही, साथ ही शारीरिक रूप से असक्षम इन बच्चों को रोजगार भी मिले। पिछले साल 1200-1500 लोगों ने इस काम के जरिए आमदनी की है।

दिल्ली में ही नहीं, दिल्ली से बाहर भी मधुमिता ने लोगों को इसके लिए जागरूक किया कि फूलों को नदियों में न बहाकर उसका इस्तेमाल रंगों को बनाने में किया जाए।

आवचयम् काफी लोगों को नौकरी दे रहा है। लगभग 85 शारीरिक और मानसिक रूप से अक्षम लोग इस कार्य में लगे हुए हैं, ये लोग होली के रंग व रंगोली के लिए रंग बना रहे हैं, इसके अलावा 15 दृष्टिहीन लोग अगरबत्ती निर्माण के कार्य में लगे हुए हैं। आवचयम् को दिल्ली के 60 मंदिरों से और 11 होटल्स से फूल मिल रहे हैं, इसके अलावा 250 अन्य मंदिर, 8 होटल्स और 6 अन्य एनजीओ फूल दे रहे हैं। ये सारे एनजीओ 'आवचयम्' के साथ मिलकर ही काम करते हैं। वृंदावन में फूलों का पूजा में इस्तेमाल बहुत ज्यादा होता है, इसलिए लोगों को नहीं समझ आता कि इस्तेमाल के बाद फूलों का क्या किया जाए। मधुमिता ने वहां जाकर 'फ्रेंड्स ऑफ वृंदावन' नाम की संस्था को इस काम के बारे में बताया। अब वहां भी लोग फूलों का बखूबी इस्तेमाल कर रहे हैं।

महान सपने हमेशा पूरे होते हैं

'महान सपने देखने वालों के महान सपने हमेशा पूरे होते हैं।'

–डॉ. अब्दुल कलाम

28 जुलाई, 2011 को एशिया का नोबेल कहे जाने वाले रैमन मैग्सैसे पुरस्कार के लिए हरीश हांडे को चुने जाने की घोषणा की गई थी। सौर ऊर्जा के इस्तेमाल की तकनीक भारत में लाने वाले हांडे को इस पुरस्कार के लिए चुना गया था। अपनी कंपनी सेल्को के जरिये लाखों लोगों तक किफायती सौर ऊर्जा तकनीक पहुंचाने वाले हरीश हांडे इस पुरस्कार से खासे उत्साहित तो थे, लेकिन इसका श्रेय खुद को देने के बजाय अपने कर्मचारियों की टीम को देना चाहते थे। उन्होंने घोषणा की कि मैग्सैसे पुरस्कार से मिलने वाली 50,000 डॉलर की राशि ग्रामीण क्षेत्र की उन्नति के लिए काम करने वाले युवाओं को प्रोत्साहित करने के लिए खर्च करेंगे। तकनीक के बेहतर इस्तेमाल से लाखों लोगों के जीवन में बदलाव लाने वाले हरीश हांडे को 31 अगस्त, 2011 को मनीला में यह सम्मान दिया गया था। निश्चय ही हरीश नयी पीढ़ी के प्रेरणास्रोत बनकर सामने आये हैं।

हालांकि 2011 की जुलाई तक हरीश हांडे के नाम से बहुत सारे लोग परिचित नहीं थे लेकिन उस साल का मैग्सैसे अवार्ड पाने के बाद देश के गांव-देहात के लोगों के जीवन बदलने वाले इस शख्स की चर्चा देश के महानगरों में भी होने लगी। सौर ऊर्जा की तकनीक से करोड़ों लोगों के जीवन में बदलाव लाने वाले इस शख्स ने भारतीय परिदृश्य के कई मिथकों को तोड़कर वह कर दिखाया, जो आजादी के छः दशकों में सरकारें भी नहीं कर पाईं। उन्होंने अमेरिका में पढ़ाई की, लेकिन सपना आम भारतीय

के जीवन का उद्धार था। उन्होंने पढ़ाई सिर्फ डिग्री जुटाने के लिए नहीं की थी, बल्कि उनका मकसद लोगों का जीवन बदलना था। उन्होंने इस भ्रम को भी तोड़ा कि सामाजिक कल्याण के मकसद से किया जाने वाला व्यवसाय घाटे का सौदा होता है। वे इस बात से आहत रहे हैं कि गांवों की आवाज दिल्ली तक नहीं पहुंचती।

हरीश का जन्म बंगलौर में और उनका पालन-पोषण राउरकेला में हुआ। पढ़ाई में वे हमेशा होशियार छात्र रहे। उन्होंने आईआईटी खड़गपुर से इंजीनियरिंग का अध्ययन किया और फिर अमेरिका चले गए। जहां मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से अपनी मास्टर्स की डिग्री हासिल की। फिर उन्होंने थर्मल साइट पर काम करना शुरू कर दिया और इसी दौरान वे डोमिनियन रिपब्लिक गए, जहां हरीश ने देखा कि लोग किस प्रकार सौर ऊर्जा का प्रयोग अपने घरों में कर रहे थे। उसके बाद हरीश ने तय किया कि वे अपना शोध ऊर्जा के सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में करेंगे। रिसर्च के लिए उन्होंने भारत और श्रीलंका के गांवों में बहुत समय बिताया। श्रीलंका में भाषा की समस्या, लिट्टे की समस्या और संसाधनों का भारी अभाव था। श्रीलंका के गांव में हरीश ने लगभग 6 महीने रिसर्च की।

हरीश ने 1995 में बहुत कम पैसे में 'सेल्को इंडिया' की शुरुआत की। कंपनी का लक्ष्य था सौर ऊर्जा के प्रयोग से गांव-देहातों का विकास करना। शुरुआत में हरीश ने बहुत कम बजट में अपना काम चलाया, उन्हें काफी दिक्कतें भी आई, लेकिन वे डटे रहे और कम बजट की नई-नई योजनाओं पर काम करते रहे। 'सेल्को' ने कोई नया अविष्कार नहीं किया, बल्कि पहले से चली आ रही तकनीकों में जान फूंकी। तकनीकी स्तर में छोटे-मोटे सुधार किए। धीरे-धीरे काम ने गति पकड़नी शुरू की लेकिन फिर भी शुरुआती वर्षों में हरीश के पास इतने पैसे नहीं थे कि वह किसी अन्य को अपने साथ रख पाएं, इसलिए हर घर में सिस्टम वह स्वयं लगाने जाते थे। उस समय एक सिस्टम की कीमत 15,000 रुपये के आसपास थी, इसलिए केवल वे ही लोग सौर ऊर्जा सिस्टम लगवा रहे थे, जो आर्थिक रूप से संपन्न थे।

'सेल्को इंडिया' कंपनी के मैनेजिंग डायरेक्टर हरीश हांडे ने भले ही आईआईटी से इंजीनियरिंग की डिग्री ली और अमेरिका का मैसाचुसेट्स यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की हो, लेकिन उनको असली

ज्ञान पानी-पूरी बेचने वाली एक महिला से मिला था। हरीश ने जब इस महिला को सौर ऊर्जा के लाभ के बारे में बताया, तो उसने कहा कि महीने में 300 रुपये देना मुश्किल है, लेकिन वह 10 रुपये रोज जरूर दे सकती है। इस बात ने हरीश के दिमाग में एक बात गहरे से बिठा दी कि गरीब आदमी तक नई तकनीक का लाभ पहुंचाने के लिए जरूरी है कि उसके आर्थिक संसाधनों की भी व्यवस्था की जाए। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि 10 रुपये में प्रतिदिन 4 घंटे सौर ऊर्जा का प्रकाश पहुंचाने से उसी महिला को लाभ होगा, क्योंकि वह केरोसिन तेल पर प्रतिदिन 15 रुपये खर्च करती है। इस सोच ने हांडे का काम आसान कर दिया। वे गांव-गांव तक पहुंचे। हरीश ने तय किया कि गांव में वे अपने उपकरण का विस्तार करेंगे और उन्होंने अर्थव्यवस्था (फाइनेंस) की संभावनाओं पर विचार करना शुरू किया, ताकि गरीब आदमी भी आसान किश्तों में उनका उपकरण खरीद सके। अब तक आस-पास का हर व्यक्ति चाहे वह अमीर हो या गरीब, हरीश के उपकरण की जरूरत महसूस करने लगा था। हर किसी को अपने घर में रोशनी चाहिए थी लेकिन दिक्कत केवल पैसे की थी। 2 साल की कठोर मेहनत के बाद हरीश ने उपकरण को फाइनेंस करवाने में कामयाबी पाई। अब आसान किश्तों में उपकरण मिल रहे थे और मांग लगातार बढ़ती जा रही थी। अब गांव में सौर ऊर्जा की वजह से रोशनी होने लगी। लोगों की जिंदगी आसान होने लगी। आज उनकी सेल्को (सोलर इलेक्ट्रिक लाइट कंपनी) 1,20,000 घरों तक रोशनी पहुंचाने में कामयाब हुई है। उनकी यह मुहिम लाखों लोगों को सामर्थ्यवान बनाकर प्रगतिशील बदलाव लाने में सक्षम हुई।

भारत जैसे देश में जहां गांवों में बिजली का अभाव है, वहां आज हांडे की मुहिम के चलते ग्रामीण सौर पैनल लगाकर दिन में सूर्य की ऊर्जा को एकत्र करते हैं तथा रात्रि में करीब 5 घंटे तक बिजली का उपयोग करते हैं। इससे उनके जीवन में धनात्मक बदलाव आया है। बच्चे ठीक से पढ़ सकते हैं और कुटीर उद्योग-धंधों में लगे लोग देर रात तक काम करके ज्यादा कमा सकते हैं। वर्ष 1995 में शुरू हुई इस मुहिम के चलते कर्नाटक, केरल व गुजरात में डेढ़ करोड़ लोगों तक बिजली पहुंच रही है। यही नहीं, उन्होंने विभिन्न व्यवसायों के लोगों की जरूरतों के मुताबिक नई तकनीक विकसित की है। मसलन तड़के अंधेरे में गुलाब

एकत्र करने वालों के लिए टोपी के रूप में पहने जाने वाले सोलर लैंप विकसित किए हैं। इसी तरह फलों के रखरखाव व पानी गर्म करने की तकनीक भी विकसित की।

हरीश ने आईआईटी की पढ़ाई के दौरान तय कर लिया था कि उनका मकसद सिर्फ डिग्री लेना नहीं है बल्कि इस पढ़ाई के जरिये लोगों का जीवन बदलना है। अमेरिका में उच्च शिक्षा हासिल करते वक्त भी उनके दिमाग में भारतवासियों का ख्याल था। वे अच्छी नौकरी का प्रलोभन छोड़कर सेवा के मकसद से भारत लौटे। वे ऐसा व्यवसाय करना चाहते थे, जिसमें जीविकोपार्जन के साथ समाज के लोगों का भी भला हो, यानी अपनी उन्नति के साथ-साथ समाज की संपन्नता का सपना भी।

वास्तव में हरीश ने पढ़ाई को सही मायनों में सार्थक किया। पढ़ाई का मतलब उनके लिए बंधी-बंधाई नौकरी बिलकुल नहीं थी। उन्होंने उद्यमिता की नई मिसाल कायम की और इसके नये मानक तय किए। उन्होंने दुनिया को बताया कि सौर ऊर्जा सिर्फ सरकारी विभाग की जागीर नहीं है और इस तकनीक को आम आदमी तक पहुंचाया जा सकता है। यह भी साबित कर दिखाया कि आम आदमी पैसा खर्च करने के साथ ही सौर पैनलों का बेहतर ढंग से रखरखाव भी कर सकता है। इस तकनीक के विस्तार के वक्त उनके दिमाग में स्पष्ट खाका था कि आम उपभोक्ता के हित में यह जरूरी है कि तकनीक के साथ आम आदमी का पैसा जुटाने की व्यवस्था तथा सौर पैनल की बिक्री के बाद तकनीकी सेवा उपलब्ध कराई जाती रहे।

हांडे ने कारोबार के साथ समाज सेवा की वह पहल शुरू की, जिसे आज अमेरिका में बिल गेट्स, वारेन बफेट व भारत में अजीम प्रेमजी कर रहे हैं। उन्होंने समाज कल्याण के साथ व्यावसायिक लाभ की अवधारणा को जोड़कर दिखाया। उन्होंने दूरदृष्टि के साथ ऐसा किया, लोगों को विश्वास में लिया तथा खुद का व समाज का भला किया। उन्होंने अपने उद्यम का तानाबाना कुछ इस ढंग से बुना कि कारोबार में घाटा न उठाना पड़े व पैसा बरबस आता रहे। हरीश का मकसद पवित्र तथा हौसले बुलंद थे। जेब में पैसा नहीं था, लेकिन जब अभियान की शुरुआत की तो वित्तीय संसाधन जुटते चले गये। उनके कार्य के उद्देश्य व उद्यमिता को देखकर अंतर्राष्ट्रीय वितरकों ने उन्हें 1,50,000 डॉलर का ऋण उपलब्ध कराया। उन्होंने इस

संस्था की शर्तों का अनुपालन करते हुए महज चार साल में लोन लौटा दिया। आज उनकी कंपनी में तमाम नामी-गिरामी कंपनियां निवेश करने को आतुर हैं।

आज भले ही मैग्सैसे पुरस्कार मिलने के बाद उनकी चर्चा हो रही हो, लेकिन इससे पहले भी उन्हें ओबामा से लेकर प्रिंस चार्ल्स तक सम्मानित कर चुके हैं, लेकिन वे बिना किसी प्रचार व मीडिया में सुर्खियां बने अपना काम करते रहे। यह बात जरूर है कि उनके अभियान ने उत्तर भारत में दस्तक नहीं दी, लेकिन दक्षिण में उनकी उद्यमिता ने परचम लहराया है। आज भारत के नवनिर्माण में लगी 'सेल्को' आम आदमी के लिए सौर बिजली उपलब्ध कराने के अलावा खाना पकाने, पानी गर्म करने, फलों के संरक्षण, घरों को शीतल रखने जैसे उपकरण बना रही है।

हरीश को इस बात का दु:ख जरूर है कि गरीबों व उनसे जुड़ी संस्थाओं की आवाज दिल्ली तक नहीं पहुंचती, जहां देश के लिए हर फैसला होता है। यही वजह है कि ग्रामीणों के लिए उपयोगी तकनीकों का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता। वे स्वीकारते हैं कि उन जैसे तमाम युवा क्रांतिकारी बदलाव के वाहक बन सकते हैं, लेकिन वित्तीय संसाधन की कमी आड़े आती है।

आज उनकी कंपनी अभी तक करीब सवा लाख लोगों को सौर ऊर्जा से बिजली उपलब्ध करा रही है। हरीश हांडे ने अपनी सफलता की नई इबारत लिखी है।

हरीश हांडे ने कई लोगों के इस भ्रम को तोड़ा है, जो यह मानते थे कि सौर ऊर्जा जैसी तकनीक आम लोगों के लिए नहीं है। उन्होंने इस तर्क को भी गलत साबित कर दिया कि आम आदमी ऐसी तकनीक की देखरेख ठीक से नहीं कर सकता। हालत यह है कि उनकी योजनाओं से जुड़े आम लोग ही उनके काम की असली पहचान बन गए हैं। शहरों और कस्बों से दूर बसे गांवों में भी लोग उनकी कंपनी की योजनाओं का लाभ ले रहे हैं। सौर ऊर्जा की रोशनी के लिए लगे हजारों रुपये के पैनल्स के लिए साधारण लोग न केवल भुगतान कर रहे हैं, बल्कि उन पैनल्स के रखरखाव का पूरा खयाल रख रहे हैं। हांडे अच्छी तरह समझते हैं कि छोटे-से-छोटे उपभोक्ता के लिए तीन बातें बहुत मायने रखती हैं- तकनीक, वित्तीय व्यवस्था और बिक्री के बाद की सेवा।

हरीश हांडे ने दुनिया के नामी शिक्षण संस्थानों से डिग्री हासिल की

और साथ ही इस बात को समझा कि ये डिग्रियां अचार डालने के लिए नहीं, लोगों की मदद के लिए उन्हें मिली हैं। आईआईटी की पढ़ाई के दिनों में ही उन्होंने तय कर लिया था कि अब वह जो कुछ भी करेंगे, उससे गांव के लोगों को फायदा होना चाहिए। उन्हें इस बात का अहसास था कि वह विदेश जाकर लाखों की नौकरी पा सकते हैं और ऐश की जिंदगी जी सकते हैं, लेकिन उनके जमीर ने कहा कि उन्हें कोई सार्थक काम करना है, जिससे उनकी आर्थिक उन्नति भी हो सकती है।

अब तक यही समझा जाता रहा है कि अगर कोई कारोबार सामाजिक मकसद से शुरू किया जाता है, तो उसमें घाटा-ही-घाटा होता है। हांडे ने लोगों को सोचने पर विवश कर दिया कि ऐसा हर बार हो, यह जरूरी नहीं। अगर सोच-समझकर काम किया जाए, लोगों को इसमें शामिल किया जाए और वे ऐसे काम से लाभान्वित हों, तो सामाजिक उद्यम भी सभी के लिए लाभ का सौदा हो सकते हैं। इस लाभ में सभी की भागीदारी होगी। 'सेल्को' की सभी योजनाएं इस तरह से बनाई गई कि उसमें पैसा डूबने की गुंजाइश नहीं रहे।

अगर आप कोई भी काम पवित्र उद्देश्य से कर रहे हैं, तो पीछे न हटें, क्योंकि ऐसे काम शुरू करने वालों की मदद करने लोग आ ही जाते हैं। हरीश हांडे ने जब 'सेल्को' की स्थापना की थी, तब उनके पास कोई पूंजी नहीं थी, लेकिन साल-भर बाद ऐसा नहीं था। उनकी मदद के लिए 'विनरक इंटरनेशनल' नाम की संस्था सामने आई और उसने कुछ शर्तों के साथ हांडे को 1,50,000 डॉलर का कर्ज मुहैया करा दिया। 'सेल्को' ने चार साल में ही वह कर्ज लौटा दिया। आज उनकी कंपनी में पूंजी लगाने के लिए दुनिया-भर की कंपनियां 100 करोड़ रुपये तक का निवेश करने को तैयार हैं।

किसी भी सामान की बिक्री के बाद की सेवा केवल बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ही दायित्व नहीं है, हरीश हांडे इस बात को समझते थे। इसलिए उन्होंने सौर ऊर्जा के क्षेत्र में आने वाली इस समस्या का खास ध्यान रखा कि किस तरह की परेशानियों का सामना ग्राहकों को करना पड़ता है। उन्होंने बिक्री के बाद की सेवा के लिए कंपनी में अलग से टीम बनाई और अपने तमाम ग्राहकों से सीधे संपर्क बनाकर उन्हें आश्वस्त किया कि वैकल्पिक ऊर्जा अपनाने में उन्हें किसी तरह की कोई दिक्कत नहीं होने दी जाएगी।

सेल्को कंपनी जो काम कर रही है, वही काम देश-भर में अनेक संस्थाएं कर रही हैं, लेकिन वे आम जनता का भला नहीं कर रहीं, क्योंकि उनमें से ज्यादातर भ्रष्टाचार करने के लिए ही बनाई गई हैं। सेल्को ने हमेशा इस बात का ख्याल रखा कि सौर ऊर्जा केवल बत्ती जलाने के लिए नहीं, अन्य कामों के लिए भी उपयोग में लाई जा सकती है। यही कारण है कि उनकी कंपनी सौर ऊर्जा से खाना पकाने, घर को ठंडा रखने, सब्जियों व फलों को सुखाकर स्टोर करने, दो लाख लीटर तक पानी गरम करने जैसे कामों के लिए ग्राहकों की जरूरत के अनुसार उपकरण बनाती है।

हरीश हांडे को मिले सम्मानों की सूची लंबी है। उन्हें प्रिंस चार्ल्स से लेकर ओबामा तक सम्मानित कर चुके हैं। उन्हें भारत के उन 50 लोगों में गिना गया है, जो एक नए भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण रोल निभा रहे हैं। हांडे अपने कार्य को विकेंद्रित और ग्राहकोन्मुख बनाने के काम में जुटे हैं। उनका कहना है कि अभी हमें केवल कर्नाटक और गुजरात में काम करने का मौका मिला है, हम यह काम पूरे देश में फैलाना चाहते हैं। जब हर गांव में हमारी सेवा पहुंच जाएगी, तभी हम अपने आपको कामयाब समझेंगे।

❍❍❍